उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसम्बर, 2013

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

अब्दूल रहीम राथर **बनाम** इंडियन आयल कारपोरेशन और अन्य 304

एम. के. कृष्णन् **बनाम** केरल राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 202)

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** राज करण और एक अन्य 181

ओरियन्टल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड **बनाम** शर्मिला और अन्य 311

धनवन्ती **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य 359

प्रमोद कुमार और अन्य **बनाम** जिला अधिकारी, केरल लोक सेवा आयोग, जिला कार्यालय, मलपुरम् और अन्य 271

राजू लाल **बनाम** श्रीमती श्यामोबाई और अन्य 307

राधा और एक अन्य **बनाम** जमुना देवी 315

शिव सिंह और अन्य **बनाम** प्रेम सिंह 329

श्रीमती श्यामोबाई और अन्य **बनाम** राजू लाल (देखिए – पृष्ठ संख्या 307)

सेवानिवृत्त अध्यापक और कर्मचारी संघ और अन्य **बनाम** केरल राज्य और अन्य 202

अक्तूबर-दिसम्बर, 2013 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक — अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक — महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147(5), 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – दुर्घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न हो अर्थात् अधिनियम की धारा 149 का उल्लंघन हुआ हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्व से इनकार नहीं कर सकती तथापि, वह संदत्त प्रतिकर की धनराशि को बीमाकृत यान के स्वामी से वसूल करने की हकदार है ।

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **राज करण और एक अन्य** 181

पृष्ठ संख्या 181 – 376 (2013) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसम्बर, 2013 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 181 – 376)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957

– अनुच्छेद 103 [सपठित किसान सेवा केन्द्र स्कीम] – सरकार द्वारा किसान सेवा केन्द्र खुदरा आउटलेट आबंटित करने के लिए विज्ञापन जारी करना – याची द्वारा करार पूरा हुए बिना आउटलेट खोलने के लिए खर्च किया जाना – स्थान नियमों के अनुसार न होने के कारण करार पूरा किए जाने से इनकार – रिट याचिका – जहां किसी कार्य द्वारा व्यक्ति के मूल अधिकार का अतिक्रमण न हुआ हो वहां न्यायालय रिट याचिका में निदेश जारी नहीं कर सकता ।

अब्दूल रहीम राथर बनाम **इंडियन आयल कारपोरेशन और अन्य** 304

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 147(5), 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – दुर्घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न हो अर्थात् अधिनियम की धारा 149 का उल्लंघन हुआ हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्व से इनकार नहीं कर सकती तथापि, वह संदत्त प्रतिकर की धनराशि को बीमाकृत यान के स्वामी से वसूल करने की हकदार है ।

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **राज करण और एक अन्य** 181

– धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होने की दलील – विचारण न्यायालय द्वारा 4,72,000/- रुपए प्रतिकर अधिनिर्णीत

पृष्ठ संख्या

किया जाना – जहां निचले न्यायालय का अधिनिर्णय विधि की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए दिया गया है वहां अपील न्यायालय द्वारा ऐसे अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

ओरियन्टल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बनाम **शर्मिला और अन्य** 311

– धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – यान स्वामी द्वारा घटना होने से इनकार – अधिकरण द्वारा 4,60,000/- रुपए के प्रतिकर के लिए अधिनिर्णय – प्रतिकर बढाने के लिए अपील – जहां निचले न्यायालय ने मामले के तथ्यों और सुसंगत विधि पर विचार करने के पश्चात् अधिनिर्णय पारित किया हो वहां अपील न्यायालय द्वारा निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

राजू लाल बनाम **श्रीमती श्यामोबाई और अन्य** 307

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश भूमि अभिलेख मैन्युअल, 1992] – रिट – विवादित नियुक्ति के लिए अर्हता मापदण्ड आय प्रमाणपत्र होना – आय प्रमाणपत्र को सक्षम प्राधिकारी द्वारा बिना समुचित जांच आदि के आधार पर जारी करना – आय प्रमाणपत्र की वैधता को चुनौती देते हुए नियुक्ति रद्द करने की मांग करना – यदि विवादित नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हता मापदण्ड वैध और विधिमान्य आय प्रमाणपत्र है तो ऐसी नियुक्ति तब तक वैध और विधिमान्य नहीं हो सकती है जब तक कि ऐसे आय प्रमाणपत्र को वैध और विधिमान्य सिद्ध नहीं कर दिया जाता है ।

धनवन्ती बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 359

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 [सपठित के. एस. एण्ड एस. एस. आर. भाग II नियम 3(ख), 15(क) तथा नियम 14, 16 एवं 17] – किसी लोक सेवा पद हेतु चयन प्रक्रिया आरम्भ करते हुए चयनित अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची जारी करना – इसी दौरान संबंधित नियमों में संशोधन द्वारा वर्तमान श्रेणीबद्ध सूची के स्थान पर नई श्रेणीबद्ध सूची जारी करना – नई श्रेणीबद्ध सूची के साथ ही संशोधन को चुनौती देना – चुनौती खारिज होना – यदि किसी लोक सेवा पद हेतु चयन प्रक्रिया आरम्भ करते हुए चयनित अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची जारी की जाती है और इसी दौरान संबंधित नियमों में संशोधन के कारण वर्तमान श्रेणीबद्ध सूची समाप्त करके नई श्रेणीबद्ध सूची जारी की जाती है तो यह तभी वैध और विधिमान्य होगी जब संशोधित नियमों को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है और पूर्व श्रेणीबद्ध सूची में नाम आने के कारण ही संबंधित अभ्यर्थी चयनित होने के अधिकारी नहीं हो जाते हैं क्योंकि मात्र इसी कारण से उनमें कोई कानूनी अधिकार अर्जित नहीं हो जाता है ।

प्रमोद कुमार और अन्य बनाम **जिला अधिकारी, केरल लोक सेवा आयोग, जिला कार्यालय, मलपुरम् और अन्य** 271

– अनुच्छेद 226 और 162 [सपठित जांच आयोग अधिनियम, 1952] – रिट – वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति – राज्य का नीतिगत मामला होना – कर्मचारियों द्वारा नियत समय के अन्तराल में वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करने की मांग करना – कानूनी अधिकार नहीं होना – यदि राज्य अपने कर्मचारियों के वेतन आदि की विसंगतियों को दूर करने के लिए एक विशेषज्ञ निकाय अर्थात् वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करता है तो यह राज्य का नीतिगत

पृष्ठ संख्या

मामला होता है और संबंधित कर्मचारियों का इस बारे में कोई कानूनी अधिकार नहीं होता है कि वे एक नियत समय के अन्तराल में वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति के लिए मांग करें ।

सेवानिवृत्त अध्यापक और कर्मचारी संघ और अन्य बनाम **केरल राज्य और अन्य** 202

– अनुच्छेद 226, 162, 14, 39(घ) और 43 – वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करना और इसे लागू करना – लागू करने के लिए अंतिम तारीख नियत करना – वर्गीकरण – यदि राज्य, वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते समय अपनी वित्तीय बाध्यताओं और युक्तियुक्त वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए इसे लागू करने के लिए एक निश्चित तारीख नियत करता है और क्योंकि यह एक कार्यपालिका कृत्य है और इसलिए यदि यह युक्तियुक्त वर्गीकरण और तर्कसंगत अन्तरक पर आधारित होता है तो इसे इस आधार पर आक्षेपित नहीं किया जा सकता है कि यह मनमाना और अवैध है ।

सेवानिवृत्त अध्यापक और कर्मचारी संघ और अन्य बनाम **केरल राज्य और अन्य** 202

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 39, नियम 1 और आदेश 41, नियम 2 – सम्पत्ति पर उत्तराधिकारी के रूप में दावा – उत्तराधिकारी होने के संबंध में सम्यक् साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना – न्यायालय द्वारा पेंशन कागजपत्रों में नामांकन के आधार पर उत्तराधिकारी माना जाना – मात्र पेंशन कागजपत्रों में नामांकन से उत्तराधिकार साबित नहीं हो जाता – उत्तराधिकार को साबित करने के लिए उत्तराधिकार से संबंधित तात्विक साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

राधा और एक अन्य बनाम **जमुना देवी** 315

पृष्ठ संख्या

– धारा 100, आदेश 23, नियम 1 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क और हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974] – द्वितीय अपील – पक्षकारों के बीच अचल सम्पत्ति के बारे में एक वैध और विधिमान्य विक्रय करार होना – करार के अग्रसरण में अन्तरिती द्वारा भागिक पालन करते हुए अपनी प्रास्थिति में परिवर्तन कर लेना जिसकी जानकारी अन्तरणकर्ता को भी होना – करार के शेष भाग का भी पालन करने के लिए तैयार और रजामंद होना – अन्तरणकर्ता द्वारा करार का पालन करने से इनकार करना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि पक्षकारों के बीच एक वैध और विधिमान्य विक्रय करार किया गया है और उसके अनुसरण में अन्तरिती ने भागिक पालन करते हुए कुछ कार्य करके अपनी प्रास्थिति में परिवर्तन कर लिया है जिसकी जानकारी अन्तरणकर्ता को भी थी तो ऐसी परिस्थितियों में अन्तरणकर्ता ऐसे करार का पालन करने से इनकार नहीं कर सकता है ।

शिव सिंह और अन्य बनाम **प्रेम सिंह** 329

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव
एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली ख़ां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं का वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका का वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 2338210क

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

राज करण और एक अन्य

तारीख 1 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147(5), 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – दुर्घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां घटना के समय चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न हो अर्थात् अधिनियम की धारा 149 का उल्लंघन हुआ हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्व से इनकार नहीं कर सकती तथापि, वह संदत्त प्रतिकर की धनराशि को बीमाकृत यान के स्वामी से वसूल करने की हकदार है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कौशाम्बी द्वारा तारीख 13 मई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीतऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो । उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए

बीमा कंपनी-अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है । अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिनके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं । जहां तक श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलर्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 2 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है । विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 2) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 4 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करें और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करें । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की

गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी । (पैरा 20, 21, 30, 31, 34, 38, 39, 40 और 41)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**;	37
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**;	22,29
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = (2007) 2 टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**;	22,27,28
[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**;	36
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**;	14,33
[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321: **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह**;	22,25,28,29
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**;	14,32

[1998] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 :
ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम
इंदरजीत कौर और अन्य । 22,23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 3107.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन"

दावेदारों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा ने दिया ।

न्या. महरोत्रा – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कौशाम्बी द्वारा तारीख 13 मई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसमें तारीख 1 मई, 2007 को रात्रि लगभग 10.30 बजे घटित दुर्घटना में महेन्द्र सिंह की मृत्यु हो जाने के कारण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा 2007 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 45 फाइल किया गया था ।

2. दावा याचिका में यह पक्षकथन किया गया था कि तारीख 1 मई, 2007 को उक्त महेन्द्र सिंह अपनी मोटरसाइकिल पर भरवाड़ी की तरफ जा रहा था । ट्रक जिसका रजिस्ट्रेशन सं. एच आर 38ई 4475 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए उक्त मोटरसाइकिल को टक्कर मारी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त महेन्द्र सिंह को क्षतियां पहुंचीं और क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

3. प्रत्यर्थी सं. 2 प्रश्नगत यान का स्वामी है जबकि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रश्नगत यान की बीमाकर्ता है ।

4. अधिकरण ने उक्त दावा मामले में पक्षकारों के बीच अभिवाकों के आदान-प्रदान के पश्चात्, विवाद्यक विरचित किए ।

5. उक्त दावा मामले में साक्ष्य पेश किया गया ।

6. अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात्, अधिकरण ने विभिन्न विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए ।

7. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसके कारण उक्त महेन्द्र सिंह को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

8. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान दुर्घटना के समय अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था ।

9. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी और इस प्रकार, प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के उपबंधों का उल्लंघन किया है ।

10. अधिकरण ने उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, तारीख 6 मई, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया, जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ, दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित 1,65,000/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के हक़ में अधिनिर्णीत की ।

11. तथापि, उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए अधिकरण द्वारा यह अभिलिखित किया गया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी, इसलिए अधिकरण ने यह निदेश दिया कि प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को संदत्त करनी होगी और इसके पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

12. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

13. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" ने यह दलील दी है कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, अधिकरण ने प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी को निदेश देने में और

उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

14. श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 2 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके । श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1]**;**

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[2]**;**

15. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

16. जहां तक श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

17. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5) इस प्रकार है :–

"**147. पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं –**

(1) से (4) . . . .

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

[2] (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

18. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा की पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

19. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :–

"149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीतऋणी हो ।

(2) से (7)....................।"

20. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ

दायित्व के संबंध में निर्णीतऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

21. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी-अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

22. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1]
2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह**[2]
3. **नेशनल इंश्योरेंस कं. लि.** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3]
4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[4]

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 (5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चेक का आदरण नहीं हुआ था ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

24. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

25. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक द्वारा यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा या वह ऐसा व्यक्ति था जो सुसंगत समय पर चालन के लिए निरर्हित था ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने के संबंध में या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को टालने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के

नियम को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान पहुंचना अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति, बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने में अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है, बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसाकि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा

सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

26. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

27. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कं. लि.** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"35. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि अनुज्ञप्ति जाली थी । यदि एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों को लागू नहीं होता ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।

(3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

उच्च न्यायालय/आयोग विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेगा ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

28. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है ।

29. माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[2] वाले मामले में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति डाक्टर अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत है –
>
> > "38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –
> >
> > (1) **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[2] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण से अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।

(3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया कि किसी ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने लक्ष्मी **नारायण दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम सुसंगतता को दृष्टि में रखते हुए **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए **लक्ष्मी नारायण दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।"

30. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिनके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

31. जहां तक श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलर्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 2 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा अवलंब लिए

गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

32. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए **बलजीत कौर** 2004 (1) टी. ए. सी. 366 (एस. सी.) वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषयवस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि के जारी करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेंगे । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

33. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

> "प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदे संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि को वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकती है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषयवस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

34. हमारी राय में, उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के

---

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.).

अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 2) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

35. तथापि, हम इस न्यायालय के दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

36. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा-कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा-कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत बलजीत कौर वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया **नन्जप्पन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने

---

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा ये सभी तरीके बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों से तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता–दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए गए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और केवल उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।''

37. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया है :–

''4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी **बनाम** श्रीमती छल्ला भरथम्मा और अन्य (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख (उद्धृत) किया है

---

[1] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्राही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है – 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा, कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' । प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तरकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

38. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 4 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

39. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे ।

40. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

41. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

42. उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा की गई अपील खारिज की जाती है ।

43. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

सेवानिवृत्त अध्यापक और कर्मचारी संघ और अन्य

बनाम

केरल राज्य और अन्य

तथा

एम. के. कृष्णन

बनाम

केरल राज्य

तारीख 5 जनवरी, 2012

न्यायमूर्ति टी. आर. रामचन्द्रन् नायर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और 162 [सपठित जांच आयोग अधिनियम, 1952] – रिट – वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति – राज्य का नीतिगत मामला होना – कर्मचारियों द्वारा नियत समय के अन्तराल में वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करने की मांग करना – कानूनी अधिकार नहीं होना – यदि राज्य अपने कर्मचारियों के वेतन आदि की विसंगतियों को दूर करने के लिए एक विशेषज्ञ निकाय अर्थात् वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करता है तो यह राज्य का नीतिगत मामला होता है और संबंधित कर्मचारियों का इस बारे में कोई कानूनी अधिकार नहीं होता है कि वे एक नियत समय के अन्तराल में वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति के लिए मांग करें ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226, 162, 14, 39(घ) और 43 – वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करना और इसे लागू करना – लागू करने के लिए अंतिम तारीख नियत करना – वर्गीकरण – यदि राज्य, वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते समय अपनी वित्तीय बाध्यताओं और युक्तियुक्त वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए इसे लागू करने के लिए एक निश्चित तारीख नियत करता है और क्योंकि यह एक कार्यपालिका कृत्य है और इसलिए यदि यह युक्तियुक्त वर्गीकरण और तर्कसंगत अन्तरक पर आधारित होता है तो इसे इस आधार पर आक्षेपित नहीं किया जा सकता है कि यह मनमाना और अवैध है ।

वर्तमान मामले में, तथ्यों से यह दर्शित होता है कि प्रथम याची सहायताप्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों, अध्यापकों और स्टाफ का एक रजिस्ट्रीकृत एशोसिएशन है और याची सं. 2 से 15 सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं । यह मुख्यतः इंगित किया गया है कि सरकार की नीति प्रत्येक 5वें वर्ष सरकारी कर्मचारियों और अध्यापकों के वेतन का पुनरीक्षण करना होता है जो निरन्तर वर्ष 1968 से तारीख 29 फरवरी, 2002 तक किया जाता रहा है । सरकार ने तारीख 14 मार्च, 2005 के जी. ओ. (एम. एस.) सं. 115/205/वित्तीय के अनुसार एक वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त किया । उन्होंने तारीख 29 फरवरी, 2002 से वेतन पुनरीक्षण पर विचार किया किन्तु उसके क्रियान्वयन की तारीख 1 जुलाई, 2004 सिफारिश की । यह इंगित किया गया कि इसमें सामान्य व्यवहार का अनुसरण किया जाना चाहिए था और क्रियान्वयन की तारीख 1 जुलाई, 2004 स्वीकार करने के लिए कोई तर्कसंगतता नहीं है और इसलिए यह मनमाना है तथा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करता है । कर्मचारियों का एक समूह जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त हुआ था, को आठवें वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों का फायदा नहीं दिया गया था । वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा की गई प्रभावी सिफारिश की तारीख को सरकार द्वारा उसी रूप में स्वीकार नहीं किया गया और इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 की तारीख के रूप में स्वीकार किया गया जिसके कारण से 35,000 और शेष कर्मचारियों को वेतन पुनरीक्षण का फायदा देने से इनकार कर दिया गया । सरकार द्वारा लिया गया यह आधार कि इससे उस पर विशाल वित्तीय दायित्व आ जाता यदि इसे भूतलक्षी प्रभाव अर्थात् तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता, गलत नहीं है । फायदों से इनकार करना संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14, 16 के साथ ही अनुच्छेद 39(घ) का भी अतिक्रमण है । वर्ष 1968 से राज्य द्वारा अनुसरित सामान्य व्यवहार को ही स्वीकार किया जाना चाहिए था । प्रदर्श पी-2, वेतन पुनरीक्षण रिपोर्ट का आरम्भित अध्याय है और प्रदर्श पी-3, तारीख 25 मार्च, 2006 का शासकीय आदेश है जिसके द्वारा सरकार ने वेतन आयोग की सिफारिशों को अनुमोदित किया था । प्रदर्श पी-4, मामले में पुनर्विचार के लिए याचियों द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन है । प्रदर्श पी-5 और प्रदर्श पी-6, विधान सभा में दिए गए उत्तरों की प्रतियां हैं । याचियों ने प्रदर्श पी-7 से प्रदर्श पी-9 तक का अवलंब लिया है, संपादकीय की प्रतियां कतिपय दिनचर्या प्रतीत होती हैं जो उनके पक्षकथन का समर्थन करती हैं । यह

निवेदन किया गया है कि सीमांत फायदों में अत्यधिक असमानता की गई है उन व्यक्तियों के बारे में जो तारीख 30 जून, 2004 और तारीख 31 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त हुए थे और उसी वर्ग में थे । तारीख 30 जून, 2004 को सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों को मात्र तारीख 25 नवम्बर, 1998 के वेतन पुनरीक्षण का ही फायदा दिया गया था और उसी कैडर के व्यक्तियों को जो तारीख 31 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त हुए थे उन्हें तारीख 25 मार्च, 2006 के वेतन पुनरीक्षण आदेश के अधीन फायदों के हकदार बनाया गया जो तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू हुआ था । यह निवेदन किया गया कि एक ही वर्ग में घोर विभेद किया गया है । 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7569 में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने चौथे वेतन पुनरीक्षण आयोग रिपोर्ट के विशेषज्ञों का अवलंब लेते हुए, वेतन पुनरीक्षण आयोगों की नियुक्ति, उनके सिद्धांतों और अन्य मामलों के बारे में सविस्तार वर्णन किया । इस तथ्य पर जोर दिया गया कि राज्य में पांच वर्ष के अन्तराल में और केन्द्र में 10 वर्ष के अन्तराल के दौरान वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करने का व्यवहार है । यह निवेदन किया गया कि उक्त व्यवहार बाध्यकारी होता है और इसलिए, कर्मचारी प्रभावी प्रत्येक पांच वर्षों में वेतन पुनरीक्षण के लिए अधिकार अर्जित करते हैं । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह निवेदन किया कि वेतन पुनरीक्षण आयोग की रिपोर्ट को प्रस्तुत करने के पश्चात् निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित आदर्श आचार संहिता के प्रकाश में उसे लागू करने के बारे में एक विवाद्यक उद्भूत हुआ था जिसे इस न्यायालय के समक्ष 2006 की रिट याचिका (सिविल) सं. 6668 में लाया गया था । उसमें दिए गए निर्णय के अनुसार, तारीख 15 मार्च, 2006 के केरल विधान सभा का संकल्प उद्धृत किया गया, जो याचियों के इस पक्षकथन का भी समर्थन करता है कि प्रत्येक पांच वर्ष में वेतन पुनरीक्षण बकाया हो जाता है । इसलिए, यह निवेदन किया गया कि मंत्रिमंडल को उसे लागू करते समय तारीख 1 जुलाई, 2004 से इसे लागू करने की वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार नहीं करना चाहिए था । यह भी इंगित किया गया कि व्यक्ति, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवा में निरन्तर बने रहे और इस अवधि के दौरान भी सेवानिवृत्त हुए तथा व्यक्ति जो उसी वर्ग से तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण आदेश के हिताधिकारी हैं । चूंकि ये सभी व्यक्ति एक ही वर्ग से हैं, इसलिए, वेतन पुनरीक्षण के फायदे की अंतिम तारीख नियत करके मनमाने तरीके से इनकार नहीं किया जा सकता था । वेतन पुनरीक्षण इन सभी श्रेणियों के

व्यक्तियों के लिए बकाया था । तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करते हुए, वे व्यक्ति जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक वेतन पुनरीक्षण के दायरे में आते थे, उन्हें समझा-बुझाकर बाहर कर दिया गया जो मनमाना है और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण है । न्यायालय द्वारा रिट याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्थापित प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व न्यायालय संक्षेप में याचियों द्वारा अवलम्बित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के प्रति निर्दिष्ट करना चाहेगा । चतुर्थ वेतन पुनरीक्षण आयोग की रिपोर्ट, अध्याय-3 में विभिन्न सरकारों द्वारा सरकारी कर्मचारियों और विभिन्न स्तर के अध्यापकों की शिकायतों का प्रतितोष करते हुए किए गए प्रयासों के संबंध में विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं को अन्तर्विष्ट किया गया है । यह दर्शित करता है कि तारीख 1 नवम्बर, 1956 को राज्य गठित हुआ था उसके बाद तारीख 1 नवम्बर, 1956 से प्रभावी करते हुए राज्य के कर्मचारियों के वेतनमानों का एकीकरण करने के लिए मार्च, 1957 में प्रथम प्रयास किया गया था । आरम्भतः विभिन्न वर्गों अर्थात् राजपत्रित अधिकारियों, प्राइमरी स्कूल अध्यापकों, सहायता प्राप्त स्कूल अध्यापकों और नर्सों आदि के संबंध में आदेश पारित किए गए थे । आर. शंकरनारायणन् अय्यर, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, ट्रावनकोर उच्च न्यायालय की अध्यक्षता में वेतन पुनरीक्षण आयोग बनाया गया जिसकी नियुक्ति सितम्बर, 1957 में की गई थी । नया वेतनमान तारीख 1 अप्रैल, 1958 से प्रभावित हुआ । आने वाले वर्षों के दौरान, यह प्रतीत होता है कि विभिन्न अन्तरालों में वेतन आयोगों की नियुक्तियां की गई थीं । जनवरी, 1965 में प्रथम वेतन आयोग, श्री के. एम. उन्नीथन्, आई. सी. एस. (पूर्व मुख्य सचिव, आंध्र प्रदेश सरकार) की अध्यक्षता में नियुक्ति हुई थी । वर्ष 1968 में इसकी अध्यक्षता श्री वी. के. वेलायूधन्, केरल लोक सेवा आयोग द्वारा की गई थी । मंत्री परिषद् की उप-समिति की सिफारिश के आधार पर वर्ष 1974 में एक अन्य वेतन पुनरीक्षण आयोग गठित हुआ था । वर्ष 1977 में तृतीय वेतन आयोग अर्थात् एकल सदस्यीय आयोग गठित हुआ था और एन. चन्द्रभानू, पूर्व मुख्य राज्य सचिव, को आयोग के रूप में नियुक्त किया गया था । चतुर्थ वेतन आयोग वर्ष 1983 में गठित हुआ था जिसकी अध्यक्षता पूर्व मुख्य न्यायाधीश, श्री वी. पी. गोपालन् नाम्बियार द्वारा की गई है, पंचम वेतन आयोग की अध्यक्षता न्यायमूर्ति टी. चन्द्रशेखर मेनन द्वारा की गई थी और अगले की अध्यक्षता श्री टी. गोपाल कृष्ण पिल्लई द्वारा की गई थी, वर्ष 1977 में एक

अन्य की अध्यक्षता श्री पी. एम. अब्राह्म द्वारा की गई थी । उपर्युक्त उल्लिखित रिपोर्ट के अध्याय-III के पैरा 15 के उप-पैरा (II) में विभिन्न ऐतिहासिक कारकों का पता लगाने के पश्चात् निम्नलिखित उल्लिखित किया गया है । विभिन्न वेतन पुनरीक्षणों की प्रभावी तारीखें क्रमशः तारीख 1 अप्रैल, 1958, तारीख 1 जनवरी, 1966, तारीख 1 जुलाई, 1968, तारीख 1 जुलाई, 1973, तारीख 1 जुलाई, 1983, तारीख 1 जुलाई, 1988 और तारीख 1 मार्च, 1992 थी, जिस तथ्य को 1997 की वेतन आयोग रिपोर्ट के अध्याय-IV के पैरा 6.2 में अभिलिखित किया गया है जिसमें प्रभावी तारीख 1 मार्च, 1997 थी । इसमें यह भी उल्लिखित है कि दो पुनरीक्षणों के बीच सामान्यतया 5 वर्षों का अन्तराल है किन्तु वर्ष 1992 में पुनरीक्षण 3 वर्ष और 8 माह के पश्चात् किया गया था । रिपोर्ट के उक्त भाग में उक्त वेतन पुनरीक्षण को लागू करने के लिए विभिन्न पहलुओं का कथन करने के पश्चात् आयोग का यह मत था कि प्रभावी तारीख 1 मार्च, 1997 हो सकती है जो अंतिम पुनरीक्षण से 5 वर्षों की समाप्ति चिह्न होगी । याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा इसका भी अवलंब लिया गया है । अब न्यायालय रिट याचिका (सिविल) सं. 6668/2006 और 6829/2006 में खंड न्यायपीठ के विनिश्चय पर विचार करूंगा । उक्त रिट याचिकाएं केरल भूमि राजस्व स्टाफ एशोसिएशन द्वारा फाइल की गई थी और निर्वाचन आयोग के एक अन्य विनिश्चय को भी चुनौती दी गई जिसमें उन्होंने वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने का विनिश्चय किया था । विभिन्न मामलों की चर्चाओं के दौरान न्यायपीठ ने तारीख 15 मार्च, 2006 को विधान सभा द्वारा स्वीकार संकल्प को निर्दिष्ट किया था । संकल्प, केन्द्रीय निर्वाचन आयोग को अग्रेषित था जिसमें उसे तारीख 10 फरवरी, 2006 को वित्त मंत्री के बजट भाषण में की गई घोषणा को ध्यान में रखते हुए वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने की अनुज्ञा दी गई थी । इसलिए, बृहत्तर प्रश्न मुख्यतः यह है कि क्या (i) वेतन पुनरीक्षण प्रत्येक पांच वर्षों में बकाया होता है और (ii) नियत अंतिम तारीख मनमाना है । अब न्यायालय पृथक्तः इन मुद्दों पर चर्चा करेगा । उक्त प्रश्न पर विचार करने के पूर्व, एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या वेतन पुनरीक्षण का अधिकार कानूनी है । इस मुद्दे पर विचार करते समय सरकार द्वारा वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति करने में प्रयुक्त शक्तियों की प्रकृति भी महत्वपूर्ण है । इस बारे में कोई विशिष्ट कानूनी उपबंध नहीं है । यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि कोई सुसंगत कानून, सरकारी कर्मचारियों और अध्यापकों आदि को प्रत्येक पांच वर्षों के अंत में

वेतन पुनरीक्षण का अधिकार प्रदत्त करता है । वेतन पुनरीक्षण आयोगों की नियुक्ति भी किसी विशिष्ट संविधि के अधीन किसी उपबंध पर आधारित नहीं है । इसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 162 के अधीन राज्य को उपलब्ध कार्यपालिका शक्ति के निबंधनों में ही किया जा सकता है । इसलिए, वेतन पुनरीक्षण आयोग को कानूनी निकाय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है । इसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अधीन भी नियुक्त नहीं किया जा सकता है । इसलिए, जहां तक वेतनमानों के नियतन का संबंध है, यह मात्र एक कार्यपालिका कृत है । सरकार इसे एक विशेषज्ञ निकाय जैसे वेतन पुनरीक्षण आयोग पर छोड़ती है कि वह विभिन्न पहलुओं अर्थात् सामाजिक कारकों और अन्य साधारण दशाओं जिसमें राज्य की संदाय करने की क्षमता भी सम्मिलित होती है, पर विचार करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट दे । यह प्रश्न कि नए वेतन आयोग को लागू करने की तारीख क्या होनी चाहिए, इसे इन सभी पहलुओं पर विचार करते हुए पूर्ववर्ती प्रभावी वेतन पुनरीक्षण आदेश के पांच वर्षों की समाप्ति से मिलान करना चाहिए । आवश्यक रूप से यह राज्य का एक नीतिगत विनिश्चय है और किसी भी व्यक्ति में पुनरीक्षित वेतनमान लागू कराने के लिए कोई विधिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है । यह सरकार पर निर्भर करता है कि वह वेतन पुनरीक्षण आयोग की विशिष्ट सिफारिशों को स्वीकार या नामंजूर करे और राज्य की मामले में पूर्ण स्वतंत्रता होती है । इसलिए, यद्यपि यह एक व्यवहार (सिवाय वर्ष 1992 में जो 3 वर्ष 8 माह के पश्चात् गठित हुआ था) था जहां तक 1 अप्रैल, 1958 से वेतन पुनरीक्षण को पूर्ववर्ती पुनरीक्षण के लगभग 5 वर्ष बीतने के पश्चात् प्रभावी तारीख बनाया गया था, यह नहीं कहा जा सकता कि इससे कर्मचारी स्वतः ही 5 वर्ष बीतने के पश्चात् वेतन पुनरीक्षण का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं । वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति राज्य की कार्यपालिका आदेश से होती है और इसलिए आयोग को कानूनी निकाय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है और इसलिए आयोग की नियुक्ति के साथ ही उनकी सिफारिशों को लागू करना राज्य की नीतिगत विनिश्चय की कोटि में आता है । जैसा कि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा चन्द्रशेखर वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पिछले वेतन पुनरीक्षण के 5 वर्ष बीतने के पश्चात् कर्मचारियों में वेतन पुनरीक्षण का कोई कानूनी अधिकार निहित नहीं होता है । इसलिए, राज्य में प्रभावी वेतन पुनरीक्षणों का इतिहास किसी भी प्रकार से याचियों के इस पक्षकथन की सहायता नहीं करते हैं कि यह प्रत्येक पांच

वर्ष की समाप्ति पर बकाया हो जाता है । निस्संदेह विभिन्न आयोग लगभग पांच वर्षों की अवधि की समाप्ति के दौरान ही समय-समय पर नियुक्त किए गए हैं और सुस्पष्टतः जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है वर्ष 1992 में वेतन पुनरीक्षण तीन वर्ष और आठ माह के पश्चात् ही प्रभावी हो गया था । इसलिए, पांच वर्षों के व्यवहार का भी इसमें अनुसरण नहीं किया गया था । इसलिए, यह विनिश्चय कि क्या यह कमत्तर अवधि अर्थात् पांच वर्षों से कम होनी चाहिए अथवा क्या इसे पांच वर्ष या इससे अधिक अवधि में होनी चाहिए यह राज्य के नीतिगत क्षेत्र के अन्तर्गत आता है । जहां तक कर्मचारियों और अध्यापकों का संबंध है, उन्हें प्रत्येक पांच वर्षों की समाप्ति पर वेतन पुनरीक्षण पाने का कोई विधिक अधिकार नहीं है । व्यवहार का दावा किसी भी प्रकार से विधिक तौर पर प्रवर्तनीय अधिकार के रूप में परिपक्व नहीं हो सकता है । अतएवं, जैसा कि याचियों द्वारा दलील दी गई है लागू करने की तारीख एक मार्च, 2002 होनी आवश्यक नहीं है और यह सरकार के चुनाव पर निर्भर करती है । (पैरा 11, 12, 13, 14, 15, 16 और 17)

यह प्रतीत होता है कि डी. एस. नकारा वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों को अन्धाधुंध और स्वतः या सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है, जिसमें एक मौजूदा स्कीम के उदारीकरण का महत्वपूर्ण पहलू विचारणीय होता है । इसमें मौजूदा सेवारत कर्मचारियों के लिए नए वेतनमानों को पुरःस्थापित करते हुए विभिन्न नए फायदों को वेतन पुनरीक्षण आदेश प्रदर्श पी-3 में प्रदत्त किए गए थे । इसलिए, सुव्यक्ततः यह नया फायदा था जिसे वेतन पुनरीक्षण आदेश के अनुसार मंजूर किया गया था । जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा स्वीकार तारीख उपर्युक्त उद्धृत प्रदर्श पी-2 के पैराग्राफ 1.17 में चर्चा किए गए विभिन्न मापदंडों के आधार पर थी । उन्होंने यह उल्लिखित किया था कि केन्द्र में वेतन+मंहगाई भत्ता से गठित मूल वेतन को तारीख 1 अप्रैल, 2004 से लागू किया गया था, जिस में सिद्धांत को वेतन पुनरीक्षण के लिए भी स्वीकार किया गया था, जिसमें नए वेतन संरचना को मूल वेतन में मंहगाई भत्ते का 59 प्रतिशत मिलाते हुए तैयार किया गया था । तद्नुसार ही तारीख 1 जुलाई, 2004 को इसे लागू करने की तारीख के रूप में चयन किया गया था । तत्पश्चात्, सरकार द्वारा प्रदर्श पी-3 के अनुसार इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करने के लिए वेतन पुनरीक्षण आदेश

जारी किया गया था । इसके पैरा 40 से यह दर्शित होता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 से तारीख 31 मार्च, 2005 तक की अवधि के लिए पुनरीक्षित वेतनमानों में वेतन नियत करने पर वेतन बकाया सांकेतिक होगा । पुनरीक्षित वेतनमान और भत्ते मार्च, 2006 से आगे से मंजूर किया जाएगा । प्रदर्श पी-3 आदेश की तारीख, तारीख 25 मार्च, 2006 होगी । तारीख 1 अप्रैल, 2005 से तारीख 28 फरवरी, 2006 तक का बकाया कर्मचारियों के भविष्य निधि खाते में जमा किया जाएगा । राज्य की दलील के बारे में यह जोरदार तर्क दिया गया कि यदि वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता है तो इससे राज्य पर हजारों करोड़ रुपए का अतिरिक्त वित्तीय भार आ जाएगा । वस्तुतः द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र में यह स्पष्टीकृत किया गया है कि कर्मचारी, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं, उन्हें वेतन पुनरीक्षण की तारीख से ही पेंशन पुनरीक्षण द्वारा फायदा दिया गया है । यह स्पष्टीकृत किया गया है कि जब भी वेतन या पेंशन पुनरीक्षण लागू किया जाता है तो स्वभाविक रूप से ऐसे पुनरीक्षण की अंतिम तारीख नियत की जाती है जिससे बचा नहीं जा सकता है । एक समूह अंतिम तारीख के भीतर आ जाएगा और आन्तरिक समूह को वेतन पुनरीक्षण का फायदा होगा और बाहरी समूह को पेंशन पुनरीक्षण का फायदा होगा । सरकार का आधार यह भी है कि न तो राज्य सरकार के कर्मचारियों को प्रत्येक पांच वर्षों में वेतन और भत्तों का पुनरीक्षण करना आज्ञापक है न ही इस प्रकार की कोई नीति सरकार द्वारा स्वीकार की गई है । यह विनिश्चय करना सरकार का परमाधिकार है कि वह अपने कर्मचारियों के वेतन और भत्तों का पुनरीक्षण कराने के लिए पुनरीक्षण का अध्ययन और सिफारिश करने के लिए और उपांतरणों, यदि आवश्यक हो, के साथ सिफारिशों को लागू करने के लिए वेतन आयोग नियुक्त करे जो सभी परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् जो वेतन पुनरीक्षण के लिए आवश्यक हो जिसमें राज्य की वित्तीय स्थिति भी सम्मिलित हो, अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे । पैरा 7 में यह इंगित किया गया है कि वेतन आयोग की सिफारिश को तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करने के लिए राज्य सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया था । पैरा 8 में यह कथन किया गया है कि सरकार ने इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के प्रकाश में मामले की परीक्षा की है कि क्या वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से अथवा तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू किया जाए । परीक्षा करने पर यह पाया गया था कि इसे लागू करने के लिए राज्य, राजकोष से क्रमशः लगभग 3275 करोड़ या 2275 करोड़ का वित्तीय भार

वहन नहीं कर सकेगा । इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा कर्मचारियों के उस समूह के लिए सांकेतिक पुनरीक्षण वेतनमान भी मंजूर नहीं किया जा सकता है, जो तारीख 1 मार्च, 2002 और तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवा से सेवानिवृत्त हुए हैं जबकि अन्य को छोड़ते हुए, जो सेवा में हैं, किन्तु उस अवधि के दौरान सेवानिवृत्त नहीं हुए हैं जो वेतन पुनरीक्षण का फायदा दिए बिना उस अवधि के लिए पूर्व पुनरीक्षित वेतनमान में थे और यह कि ऐसा करना विभेदकारी होगा । याची जो तारीख 1 जुलाई, 2004 के पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें पेंशन पुनरीक्षण का फायदा दिया गया है और समय-समय पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में बढ़ोत्तरी होने के नाते समुचित तौर पर उस दर पर समय-समय पर महंगाई भत्ते को बढ़ाते हुए, प्रतिकर के रूप में भरपाई की गई है जैसा कि उन सरकारी सेवकों के मामले में किया गया है जो सेवा में हैं । इस प्रकार, राज्य की यह दलील है कि अंतिम तारीख नियत करने में वित्तीय क्षमता सुसंगत मापदंड था । माननीय उच्चतम न्यायालय के कतिपय विनिश्चयों का परिशीलन करने से यह सुस्पष्ट है कि वित्तीय मजबूरियां एक सुसंगत मापदंड हैं । याचियों का पक्षकथन यह है कि सरकार द्वारा फायदा देने के लिए प्रति-शपथपत्र में उद्धृत आंकड़े यदि तारीख 1 मार्च, 2002 से वेतन पुनरीक्षण लागू किया जाता, सही नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि वित्तीय बोझ सरकार द्वारा उद्धृत आंकड़े से अत्यधिक कम हैं । जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, मामले में अभिलेख पर अन्य कोई सामग्री नहीं है जिससे कि याचियों द्वारा उद्भूत इस दलील को स्वीकार कर लिया जाए कि सरकार पर वित्तीय बोझ अत्यधिक कम होंगे । इसलिए, अगला प्रश्न याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दिए गए इस महत्वपूर्ण पहलू से संबंधित है कि याची उन व्यक्तियों के साथ एक समान वर्ग गठित करते हैं जिन्हें तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण का फायदा दिया गया है । विद्वान् सरकारी प्लीडर ने यह निवेदन किया कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा सुझाया गया वर्गीकरण सही नहीं हो सकता है और अपने अभिवाक् के समर्थन में कई विनिश्चयों का अवलंब लिया । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् और श्रीमती वी. पी. सीमानथनी ने यह तर्क दिया है कि पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के पांच वर्षों के पश्चात् वेतन पुनरीक्षण को तारीख 1 मार्च, 2002 से प्रभाव में आना था । इसलिए, सभी व्यक्ति, जो सेवा में थे और जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत हो गए थे और जो व्यक्ति तारीख 1 जुलाई, 2004 से सेवा में हैं वे ही

एक समान वर्ग गठित करेंगे । आठवें वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते समय तारीख 1 जुलाई, 2004 के रूप में अंतिम तारीख नियत करते हुए, उपर्युक्त एक समान वर्ग को विभाजित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् सरकारी प्लीडर ने यह स्पष्टीकृत किया कि वे व्यक्ति जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं, वे तारीख 29 फरवरी, 2002 तक सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों के साथ एक समान वर्ग गठित करेंगे । इसलिए, मात्र यह पक्षकथन है कि विभाजित रेखा, सेवानिवृत्तियों और तारीख 1 जुलाई, 2004 के पश्चात् सेवारत व्यक्तियों के बीच में ही है । यह मुद्दा कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दिए गए तर्क को तभी स्वीकार किया जा सकता है यदि सरकार के लिए यह आज्ञापक अभिनिर्धारित कर दिया जाए कि वह पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के पांच वर्ष बीतने के पश्चात् ही वेतन पुनरीक्षण लागू कर दे जो कि इसमें तारीख 28 फरवरी, 2002 है । जैसाकि, मेरे द्वारा पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि सरकार द्वारा वेतनमान पुनरीक्षण करने का विनिश्चय एक नीतिगत मामला है । यह कर्मचारियों का कानूनी अधिकार नहीं है । यदि ऐसा हो तो वे यह नहीं कह सकते कि नए वेतन पुनरीक्षण को पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के समाप्त होने की तारीख अर्थात् 1 मार्च, 2002 से ही लागू किया जाए । अतएव, वे व्यक्ति, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं मात्र वे ही तारीख 29 फरवरी, 2002 तक के सेवानिवृत्तियों के साथ ही एक वर्ग गठित करेंगे । वे व्यक्ति जो सेवा में थे और जो तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त हो चुके थे मात्र वे ही पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण आदेश के फायदाग्राही थे । पेंशन और अन्य फायदे उस समय पर अविभावी वेतनमानों के निबंधनों में गणना किए जाने थे । वे इस परिस्थिति की दलील नहीं दे सकते थे कि वे उस नए वेतनमानों के हकदार हैं जिसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रयोज्य बनाया गया था । जैसाकि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इंगित किए गए कतिपय विनिश्चयों में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि जब कभी वेतन पुनरीक्षण लागू करने के लिए तारीख नियत की जाती है तो व्यक्तियों का एक समूह ठीक पूर्ववर्ती दिन तक सेवानिवृत्त हो चुका होता है जिन पर यह लागू नहीं होगा और यह स्वयमेव ही यह दर्शित करने के लिए आधार नहीं है कि स्वीकृत तारीख मनमाना है । इसलिए, यह दलील कि एक ही वर्ग के व्यक्ति, तारीख 30 जून, 2004 या तारीख 1 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त होने की तारीख के आधार पर पेंशन की विभिन्न दरें प्राप्त करेंगे, का भी कोई परिणाम नहीं

है । (पैरा 32, 33, 34, 35 और 36)

अतएव, न्यायालय का यह मत है कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के तर्कों पर विचार करते समय सरकार द्वारा अभिवाचित वित्तीय मजबूरियां सुसंगत होंगी । यदि याचियों के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है तो यह भी एक अन्य पहलू होगा । यदि तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्तियों को सम्मिलित करते हुए वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता है तो उस अवधि के दौरान सेवारत व्यक्तियों और उसके पश्चात् सेवारत व्यक्तियों को स्वतः ही वेतन पुनरीक्षण का फायदा मिल जाएगा जैसा कि उनके मामले हों, इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से सीमित नहीं किया जा सकता है क्योंकि अब इसे लागू किया गया है । इसलिए, यदि तारीख 1 जुलाई, 2004 को सेवारत व्यक्तियों को अपवर्जित किया जाता है तो यह सुस्पष्टतः मनमाना होगा । अतएव, सरकार का वित्तीय भार अत्यधिक हो जाएगा । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 को नियत तारीख को किसी भी कारण से मनमाना नहीं कहा जा सकता है । मामले में, इस मत को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 की अंतिम तारीख का नियतन किसी भी तरह से मनमाना है । जहां तक अंतिम तारीख स्वीकार करने का संबंध है, सरकार द्वारा विभिन्न तथ्यों पर विचार किया गया जिसे पूर्णतया असंगत नहीं कहा जा सकता है । मामला नीतिगत क्षेत्र में आता है और सरकार की वित्तीय बाध्यताएं और वित्तीय स्थिरता भी सुसंगत तथ्य हैं । वेतन पुनरीक्षण लागू करना और फायदों को मंजूर करना कानूनी प्रकृति की नहीं होती हैं । इसलिए, कर्मचारियों को प्रत्येक 5 वर्ष के अन्तराल पर पुनरीक्षित वेतन पाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं होता है । रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत प्रदर्श पी-15 आदेश द्वारा सरकार ने उन व्यक्तियों जैसे याचियों की समस्याओं के प्रति अग्रेषित किया है और संबंधित पेंशन मंजूरी के कतिपय खंडों को उपांतरित किया है । किन्तु, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह इंगित किया है कि उससे उनके दावों की पूर्णतया पुष्टि नहीं होगी क्योंकि उनकी संपूर्ण सेवाओं को कोई अधिभार नहीं दिया गया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्रीमती वी. पी. सीमानथिनी ने यह भी निवेदन किया है कि यदि यह न्यायालय यह मत अभिनिर्धारित करता है कि वेतन पुनरीक्षण प्रत्येक 5 वर्षों में प्रभावी होना चाहिए तो याची भी वेतन पुनरीक्षण फायदों को पाने के लिए हकदार होंगे । प्रदर्श पी-15 को इस रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है, सुस्पष्टतः इस कारण से कि वह याचियों को कुछ रियायत मंजूर

करता है । किन्तु, उसकी पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायिक निर्वचन का मामला नहीं हो सकता है, क्योंकि सरकार की संदाय करने की क्षमता एक सुसंगत कारक है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों के प्रकाश में, हम इस मुद्दे को इस सीमा तक ही सीमित रखते हैं कि यह एक नीतिगत मामला है तो याची स्वतः इस बात पर जोर नहीं दे सकते हैं कि तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण को प्रभावी बनाते हुए मौजूदा कर्मचारियों को मंजूर सभी फायदे उन्हें भी लागू होंगे । सुस्पष्टतः तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त व्यक्ति और तारीख 1 जुलाई, 2004 से सेवारत व्यक्ति एक समान वर्ग गठित नहीं करते हैं । याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह इंगित किया कि वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति में विलम्ब करने और उसके उपरान्त तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी बनाते हुए उसकी सिफारिशों को स्वीकार करने से बड़ी संख्या में कर्मचारियों अर्थात् लगभग 35,000 कर्मचारियों को वेतन पुनरीक्षण के फायदों से इनकार करना है और इसलिए नियत अंतिम तारीख को भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि वेतन पुनरीक्षण को सरकार द्वारा रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत तारीख 25 मार्च, 2006 के आदेश (प्रदर्श पी-3) के अनुसार लागू किया गया था । सरकार ने तत्पश्चात् वस्तुतः पेंशन पुनरीक्षण फायदों को भी लागू किया जैसा कि रिट याचिका (सिविल) सं. 23346/2008 में प्रस्तुत आदेश प्रदर्श पी-9 से सुस्पष्ट होता है । यह तारीख 25 मार्च, 2006 के वेतन पुनरीक्षण आदेश पर आधारित था । इसमें नियतन के विभिन्न सिद्धांतों को कथित किया गया है । जहां तक याचियों के पेंशन पुनरीक्षण का संबंध है यह रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत उक्त आदेश के साथ ही आदेश प्रदर्श पी-15 द्वारा शासित होता है । यह प्रश्न कि क्या मामले में किया गया विलम्ब याचियों को कोई सहायता करेगा । यदि इस न्यायालय द्वारा याचियों के पक्ष में ऐसा घोषित किया जाता है तो वेतन पुनरीक्षण आदेश को तारीख 1 मार्च, 2002 से प्रभाव में देना होगा । याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 39 और 43 तथा कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन सुनिश्चित करने के लिए नीति निदेशक तत्वों की महत्ता का जोरदार अवलंब लिया । इसमें यह नहीं कहा जा सकता है कि यहां अनुच्छेद 39(घ) या अनुच्छेद 43 का कोई अतिलंघन किया गया है । याची अपने सेवा के दौरान विभिन्न वेतनमान द्वारा शासित थे । उन्हें नए वेतन पुनरीक्षण स्कीम से बाहर रखा गया था क्योंकि उनकी सेवानिवृत्त तारीख 1 जुलाई,

2004 के पूर्व हो गई थी । जब राज्य नियत अंतिम तारीख से जो भी नियत की जाती है, वेतनमानों का पुनरीक्षण करने के लिए सशक्त होता है तो इसे उसी तारीख से लागू किया जा सकता है । ऐसे कुछ व्यक्ति हो सकते हैं जिन्हें छोड़ा जा सकता है या जो उसके ठीक पूर्ववर्ती दिन को सेवानिवृत्त हो चुके होते हैं । इसलिए, इस सिद्धांत को लागू करने के प्रकाश में कि जहां तक वेतन पुनरीक्षण के साथ कोई कानूनी अधिकार नहीं हो सकता है, का संबंध है और यह कि यह राज्य का नीतिगत मामला होता है जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ए. के. चन्द्रशेखर वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था, मात्र मुख्य और महत्वपूर्ण प्रश्न यह विचारित किया जाना है कि क्या नियत अंतिम तारीख संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन करता है । इसमें अंतिम तारीख 1 जुलाई, 2004 नियत की गई है जो कतिपय पहलुओं पर आधारित वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा की गई सिफारिश है । सरकार ने भी इसे स्वीकार करना ठीक सोचा है । प्रस्थापित अंतिम तारीख नियत करने के लिए वेतन पुनरीक्षण आयोग की रिपोर्ट में विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई थी और जिसकी सरकार द्वारा अपने प्रति-शपथपत्र द्वारा पुष्टि भी की गई है । यह ऐसा नहीं है कि अंतिम तारीख मनमाने तरीके से नियत कर दी गई है और उसका ईप्सित उद्देश्य प्राप्त करने के साथ कोई संबंध नहीं है । वेतन पुनरीक्षण को प्रभावी बनाने के लिए तारीख नियत करने की शक्ति पुनरीक्षित वेतनों और पेंशनों की शक्ति के सहवर्ती होती है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा किया गया सम्पूर्ण कार्य इतना अधिक मनमाना या अयुक्तियुक्त है कि इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप किया जाए । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, राज्य की वित्तीय बाध्यताएं एक सुसंगत पहलू है जो राज्य को सम्यक् रूप से यह सशक्त करती हैं कि वह तारीख 1 जुलाई, 2004 के रूप में अंतिम तारीख नियत कर सके । इसलिए, जो व्यक्ति जैसे याची बच गए हैं वे उन व्यक्तियों के साथ समान वर्ग नहीं बनाते हैं जो उस वेतन पुनरीक्षण को पाने के लिए हकदार हैं जिसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी बनाया गया है, जैसा कि इन रिट याचिकाओं में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दलील दी गई हैं । (पैरा 37, 51, 52, 53, 55, 57 और 58)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1983]	(1983) 1 एस. सी. सी. 305 : **डी. एस. नकारा और अन्य** बनाम **भारत संघ** ।	7

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	2011 (4) के. एच. सी. 900 : **केरल राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य** बनाम **पी. एन. रघुकुमार और अन्य** ;	31
[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 73 = 2008 (4) के. एल. टी. 597 = 2008 (4) के. एच. सी. 784 : **चन्द्रशेखर ए. के.** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	16
[2008]	2008 (2) के. एल. टी. 681 : **आंध्र प्रदेश सरकार** बनाम **सुब्बारायडू** ;	29
[2008]	(2008) 9 एस. सी. सी. 125 : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **एस. पी. एस. बैंस (रिटायर्ड) और अन्य** ;	43
[2008]	2008 (1) के. एच. सी. 665 = 2008 (1) के. एल. टी. 666 : **केरल राज्य और अन्य** बनाम **वी. जे. फिलामीना** ;	50
[2006]	(2006) 11 एस. सी. सी. 709 : **कर्नल बी. जे. अक्कारा (सेवानिवृत्त)** बनाम **भारत सरकार और अन्य** ;	46
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 754 : **पंजाब राज्य** बनाम **अमर नाथ गोयल** ;	27
[2005]	(2005) 13 एस. सी. सी. 161 : **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **ए. पी. पेंशनर्स एसोसिएशन और अन्य** ;	28
[2001]	(2001) 8 एस. सी. सी. 71 : **सुब्रत सेन** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	42
[2000]	(2000) 3 एस. सी. सी. 733 : **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **बूटा सिंह और एक अन्य** ;	25
[1999]	(1999) अनुपूरक (1) एस. सी. सी. 153 : **सचिव, वित्तीय विभाग और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल रजिस्ट्रीकरण सेवा एसोसिएशन और अन्य** ;	20

[1999] (1999) 2 एस. सी. सी. 71.
पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम **मोनोतोष राय और एक अन्य ;** 25

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 414 :
टी. एन. इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड बनाम **आर. वीरास्वामी और अन्य ;** 54

[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 30 :
धनराज और अन्य बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य ;** 41

[1998] (1998) 8 एस. सी. सी. 30 :
वी. कस्तूरी बनाम **प्रबंध निदेशक, भारतीय स्टेट बैंक, बाम्बे और अन्य ;** 47,57

[1998] (1998) 6 एस. सी. सी. 328 :
हरिराम गुप्ता बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ;** 57

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 782 :
राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **अमित लाल गांधी और अन्य ;** 22

[1997] 1997 के. एच. सी. 935 :
के. एल. राठी बनाम **भारत संघ और अन्य ;** 39

[1997] (1997) 7 एस. सी. सी. 334 :
भारत संघ बनाम **लेफ्टिनेट इंजीनियर लैकट्स ;** 57

[1994] (1994) 4 एस. सी. सी. 68 :
भारत संघ बनाम **पी. एन. मेनन और अन्य ;** 24

[1993] (1993) 4 एस. सी. सी. 62 :
पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य बनाम **रतन बिहार डे और अन्य ;** 21

[1993] (1993) 2 एस. सी. सी. 174 :
टी. एस. थिरुवेंगदम बनाम **सचिव, भारत सरकार और अन्य ;** 40

[1991]	[1991] 1 एस. सी. आर. 158 = (1991) 2 एस. सी. सी. 104 : **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग** बनाम **भारत संघ;**	24,39
[1990]	(1990) 4 एस. सी. सी. 207 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1782: **कृष्ण कुमार** बनाम **भारत संघ ;**	24,39
[1989]	(1989) 1 एस. सी. सी. 121 : **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **जे. पी. चौरसिया और अन्य ;**	54
[1984]	(1984) 3 एस. सी. सी. 126 : **मोहन लाल उजाम्सी शाह और एक अन्य** बनाम **भारत संघ ;**	38
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1409 : **देवकीनन्दन प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और अन्य ।**	38

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7569, 23346 और 37644.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाएं ।

याचियों की ओर से सर्वश्री एम. के. दामोदरन्, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सी. आर. शिव कुमार, संतोष पीटर, श्रीमती जीव विद्या, वी. पी. सीमानथिनी, एस. कार्तिक, एम. एस. उन्नीकृष्णन्, बी. कृष्णन् तथा आर. पार्थसारथी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्रीमती निशा बोस, सरकारी प्लीडर

न्यायमूर्ति टी. आर. रामचन्द्रन् नायर – इन सभी रिट याचिकाओं में विचार के लिए वर्ष 2004 में आठवां वेतन पुनरीक्षण आदेश के क्रियान्वयन के बारे में विभिन्न शिकायतें की गई हैं और इसलिए, इन सभी का निपटारा एक साथ किया जाता है । याचियों ने यह दलील दी है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी तारीख अवैध और मनमाना है और इसे तारीख 1 मार्च, 2002 से प्रभावी बनाया जाना चाहिए था ।

2. आठवां वेतन पुनरीक्षण आदेश को तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी होना क्रियान्वित किया गया था । सातवां वेतन पुनरीक्षण आदेश की पांच वर्षों की अवधि तारीख 29 फरवरी, 2002 को समाप्त होती थी । याची सेवानिवृत्त हैं जो तारीख 1 मार्च, 2002 से निरन्तर सेवा में थे और अपनी सेवा से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त हो गए थे । उनकी मुख्य शिकायत अभिकथित इस विभेद के बारे में है कि वेतन पुनरीक्षण आदेश को तारीख 1 मार्च, 2002 से क्रियान्वित नहीं किया गया है । कतिपय अन्य दलीलें भी दी गई हैं ।

3. 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7569 में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन्, 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 23346 में याचियों के ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल श्रीमती वी. पी. सीमानथिनी और 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 37644 में याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री पार्थसारथी और प्रत्यर्थियों के विद्वान् सरकारी प्लीडर श्रीमती निशा बोस को सुना गया ।

4. 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7569 में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने इसमें के याचियों द्वारा उद्भूत दलीलों का सविस्तार वर्णन किया । मामले के तथ्यों से यह दर्शित होता है कि प्रथम याची सहायताप्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों, अध्यापकों और स्टाफ का एक रजिस्ट्रीकृत एसोसिएशन है और याची सं. 2 से 15 सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं । यह मुख्यतः इंगित किया गया है कि सरकार की नीति प्रत्येक 5वें वर्ष सरकारी कर्मचारियों और अध्यापकों के वेतन का पुनरीक्षण करना होता है जो निरन्तर वर्ष 1968 से तारीख 29 फरवरी, 2002 तक किया जाता रहा है । सरकार ने तारीख 14 मार्च, 2005 के जी. ओ. (एम. एस.) सं. 115/205/वित्तीय के अनुसार एक वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त किया । उन्होंने तारीख 29 फरवरी, 2002 से वेतन पुनरीक्षण पर विचार किया किन्तु उसके क्रियान्वयन की तारीख 1 जुलाई, 2004 सिफारिश की । यह इंगित किया गया कि इसमें सामान्य व्यवहार का अनुसरण किया जाना चाहिए था और क्रियान्वयन की तारीख 1 जुलाई, 2004 स्वीकार करने के लिए कोई तर्कसंगतता नहीं है और इसलिए यह मनमाना है तथा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करता है । कर्मचारियों का एक समूह जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त हुआ था, को आठवें वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों का फायदा नहीं दिया गया था । वेतन

पुनरीक्षण आयोग द्वारा की गई प्रभावी सिफारिश की तारीख को सरकार द्वारा उसी रूप में स्वीकार नहीं किया गया और इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 की तारीख के रूप में स्वीकार किया गया जिसके कारण से 35,000 और शेष कर्मचारियों को वेतन पुनरीक्षण का फायदा देने से इनकार कर दिया गया । सरकार द्वारा लिया गया यह आधार कि इससे उस पर विशाल वित्तीय दायित्व आ जाता यदि इसे भूतलक्षी प्रभाव अर्थात् तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता, गलत नहीं है । फायदों से इनकार करना संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14, 16 के साथ ही अनुच्छेद 39(घ) का भी अतिक्रमण है । वर्ष 1968 से राज्य द्वारा अनुसरित सामान्य व्यवहार को ही स्वीकार किया जाना चाहिए था । प्रदर्श पी-2, वेतन पुनरीक्षण रिपोर्ट का आरम्भित अध्याय है और प्रदर्श पी-3, तारीख 25 मार्च, 2006 का शासकीय आदेश है जिसके द्वारा सरकार ने वेतन आयोग की सिफारिशों को अनुमोदित किया था । प्रदर्श पी-4, मामले में पुनर्विचार के लिए याचियों द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन है । प्रदर्श पी-5 और प्रदर्श पी-6, विधान सभा में दिए गए उत्तरों की प्रतियां है । याचियों ने प्रदर्श पी-7 से प्रदर्श पी-9 तक का अवलंब लिया है, संपादकीय की प्रतियां कतिपय दिनचर्या प्रतीत होती हैं जो उनके पक्षकथन का समर्थन करती हैं ।

5. यह निवेदन किया गया है कि सीमांत फायदों में अत्यधिक असमानता की गई है उन व्यक्तियों के बारे में जो तारीख 30 जून, 2004 और तारीख 31 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त हुए थे और उसी वर्ग में थे । तारीख 30 जून, 2004 को सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों को मात्र तारीख 25 नवम्बर, 1998 के वेतन पुनरीक्षण का ही फायदा दिया गया था और उसी कैडर के व्यक्तियों को जो तारीख 31 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त हुए थे उन्हें तारीख 25 मार्च, 2006 के वेतन पुनरीक्षण आदेश के अधीन फायदों के हकदार बनाया गया जो तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू हुआ था । यह निवेदन किया गया कि एक ही वर्ग में घोर विभेद किया गया है ।

6. 2008 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7569 में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने चौथे वेतन पुनरीक्षण आयोग रिपोर्ट के विशेषज्ञों का अवलंब लेते हुए, वेतन पुनरीक्षण आयोगों की नियुक्ति, उनके सिद्धांतों और अन्य मामलों के बारे में सविस्तार वर्णन किया । इस तथ्य पर जोर दिया गया कि राज्य में पांच वर्ष के अन्तराल में और केन्द्र में 10 वर्ष के अन्तराल के दौरान वेतन पुनरीक्षण आयोग नियुक्त करने का व्यवहार है । यह निवेदन किया गया कि उक्त व्यवहार बाध्यकारी

होता है और इसलिए, कर्मचारी प्रभावी प्रत्येक पांच वर्षों में वेतन पुनरीक्षण के लिए अधिकार अर्जित करते हैं । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह निवेदन किया कि वेतन पुनरीक्षण आयोग की रिपोर्ट को प्रस्तुत करने के पश्चात् निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित आदर्श आचार संहिता के प्रकाश में उसे लागू करने के बारे में एक विवाद्यक उद्भूत हुआ था जिसे इस न्यायालय के समक्ष 2006 की रिट याचिका (सिविल) सं. 6668 में लाया गया था । उसमें दिए गए निर्णय के अनुसार, तारीख 15 मार्च, 2006 के केरल विधान सभा का संकल्प उद्धृत किया गया, जो याचियों के इस पक्षकथन का भी समर्थन करता है कि प्रत्येक पांच वर्ष में वेतन पुनरीक्षण बकाया हो जाता है । इसलिए, यह निवेदन किया गया कि मंत्रिमंडल को उसे लागू करते समय तारीख 1 जुलाई, 2004 से इसे लागू करने की वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार नहीं करना चाहिए था ।

7. यह भी इंगित किया गया कि व्यक्ति, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवा में निरन्तर बने रहे और इस अवधि के दौरान भी सेवानिवृत्त हुए तथा व्यक्ति जो उसी वर्ग से तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण आदेश के हिताधिकारी हैं । चूंकि ये सभी व्यक्ति एक ही वर्ग से हैं, इसलिए, वेतन पुनरीक्षण के फायदे की अंतिम तारीख नियत करके मनमाने तरीके से इनकार नहीं किया जा सकता था । वेतन पुनरीक्षण इन सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए बकाया था । तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करते हुए, वे व्यक्ति जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक वेतन पुनरीक्षण के दायरे में आते थे, उन्हें समझा-बूझाकर बाहर कर दिया गया जो मनमाना है और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण है । इस संदर्भ में, माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों जिसमे **डी. एस. नकारा और अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ का विनिश्चय सम्मिलित है और अन्य विनिश्चयों में भी इसमें कथित सिद्धांतों का अनुसरण किया गया था, का अवलंब लिया गया । इस प्रकार, याचियों की विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा यह बलपूर्वक तर्क दिया गया कि जहां तक तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त व्यक्तियों का संबंध है, वे मात्र उसी वेतन पर आधारित पेंशन प्राप्त कर रहे हैं, जिसे वे उस वेतन पुनरीक्षण आदेश के अनुसार अर्जित कर रहे थे, जिसे तारीख 1 मार्च, 1997 से लागू किया गया था । अतएव, तारीख 30 जून, 2004 तक

---

[1] (1983) 1 एस. सी. सी. 305.

सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों और तारीख 1 जुलाई, 2004 से सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों के बीच अत्यधिक भिन्नता की गई थी । यह निवेदन किया गया कि उन व्यक्तियों के साथ ऐसा कृत्रिम अवरोध किया गया जो उसी प्रकार की प्रास्थिति में थे उन्हें ऐसे फायदों को देने से इनकार कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप घोर असमानता कारित हुई है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 39(घ) के अधीन समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है और यह निवेदन किया है कि वे व्यक्ति जो उसी कैडर और वर्ग में कार्य कर रहे थे, उनके ऐसे अधिकारों से इनकार नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार, यह इंगित किया गया कि वे व्यक्ति जो उसी वर्ग में सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें भिन्न माना गया है और उन्हें बिना किसी न्यायौचित्यता के फायदा देने से इनकार कर दिया गया है । यह भी इंगित किया गया है कि सरकार ने याचियों की शिकायत पर विचार नहीं किया और इस अभिवाक् का अवलंब लेते हुए बहरी बनी रही कि इससे अत्यधिक वित्तीय भार आ जाएगा जो सही नहीं है । यह भी इंगित किया गया कि रिट याचिकाओं के लम्बित रहने के दौरान, जहां तक याचियों का संबंध है, के बारे में, जी. ओ. (पी.) सं. 602/2010/वित्तीय तारीख 19 नवम्बर, 2010, एक नया आदेश पारित किया जो रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रदर्श पी-15 के रूप में प्रस्तुत है । उक्त आदेश द्वारा भी यद्यपि कतिपय फायदे मंजूर किए गए हैं, फिर भी इसे तारीख 1 अप्रैल, 2009 से भी प्रभावी बनाया गया है और फायदे मात्र सीमांत है और इसलिए, इसे भी याचियों की मांगों का समाधान नहीं है ।

8. एक एसोसिएशन में समाविष्ट रिट याचिका (सिविल) सं. 23346/2008 में याचियों के साथ ही वे व्यक्ति भी सम्मिलित हैं जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवा से सेवानिवृत्त हुए हैं । एसोसिएशन में रिट याचिका (सिविल) सं. 37644/2008 में याचियों के साथ ही इसी प्रकार के अन्य सेवानिवृत्त व्यक्ति भी सम्मिलित हैं ।

9. रिट याचिका (सिविल) सं. 23346/2008 में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्रीमती वी. पी. सीमानथिनी ने विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् द्वारा दिए गए तर्कों का समर्थन किया । यह भी इंगित किया है कि वस्तुतः याचियों के जैसे व्यक्ति ही पेंशन पुनरीक्षण के अलावा स्वयमेव ही वेतन पुनरीक्षण का फायदा पाने के हकदार हैं । यह तर्क दिया

कि स्वीकार वर्गीकरण अयुक्तियुक्त और विभेदकारी है । यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 39(घ) और 43 का अतिक्रमण करता है । उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों को उद्धृत किया । दोनों ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि तारीख 1 मार्च, 2002 से वेतन पुनरीक्षण लागू करके सरकार पर कोई भी अत्यधिक वित्तीय भार नहीं पड़ेगा इस तथ्य के अलावा कि याचियों के ऐसे वेतन पुनरीक्षण के अधिकार की अंतिम तारीख का मनमाना तरीके से नियतन नहीं किया जा सकता था ।

10. जहां तक रिट याचिका (सिविल) सं. 37644/2008 का संबंध है, में भी उसी प्रकार के अनुतोष की ईप्सा की गई है । विद्वान् काउंसेल श्री पार्थसारथी ने इसमें लिए गए आधारों का सविस्तार स्पष्टीकरण दिया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री दामोदरन् ने यह भी निवेदन किया है कि यदि सम्यक् वरीयता दी जाती है तो इससे लम्बे समय तक याचियों की शिकायतों का प्रतितोष हो जाएगा ।

11. स्थापित प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व मैं संक्षेप में याचियों द्वारा अवलम्बित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के प्रति निर्दिष्ट करना चाहूंगा । चतुर्थ वेतन पुनरीक्षण आयोग की रिपोर्ट, अध्याय-3 में विभिन्न सरकारों द्वारा सरकारी कर्मचारियों और विभिन्न स्तर के अध्यापकों की शिकायतों का प्रतितोष करते हुए किए गए प्रयासों के संबंध में विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं को अन्तर्विष्ट किया गया है । यह दर्शित करता है कि तारीख 1 नवम्बर, 1956 को राज्य गठित हुआ था उसके बाद तारीख 1 नवम्बर, 1956 से प्रभावी करते हुए राज्य के कर्मचारियों के वेतनमानों का एकीकरण करने के लिए मार्च, 1957 में प्रथम प्रयास किया गया था । आरम्भतः विभिन्न वर्गों अर्थात् राजपत्रित अधिकारियों, प्राइमरी स्कूल अध्यापकों, सहायता प्राप्त स्कूल अध्यापकों और नर्सों आदि के संबंध में आदेश पारित किए गए थे । आर. शंकरनारायणन् अय्यर, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, ट्रावनकोर उच्च न्यायालय की अध्यक्षता में वेतन पुनरीक्षण आयोग बनाया गया जिसकी नियुक्ति सितम्बर, 1957 में की गई थी । नया वेतनमान तारीख 1 अप्रैल, 1958 से प्रभावित हुआ । आने वाले वर्षों के दौरान, यह प्रतीत होता है कि विभिन्न अंतरालों में वेतन आयोगों की नियुक्तियां की गई थीं । जनवरी, 1965 में प्रथम वेतन आयोग, श्री के. एम. उन्नीथन्, आई. सी. एस. (पूर्व मुख्य सचिव, आंध्र प्रदेश सरकार) की अध्यक्षता में नियुक्ति हुई थी । वर्ष 1968 में इसकी अध्यक्षता श्री वी. के.

वेलायूधन्, केरल लोक सेवा आयोग द्वारा की गई थी । मंत्रि परिषद् की उप-समिति की सिफारिश के आधार पर वर्ष 1974 में एक अन्य वेतन पुनरीक्षण आयोग गठित हुआ था । वर्ष 1977 में तृतीय वेतन आयोग अर्थात् एकल सदस्यीय आयोग गठित हुआ था और एन. चन्द्रभानू, पूर्व मुख्य राज्य सचिव, को आयोग के रूप में नियुक्त किया गया था । चतुर्थ वेतन आयोग वर्ष 1983 में गठित हुआ था जिसकी अध्यक्षता पूर्व मुख्य न्यायाधीश, श्री वी. पी. गोपालन् नाम्बियार द्वारा की गई है, पंचम वेतन आयोग की अध्यक्षता न्यायमूर्ति टी. चन्द्रशेखर मेनन द्वारा की गई थी और अगले की अध्यक्षता श्री टी. गोपाल कृष्ण पिल्लई द्वारा की गई थी, वर्ष 1977 में एक अन्य की अध्यक्षता श्री पी. एम. अब्राह्म द्वारा की गई थी । उपर्युक्त उल्लिखित रिपोर्ट के अध्याय-III के पैरा 15 के उप-पैरा (II) में विभिन्न ऐतिहासिक कारकों का पता लगाने के पश्चात् निम्नलिखित उल्लिखित किया गया है :–

> "वर्तमान वेतन आयोग का समय होने का नोटिस दिया गया है । व्यवहारों से यह प्रतीत होता है कि इसे केन्द्र में प्रत्येक दस वर्षों (लगभग) के अन्तराल में और हमारे राज्य में पांच वर्षों (लगभग) के अन्तराल पर इन आयोगों की नियुक्ति की जाती है ।"

याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस मताभिव्यक्ति का ठोस रूप से अवलंब लेते हुए, यह दलील दी गई कि उक्त व्यवहार का तारीख 1 मार्च, 2002 से आठवें वेतन आयोग की रिपोर्ट को लागू करने में अपनाया जाना चाहिए ।

12. विभिन्न वेतन पुनरीक्षणों की प्रभावी तारीखें क्रमशः तारीख 1 अप्रैल, 1958, तारीख 1 जनवरी, 1966, तारीख 1 जुलाई, 1968, तारीख 1 जुलाई, 1973, तारीख 1 जुलाई, 1983, तारीख 1 जुलाई, 1988 और तारीख 1 मार्च, 1992 थी, जिस तथ्य को 1997 की वेतन आयोग रिपोर्ट के अध्याय-IV के पैरा 6.2 में अभिलिखित किया गया है जिसमें प्रभावी तारीख 1 मार्च, 1997 थी । इसमें यह भी उल्लिखित है कि दो पुनरीक्षणों के बीच सामान्यतया 5 वर्षों का अन्तराल है किन्तु वर्ष 1992 में पुनरीक्षण 3 वर्ष और 8 माह के पश्चात् किया गया था । रिपोर्ट के उक्त भाग में उक्त वेतन पुनरीक्षण को लागू करने के लिए विभिन्न पहलुओं का कथन करने के पश्चात् आयोग का यह मत था कि प्रभावी तारीख 1 मार्च, 1997 हो सकती है जो अंतिम पुनरीक्षण से 5 वर्षों की समाप्ति चिह्न होगी । याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा इसका भी अवलंब लिया गया है ।

13. अब मैं, रिट याचिका (सिविल) सं. 6668/2006 और 6829/2006 में खंड न्यायपीठ के विनिश्चय पर विचार करूंगा । उक्त रिट याचिकाएं केरल भूमि राजस्व स्टाफ एसोसिएशन द्वारा फाइल की गई थीं और निर्वाचन आयोग के एक अन्य विनिश्चय को भी चुनौती दी गई जिसमें उन्होंने वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने का विनिश्चय किया था । विभिन्न मामलों की चर्चाओं के दौरान न्यायपीठ ने तारीख 15 मार्च, 2006 को विधान सभा द्वारा स्वीकार संकल्प को निर्दिष्ट किया था । संकल्प, केन्द्रीय निर्वाचन आयोग को अग्रेषित था जिसमें उसे तारीख 10 फरवरी, 2006 को वित्त मंत्री के बजट भाषण में की गई घोषणा को ध्यान में रखते हुए वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने की अनुज्ञा दी गई थी । संकल्प निम्नलिखित है :–

"यह विधान सभा केन्द्रीय निर्वाचन आयोग से यह निवेदन करती है कि उन परिस्थितियों में वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को तत्काल लागू करने की अनुज्ञा प्रदान करे जिनमें कि यह वेतन पुनरीक्षण के संबंध में तारीख 10 फरवरी, 2006 को विधान सभा में वित्त मंत्री का बजट भाषण घोषित किया गया था जो उन्होंने केरल में तारीख 1 मार्च, 2002 को दिया था जहां प्रत्येक पांच वर्ष में वेतन पुनरीक्षण लागू करने के सिद्धांत को स्वीकार किया गया था और इसे वर्ष 2006-2007 बजट में आबंटित करने की कोटि में लाने की अपेक्षा की गई थी ।

तारीख 1 मार्च, 2006 को आयोजित मंत्रिमंडल की बैठक में वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया गया था और इसे 2 मार्च की विशेष कैबिनेट की बैठक में विचार के लिए रखा गया था ।

यह विधान सभा एकमत से निर्वाचन आयोग से यह निवेदन करती है कि वह इसे सरकार के विनिश्चय के लिए अनुमोदित करे कि तारीख 22 फरवरी, 2006 को प्रस्तुत वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को एकमात्र सरकार ही इन परिस्थितियों में लागू कर सकती है कि निर्वाचन की घोषणा कर दी गई है ।"

न्यायपीठ का यह मत था कि निर्वाचन आदर्श संहिता के आधार पर निर्वाचन आयोग द्वारा अधिरोपित निर्बंधनों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

14. इसलिए, बृहत्तर प्रश्न मुख्यतः यह है कि क्या (i) वेतन पुनरीक्षण प्रत्येक पांच वर्षों में बकाया होता है और (ii) नियत अंतिम तारीख मनमाना है । अब मैं पृथक्तः इन मुद्दों पर चर्चा करूंगा ।

(i) **वेतन पुनरीक्षण, यदि यह प्रत्येक पांच वर्षों में प्रभावी होती है ।**

15. उक्त प्रश्न पर विचार करने के पूर्व, एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या वेतन पुनरीक्षण का अधिकार कानूनी है । इस मुद्दे पर विचार करते समय सरकार द्वारा वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति करने में प्रयुक्त शक्तियों की प्रकृति भी महत्वपूर्ण हैं ।

16. इस बारे में कोई विशिष्ट कानूनी उपबंध नहीं है । यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि कोई सुसंगत कानून, सरकारी कर्मचारियों और अध्यापकों आदि को प्रत्येक पांच वर्षों के अंत में वेतन पुनरीक्षण का अधिकार प्रदत्त करता है । वेतन पुनरीक्षण आयोगों की नियुक्ति भी किसी विशिष्ट संविधि के अधीन किसी उपबंध पर आधारित नहीं है । इसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 162 के अधीन राज्य को उपलब्ध कार्यपालिका शक्ति के निबंधनों में ही किया जा सकता है । इसलिए, वेतन पुनरीक्षण आयोग को कानूनी निकाय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है । इसे जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अधीन भी नियुक्त नहीं किया जा सकता है । इसलिए, जहां तक वेतनमानों के नियतन का संबंध है, यह मात्र एक कार्यपालिका कृत है । सरकार इसे एक विशेषज्ञ निकाय जैसे वेतन पुनरीक्षण आयोग पर छोड़ती है कि वह विभिन्न पहलुओं अर्थात् सामाजिक कारकों और अन्य साधारण दशाओं जिसमें राज्य की संदाय करने की क्षमता भी सम्मिलित होती है, पर विचार करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट दे । यह प्रश्न कि नए वेतन आयोग को लागू करने की तारीख क्या होनी चाहिए, इसे इन सभी पहलुओं पर विचार करते हुए पूर्ववर्ती प्रभावी वेतन पुनरीक्षण आदेश के पांच वर्षों की समाप्ति से मिलान करना चाहिए । अब यह मुद्दा विद्वान् सरकारी प्लीडर श्रीमती निशा बोस द्वारा अवलम्बित **चन्द्रशेखर ए. के.** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के प्रकाश में अनिर्णीत विषय नहीं रहा । निर्णय के पैरा 18 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"18. यह प्रश्न की क्या वेतनमान पुनरीक्षित होना चाहिए या

---

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 73 = 2008 (4) के. एल. टी. 597 = 2008 (4) के. एच. सी. 784.

> नहीं यह राज्य का नीतिगत विनिश्चय होता है । किसी भी व्यक्ति में पुनरीक्षित वेतनमान लागू कराने के लिए कोई विधिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है । यह एक निकाय द्वारा सिफारिश की जा सकती है किन्तु अन्ततोगत्वा इसे उस नियोजक या राज्य द्वारा स्वीकार किया जाता है जो इसके वित्तीय भार को वहन करता है ।"

इसलिए, आवश्यक रूप से यह राज्य का एक नीतिगत विनिश्चय है और किसी भी व्यक्ति में पुनरीक्षित वेतनमान लागू कराने के लिए कोई विधिक अधिकार प्राप्त नहीं होता है । यह सरकार पर निर्भर करता है कि वह वेतन पुनरीक्षण आयोग की विशिष्ट सिफारिशों को स्वीकार या नामंजूर करे और राज्य के मामले में पूर्ण स्वतंत्रता होती है । इसलिए, यद्यपि यह एक व्यवहार (सिवाय वर्ष 1992 में जो 3 वर्ष 8 माह के पश्चात् गठित हुआ था) था जहां तक 1 अप्रैल, 1958 से वेतन पुनरीक्षण को पूर्ववर्ती पुनरीक्षण के लगभग 5 वर्ष बीतने के पश्चात् प्रभावी तारीख बनाया गया था, यह नहीं कहा जा सकता कि इससे कर्मचारी स्वतः ही 5 वर्ष बीतने के पश्चात् वेतन पुनरीक्षण का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं । वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति राज्य की कार्यपालिका आदेश से होती है और इसलिए आयोग को कानूनी निकाय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है और इसलिए आयोग की नियुक्ति के साथ ही उनकी सिफारिशों को लागू करना राज्य की नीतिगत विनिश्चय की कोटि में आता है । जैसा कि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **चन्द्रशेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पिछले वेतन पुनरीक्षण के 5 वर्ष बीतने के पश्चात् कर्मचारियों में वेतन पुनरीक्षण का कोई कानूनी अधिकार निहित नहीं होता है ।

17. इसलिए, राज्य में प्रभावी वेतन पुनरीक्षणों का इतिहास किसी भी प्रकार से याचियों के इस पक्षकथन की सहायता नहीं करते हैं कि यह प्रत्येक पांच वर्ष की समाप्ति पर बकाया हो जाता है । निस्संदेह विभिन्न आयोग लगभग पांच वर्षों की अवधि की समाप्ति के दौरान ही समय-समय पर नियुक्त किए गए हैं और सुस्पष्टतः जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है वर्ष 1992 में वेतन पुनरीक्षण तीन वर्ष और आठ माह के पश्चात् ही प्रभावी हो गया था । इसलिए, पांच वर्षों के व्यवहार का भी इसमें अनुसरण नहीं किया गया था । इसलिए, यह विनिश्चय कि क्या यह कमत्तर अवधि अर्थात् पांच वर्षों से कम होनी चाहिए अथवा क्या इसे पांच वर्ष या इससे अधिक अवधि में होनी चाहिए यह राज्य के नीतिगत क्षेत्र के

अन्तर्गत आता है । जहां तक कर्मचारियों और अध्यापकों का संबंध है, उन्हें प्रत्येक पांच वर्षों की समाप्ति पर वेतन पुनरीक्षण पाने का कोई विधिक अधिकार नहीं है । व्यवहार का दावा किसी भी प्रकार से विधिक तौर पर प्रवर्तनीय अधिकार के रूप में परिपक्व नहीं हो सकता है । अतएव, जैसा कि याचियों द्वारा दलील दी गई है लागू करने की तारीख 1 मार्च, 2002 होनी आवश्यक नहीं है और यह सरकार के चुनाव पर निर्भर करती है ।

(ii) तारीख 1 जुलाई, 2004 का चुनाव, क्या मनमाना है ।

18. तारीख 1 जुलाई, 2004 की सिफारिश वेतन आयोग द्वारा की गई थी । रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत प्रदर्श पी-2 के पैरा 1.17 पर निम्नलिखित रूप से विचार किया गया है :–

> "अधिकतर संघों/एशोसिएशनों की मांगें यह थीं कि नए वेतनमान की प्रभावी तारीख 1 मार्च, 2002 से होनी चाहिए इस आधार पर कि पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण आयोग की प्रभावी तारीख के पश्चात् 5 वर्ष की अवधि उस तारीख को समाप्त होती है । तथापि, इस मांग का आयोग ने भी समर्थन नहीं किया है । नए वेतन आयोग की संरचना बेसिक वेतन में महंगाई भत्ते का 59 प्रतिशत मिलाते हुए तैयार किया गया था और उसके बाद इसे ऐसी स्थिति में रखा गया जिससे कि यह केन्द्रीय सरकार की वेतन संरचना के परिवर्तित पैटर्न के सुविधानुसार हो सके । केन्द्र में इसे 1 अप्रैल, 2004 से प्रभावी बनाया गया था जब महंगाई भत्ते का 50 प्रतिशत महंगाई वेतन के रूप में सम्मिलित किया गया था । वेतन=महंगाई वेतन से गठित बेसिक वेतन 1 अप्रैल, 2004 से लागू किया गया था । इसलिए, हमारे राज्य में 1 अप्रैल, 2004 के पूर्व की तारीख से पुनरीक्षण मंजूर करने का कोई मामला नहीं बनता है । केरल में, जहां शैक्षणिक संस्थाओं जिनमें सहायताप्राप्त संस्थाएं सम्मिलित हैं, में बड़ी संख्या में अध्यापकों के वेतन संरचना की प्रभावी पुनरीक्षण की तारीख 1 जुलाई से अत्यधिक समुचित पाया गया है । इसलिए, आयोग ने यह सिफारिश की है कि पुनरीक्षित वेतनमान तारीख 1 जुलाई, 2004 से मंजूर की जा सकती है किन्तु तारीख 1 जुलाई, 2004 से तारीख 31 मार्च, 2005 के बकायों को सांकेतिक माना जा सकता है और वस्तुतः वित्तीय फायदों को अन्तरिम अनुतोषों को समायोजित करने के पश्चात् तारीख 1 जुलाई, 2005 से प्रभावी करना मंजूर किया जा सकता है ।"

तारीख 1 जुलाई, 2004 को इसमें विभिन्न आधारों पर सुझाया गया था । वे हैं - (क) नए वेतन की संरचना बेसिक वेतन में महंगाई भत्ते का 59 प्रतिशत मिलाते हुए तैयार किया गया था और उसके बाद इसे ऐसी स्थिति में रखा गया था जिससे कि यह केन्द्रीय सरकार की वेतन संरचना के परिवर्तित पैटर्न के सुविधानुसार हो सके और केन्द्र में इसे तारीख 1 अप्रैल, 2004 से प्रभावी बनाया गया था जब महंगाई भत्ते का 50 प्रतिशत महंगाई वेतन के रूप में रखा गया था, (ख) उपर्युक्त के प्रकाश में राज्य में तारीख 1 अप्रैल, 2004 से पूर्व पुनरीक्षण मंजूर करने का कोई मामला नहीं बनता है और (घ) चूंकि शैक्षणिक संस्थाओं जिनमें सहायताप्राप्त संस्थाएं सम्मिलित हैं, में बड़ी संख्या में अध्यापक हैं, इसलिए, वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 जुलाई से प्रभावी बनाया जा सकता है ।

19. सरकार ने तारीख 25 मार्च, 2006 का आदेश जारी करते हुए, वेतन आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार किया था, जो प्रदर्श पी-3 के रूप में प्रस्तुत है । इसके पैरा 5 में यह कथन है कि "मौजूदा वेतनमान तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी तौर पर पुनरीक्षित होगा" और अन्तिम तौर पर, पैरा 53 में निम्नलिखित के रूप में प्रभावी तारीख दी जाती है :–

> "पुनरीक्षित वेतनों की प्रभावी तारीख 1 जुलाई, 2004 से होगी । उच्चतर वर्ग स्कीम, विभिन्न भत्तों और अन्य फायदों (सिवाय अर्जित छुट्टी के अभ्यर्पण) में पुनरीक्षित समयबद्ध प्रभावी तारीख 1 मार्च, 2006 से होगी । उच्चतर श्रेणियों पर आधारित संवर्धित अनुपात/प्रतिशत की प्रभावी तारीख इस आदेश की तारीख से होगी । के. एस. आर., भाग I, के नियम 28(क) और 37(क) का उपांतरण (उपर्युक्त खंड 47 से 52 द्वारा) इस आदेश की तारीख के पश्चात् प्रोन्नतियों आदि में लागू होगा ।"

तारीख 1 जुलाई, 2004 के रूप में तारीख के चुनाव की पृष्ठभूमि यही है । प्रश्न यह है कि क्या यह मनमाना है ।

20. अंतिम तारीख नियत करने के संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों में सुसंगत प्रश्नों की परीक्षा की गई है । इसमें जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, वेतन पुनरीक्षण आयोग की प्रास्थिति एक विशेषज्ञ निकाय की है । सिद्धांत जो विभिन्न विनिश्चयों में दिए गए हैं, उनसे यह भी दर्शित होता है कि सामान्यतः विशेषज्ञ निकाय जैसे वेतन पुनरीक्षण आयोग से विचार-विमर्श के बारे में

न्यायालय तब तक उनकी सिफारिशों में हस्तक्षेप नहीं करता है जब तक कि वे मनमाना और बेतुका नहीं है । वेतन आयोग की सिफारिशों के प्रभाव पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सचिव, वित्तीय विभाग और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल रजिस्ट्रीकरण सेवा एसोसिशएन और अन्य**[1] वाले मामले में वेतन आयोग की ऐसी सिफारिशों की वैधता पर विचार करने के लिए न्यायालय की शक्ति की परीक्षा की और उसकी सीमाओं को अधिकथित किया । पैरा 12 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "हमें, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलम्बित निर्णयज्ञ विधि पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह सुस्थिर है कि पदों की समानता और वेतनमानों का अवधारण करना कार्यपालिका का प्राथमिक कृत्य है न कि न्यायपालिका का और इसलिए साधारणतया न्यायालय उन कार्य मूल्यांकनों के परिणाम में हस्तक्षेप नहीं करते हैं जिसे साधारणतया विशेषज्ञ निकायों, जैसे वेतन आयोग आदि पर छोड़ा जाता है । किन्तु, यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय के पास कोई अधिकारिता नहीं है और व्यथित कर्मचारियों को कोई उपचार नहीं दे सकता है यदि उन्हें राज्य की मनमाना कार्रवाई या अकार्रवाई द्वारा अन्यायोचित तौर पर हानि पहुंचती है । तथापि, न्यायालय यह महसूस करते हैं कि कार्य मूल्यांकन बहुत ही कठिन कार्य है और उद्देश्य को उस समय के भीतर प्राप्त करना होता है जिसे विशेषज्ञ निकाय अपेक्षित विशेषज्ञों की सहायता से प्राप्त करते हैं जिसके लिए उन्हें कर्मचारियों के विभिन्न समूह द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन करते हुए अपेक्षित सुसंगत आंकड़े और वेतनमानों को समझने में अत्यधिक कठिनाई होती है ....। इसलिए इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि पदों की समानता और वेतनमानों की समानता एक जटिल मामला होता है जिसे बेहतर तरीके से विशेषज्ञ निकाय पर छोड़ा जाता है जब तक कि यह अभिपुष्ट निष्कर्ष निकालने के लिए अभिलेख पर तर्कपूर्ण सामग्री नहीं होती है कि दिए गए पद के लिए वेतनमान नियत करते समय गंभीर त्रुटि की गई है और न्यायालय का हस्तक्षेप अन्याय को समाप्त करने के लिए पूर्णरूपेण आवश्यक है ।"

---

[1] (1999) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 153.

निस्संदेह, उपर्युक्त मताभिव्यक्तियां वेतन आयोग द्वारा स्वीकार सिद्धांतों में हस्तक्षेप करने के क्षेत्र में विचार करते समय व्यक्त की गई थीं किन्तु, इन सिद्धांतों को इसमें प्रस्तुत प्रश्नों और प्रभावी तारीख के बारे में प्रदर्श पी-2 में आयोग द्वारा की गई सिफारिशों की वैधता पर विचार करते समय विवेक में रखना होगा ।

21. अंतिम तारीख का नियतन और न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करने के क्षेत्र के बारे में, सुसंगत सिद्धांतों की परीक्षा **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** बनाम **रतन बिहार डे और अन्य**[1] वाले मामले के पैराग्राफ 7, 8 और 9 में की गई थी और अंततः निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "यह राज्य या निगम, जैसी भी दशा हो, के लिए यह खुला होता है कि वह सेवा की शर्तों को एकपक्षीय तौर पर परिवर्तित कर सके । सेवान्त प्रसुविधाओं के साथ ही पेंशन प्रसुविधाएं सेवा की शर्तें गठित करती हैं । नियोजक को निस्संदेह वेतनों और/अथवा वेतनमानों के साथ ही सेवान्त प्रसुविधाओं और पेंशन प्रसुविधाओं को पुनरीक्षित करने की शक्ति होती है । तारीख विनिर्दिष्ट करने की शक्ति जब से वेतनमानों या सेवान्त प्रसुविधाओं/पेंशन प्रसुविधाओं, जैसी भी दशा हो, का पुनरीक्षण लागू किया जाता है की उक्त शक्ति सहवर्ती होती है । राज्य उस तारीख को विनिर्दिष्ट कर सकते हैं जिस तारीख से विरचित विनियम या संशोधन, जैसी भी दशा हो, प्रवर्तन में लाया जाता है । यह निगम की शक्ति के भीतर होता है कि वह विनियमों को ऐसी तारीख से प्रभावी बनाए जो या तो भूतलक्षी या भविष्यलक्षी हो सकते हैं जैसा कि वे विनिर्दिष्ट करना चाहते हैं । मात्र यह शर्त होती है कि ऐसे मामलों में राज्य अपनी मर्जी से अंतिम तारीख का चयन नहीं कर सकता है । ऐसी अंतिम तारीख को युक्तियुक्त तरीके से और सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् नियत करना चाहिए । जहां तक कि ऐसी तारीख का युक्तियुक्त तरीके से अर्थात् उसी प्रकार की परिस्थितियों में स्थित व्यक्तियों के बीच विभेद किए बिना विनिर्दिष्ट किया जाता है तो ऐसे मामलों में विभेद के आधार पर न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं होता है ।"

इसमें **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत से विभेद

---

[1] (1993) 4 एस. सी. सी. 62.

किया गया है इसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सुसंगत सिद्धांतों से यह दर्शित होता है कि यह नियोजक की शक्ति होती है कि वह वेतनों और/अथवा वेतनमानों के साथ ही सेवान्त प्रसुविधाओं/पेंशन प्रसुविधाओं को पुनरीक्षित करे । इसलिए, अंतिम तारीख नियत करने की शक्ति, उक्त शक्ति के सहवर्ती है । तारीख को युक्तियुक्त तरीके से नियत किया जाना चाहिए ।

22. उपर्युक्त विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, **राजस्थान राज्य और एक अन्य** बनाम **अमित लाल गांधी और अन्य**[1] वाले पश्चात्वर्ती मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अंतिम तारीख नियत करते समय एकमात्र वित्तीय प्रभाव पर विचार किया जा सकता है ।

23. इस संदर्भ में, श्री दामोदरन् ने **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया । उक्त निर्णय का पैरा 42 इस प्रकार है :–

> "यदि यह निर्विवाद प्रतीत होता है जैसा कि मुझे लगता है कि पेंशनभोगी पेंशन फायदों के प्रयोजन के लिए एक वर्ग गठित करते हैं जिनका उर्ध्वगामी पुनरीक्षण होना है, यदि पुनरीक्षण के प्रयोजन से असंबंधित अर्हता मापदंड नियत करने के लिए मनमाने तौर पर एक समान वर्ग को विभाजित करने की अनुज्ञा दी जाती है और ऐसा वर्गीकरण कुछ युक्तिसंगत सिद्धांतों पर आधारित पाया जाता है । वर्गीकरण, जैसा कि सुस्थिर है, कुछ युक्तिसंगत सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए और युक्तिसंगत सिद्धांत का ईप्सित उद्देश्यों से संबंध होना चाहिए । हमें, पेंशन संदाय के मातहत उद्देश्यों को निर्दिष्ट करना है । यदि राज्य पेंशन स्कीम का उदारीकरण आवश्यक समझता है, यदि हम उन फायदों के पीछे मंजूर करने वाले सिद्धांत को युक्तिसंगत नहीं पाते हैं जो उन व्यक्तियों को दी जानी है जो उस नियत तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं और जो उस नियत तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं उनके फायदों को इनकार कर दिया गया है । यदि उन सरकारी सेवकों की वृद्धावस्था की दशा में सामाजिक सुरक्षा को बढ़ाने के लिए उदारीकरण पर विचार करना आवश्यक समझा जाता है तो वे जो पूर्ववर्ती सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें पश्चात्वर्ती सेवानिवृत्त सेवकों से बुरी हालत में नहीं रखा जा सकता

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 782.

है । इसलिए, यह विभाजन, जो पेंशनभोगियों को दो वर्गों में वर्गीकृत करता है, किसी युक्तिसंगत सिद्धांत पर आधारित नहीं है और यदि युक्तिसंगत सिद्धांत अन्यथा समान प्रास्थिति में रहने वाले व्यक्तियों को कुछ और देने को ध्यान में रखते हुए कुछ पेंशनभोगियों को विभाजित किया जाता है तो यह विभेदकारी होगा । उदाहरण के लिए, दो व्यक्तियों को लेते हैं, एक व्यक्ति ठीक एक दिन पूर्व सेवानिवृत्त होता है और दूसरा विनिर्दिष्ट तारीख से ठीक एक दिन पश्चात् सेवानिवृत्त होता है । दोनों एक ही वर्ग में रखे जाते हैं तो उनकी औसत उपलब्धियां समान होती हैं और दोनों ही समान सेवा के वर्ष पूरी करते हैं । किस प्रकार आकस्मिक परिस्थितियों में एक दिन पूर्व या एक दिन पश्चात् सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों को पेंशन मामलों में पूर्णतया असमान व्यवहार करने की अनुज्ञा दी जा सकती है ? एक दिन पूर्व सेवानिवृत्त होने वाला व्यक्ति 8,100/- रुपए प्रतिवर्ष की सीमा के अध्यधीन रहेगा और उसकी औसत कार्य करने की उपलब्धियां 36 माह का वेतन होगा जबकि दूसरा व्यक्ति 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष की सीमा के अध्यधीन रहेगा और उसकी औसत उपलब्धियां पिछले 10 माह औसत के आधार पर संगणित होंगी । ऐसे कृत्रिम विभाजन से कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं और यह किसी सिद्धांत से संबंधित नहीं होता है और यदि कोई भी सिद्धांत, चाहे जो भी हो, उसका पेंशन स्कीम के उदारीकरण से ईप्सित उद्देश्य के साथ पूर्णरूपेण कोई संबंध नहीं होता है । वस्तुतः, ऐसे मनमाने विभाजन का न केवल उदारीकृत पेंशन स्कीम के साथ कोई संबंध होता है अपितु यह प्रति-उत्पादक होता है और सम्पूर्ण पेंशन स्कीम के विरुद्ध प्रत्युत्तर देता है । अनुच्छेद 14 के अधीन गारंटीकृत समान व्यवहार का यह पूर्णरूपेण अतिक्रमण करता है क्योंकि पेंशन नियम कानूनी प्रकृति के होते हैं, विनिर्दिष्ट तारीख से नियम विभेद पैदा करते हैं और पेंशन संराशिकरण कम्यूटेशन के मामले में समानों के साथ विभेदकारी व्यवहार करते हैं । सेवानिवृत्ति के मामलों में भिन्नता हमेशा ही अभिघातज प्रभाव डालते हैं । इस प्रकार, विभाजन मनमाना और असैद्धांतिक दोनों हैं । इसलिए, वर्गीकरण, अनुच्छेद 14 के परीक्षण पर खरा नहीं उतरता है ।”

निस्संदेह, इसमें कथित सिद्धांतों से यह दर्शित होता है कि जब पेंशनभोगी एक वर्ग गठित करते हैं तो ऐसे समान वर्ग को अर्हता मानदंड नियत करते

हुए मनमाने तौर से विभाजित नहीं किया जा सकता है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे मामलों में वर्गीकरण संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 के परीक्षण पर खरा नहीं उतरेगा । माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त विनिश्चय पर उपर्युक्त उद्धृत रूप में कथित सिद्धांतों की सार्वभौमिक प्रयोज्यता के बारे में विभिन्न पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में विचार किया गया । वस्तुतः उक्त निर्णय का उन मामलों में विचारित किया गया जहां उदारीकृत पेंशन स्कीम को पेंशन के लघुकरण के साथ ही पेंशनभोगियों के संबंध में प्रस्तुत किया गया था । उक्त उदारीकृत पेंशन फार्मूले को उन सरकारी कर्मचारियों के संबंध में भविष्यलक्षी तौर पर प्रयोज्य बनाया गया था जो सेवा में थे और तारीख 31 मार्च, 1979 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे । इसलिए, वस्तुतः यह एक मौजूद फार्मूले का उदारीकरण था और यह नए फार्मूले का प्रस्तुतीकरण नहीं था । यह जहां तक उक्त मामले का संबंध है, विभेदकारी लक्षण है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पश्चात्वर्ती विनिश्चयों जिनमें सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय भी सम्मिलित हैं, में स्पष्टीकरण किया गया था । वस्तुतः **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय के पैरा 46 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "और यह जानते हैं कि यह नई स्कीम नहीं है, यह मौजूदा स्कीम का मात्र पुनरीक्षण है । यह नया सेवानिवृत्त फायदा नहीं है । यह एक मौजूदा फायदे का उर्ध्वगामी पुनरीक्षण है । यदि यह एक पूर्णरूपेण नई अवधारणा होती तो नए सेवानिवृत्त फायदे का इस तर्क के साथ मूल्यांकन किया जा सकता है कि जो पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं, वे इसकी प्रत्याशा नहीं कर सकते थे ।"

यह मताभिव्यक्तियां नितान्त महत्वपूर्ण हैं ।

24. अब मैं, माननीय उच्चतम न्यायालय के कतिपय विनिश्चयों के प्रति निर्दिष्ट करना चाहूंगा जिनमें **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांतों का स्पष्टीकरण किया गया और प्रतिष्ठित किया गया है । **भारत संघ** बनाम **पी. एन. मेनन और अन्य**[1] वाले मामले में भी **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया गया । इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या नियत अंतिम तारीख मनमाना हो सकता है, निर्णय के पैरा 8 में सुसंगत सिद्धांतों को

---

[1] (1994) 4 एस. सी. सी. 68.

निम्नलिखित अधिकथित किया गया :–

> "जब कभी सरकार या एक प्राधिकारी जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य अभिनिर्धारित किया जा सकता है, वह उन व्यक्तियों के लिए एक स्कीम विरचित करता है जो सेवा से सेवानिवृत्त होने वाले हैं तो कई कारणों से यह हमेशा ही संभाव्य नहीं होता है कि सेवानिवृत्ति की तारीखों के होते हुए भी उनमें से किसी एक या सभी तक फायदों को विस्तारित किया जा सके । इस प्रकार, पश्च सेवानिवृत्त फायदों के संबंध में कोई पुनरीक्षित स्कीम यदि अंतिम तारीख के साथ लागू की जाती है जिसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 के प्रकाश में युक्तियुक्त और तर्कसंगत अभिनिर्धारित किया जा सकता है तो उसे अवैध अभिनिर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है । यह 'मनमर्जी से तारीख नियत करने' की कोटि में नहीं आएगा जैसा कि ज्येष्ठता के नियतन के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा डी. आर. नीम **बनाम** भारत संघ और अन्य (ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1301) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था । जब कभी पुनरीक्षण किया जाता है तो अंतिम तारीख नियत करना आज्ञापक हो जाता है क्योंकि फायदों को सरकार के पास उपलब्ध वित्तीय संसाधनों के भीतर ही मंजूर किया जाता है ।"

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है ।)

उक्त पैराग्राफ से यह सुस्पष्ट होता है कि सरकार के पास उपलब्ध वित्तीय संसाधन भी सुसंगत मापदंड हैं । इस प्रकार, पैरा 14 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चुनाव तारीख के बारे में केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया गया :–

> "हमारे अनुसार, अंतिम तारीख, जब तारीख नियत की गई थी तब मूल्य सूचकांक स्तर 272 था, के रूप में तारीख 30 सितम्बर, 1977 नियत करने के लिए अपीलार्थी-भारत संघ की ओर से प्रकट कारणों को मनमाना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । जब वेतन में महंगाई भत्ते का एक भाग मिलाने का विनिश्चय लिया गया तब मूल्य सूचकांक स्तर 272 पर था, जो तृतीय वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर लिया गया प्रतीत होता है । इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अंतिम तारीख का चयन मनमाने तरीके से किया गया है । न केवल पेंशनिक फायदों के

पुनरीक्षण के मामलों में अपितु वेतनमान के पुनरीक्षण के संबंध में भी कुछ तर्कसंगत या युक्तियुक्त आधारों पर अंतिम तारीख नियत करते हुए विस्तारित फायदों के लिए भी नियत की जाती है । इसका दृष्टांत दिया जा सकता है । सरकार ने अपने कर्मचारियों के वेतनमान का पुनरीक्षण करने का विनिश्चय किया और उसे लागू करने के लिए अगले वर्ष की 1 जनवरी की तारीख या पिछले वर्ष की 1 जनवरी की तारीख नियत की । अन्यथा मामले में, उसके कर्मचारियों का एक बड़ा वर्ग वेतनमान के उक्त पुनरीक्षण से वंचित हो जाता, जो इस तारीख के पूर्व अधिवार्षिता प्राप्त कर रहे होते । एक कर्मचारी जो प्रश्नगत वर्ष के 31 दिसम्बर को सेवानिवृत्त हो गया है वह मात्र एक दिन के कारण वेतनमान से वंचित हो जाता जिससे उसके पूरे जीवनकाल में उसका पेंशनिक फायदा प्रभावित हो सकता था । ऐसी कोई स्कीम सुस्पष्ट अभिनिर्धारित नहीं की जा सकती है जिससे कि उन सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जा सकता है और ध्यान में रखा जा सकता है जो एक समय में सेवा में कार्यरत थे । इस प्रकार, न्यायालय को ऐसी शिकायत की परीक्षा करते समय मात्र यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्या विशिष्ट फायदा या स्कीम तक विस्तारित करने के लिए नियत विशिष्ट तारीख उद्देश्यपरक और तर्कसंगत विचार करने के पश्चात् ही की गई है ।"

इसलिए, यह सुस्पष्ट है कि जब कभी सरकार माह के प्रथम दिन से आरम्भ करते हुए वेतन पुनरीक्षण आदेश को लागू करने की तारीख नियत करती है तो कोई कर्मचारी जो पूर्ववर्ती माह की 31 तारीख को सेवानिवृत्त हुआ है तो वह नए वेतनमान से वंचित हो जाएगा जिससे उसका पेंशनिक फायदा भी प्रभावित हो सकता है । किन्तु, उपर्युक्त विनिश्चय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों को लागू करते हुए एकमात्र इसे ही विचार में नहीं लेना होगा । इस मत को अपनाते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने सांविधानिक न्यायपीठों के विनिश्चयों अर्थात् **कृष्ण कुमार** बनाम **भारत संघ**[1] और **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया, दोनों ही मामलों में **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को स्पष्टीकृत और प्रतिष्ठित किया गया । वस्तुतः, **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग** (उपर्युक्त) वाले मामले

---

[1] (1990) 4 एस. सी. सी. 207 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1782.

[2] [1991] 1 एस. सी. आर. 158 = (1991) 2 एस. सी. सी. 104.

में सांविधानिक न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में निकाला गया निष्कर्ष उदारीकृत पेंशन स्कीम के अनुसरण में दिए गए उदारीकरण के फायदों के संदर्भ में था जो सभी सेवानिवृत्त व्यक्तियों को उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख होते हुए भी समान रूप से दिया गया था और उन फायदों को मात्र उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं किया जा सकता था जो विनिर्दिष्ट तारीख को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे । **अमृत लाल गांधी** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रतन बिहारी डे** (उपर्युक्त) और **पी. एन. मेनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत पर विचार करने के पश्चात् पैराग्राफ 17 में यह अभिनिर्धारित किया कि "विनियमों को भूतलक्षी बनाने के लिए वित्तीय प्रभाव" पर ही अंतिम तारीख नियत करते समय एकमात्र विचार किया जा सकता है । हमारी राय में, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अंतिम तारीख मनमाने तौर पर या बिना किसी कारण के नियत की गई है । उच्च न्यायालय तारीख 1 जनवरी, 1990 के स्थान पर तारीख 1 जनवरी, 1986 प्रतिस्थापित करते हुए, रिट याचिका मंजूर करने में स्पष्टतः त्रुटि कारित की है ।

25. **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **मोनोतोष राय और एक अन्य**[1] वाले मामले में एक अधिकारी जो वेतन आयोग की सिफारिशों की स्वीकृति के काफी समय पूर्व सेवानिवृत्त हुआ था जिसमें पुनरीक्षित पेंशन का उपबंध किया गया था, उसने उसके फायदों की ईप्सा यह दलील देते हुए की कि अंतिम तारीख मनमाना नियत की गई है । न्यायपीठ ने यह उल्लिखित किया कि पेंशन संदाय के लिए नया उपबंध वेतनमान की मात्र पुनर्संरचना का परिणाम था । निर्णय के पैरा 10 में विधिक प्रास्थिति को इस प्रकार स्पष्टीकृत किया गया :–

> "हम इस तथ्य को पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वर्ष 1987 के संशोधन द्वारा पुरःस्थापित पेंशन संदाय के लिए नए उपबंध सेवा सदस्यों के वेतनमान की मात्र पुनर्संरचना के परिणाम थे । उच्च न्यायालय का खंड न्यायपीठ ने इस प्रास्थिति को मान्यता दी है कि रिट याची उच्चतर वेतनमान के फायदे का दावा नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे ऐसे वेतनमानों के पुरःस्थापन से बहुत पहले सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके हैं ।"

---

[1] (1999) 2 एस. सी. सी. 71.

डी. एस. नकारा (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को स्पष्टीकृत किया गया और विभिन्न विनिश्चयों जिनमें **पी. एन. मेनन** (उपर्युक्त) और **अमृत लाल गांधी** (उपर्युक्त) वाले मामले सम्मिलित हैं, में अवलंब लिया गया । इसी प्रकार, **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **बूटा सिंह और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया गया जिसमें भी याचियों ने अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् जारी आदेशों/अधिसूचनाओं द्वारा प्रदत्त फायदों की ईप्सा की थी । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विशिष्ट तारीख से अतिरिक्त फायदों की पुष्टि मनमाना नहीं कही जा सकती है । निर्णय के पैरा 7 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "गुणागुणों पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि सेवानिवृत्ति फायदे जिसका प्रत्यर्थी द्वारा दावा किया गया है, वे फायदे हैं जिसे पश्चात्वर्ती आदेशों/अधिसूचनाओं द्वारा प्रदत्त किया गया है । इसलिए, वे व्यक्ति जो इन अधिसूचनाओं और आदेशों के प्रवर्तन में आने के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं वे सेवानिवृत्ति के उन भिन्न नियमों द्वारा शासित होंगे जिन पुराने नियमों के अधीन वे सेवानिवृत्त हुए थे । व्यक्तियों के दो संवर्ग जो सेवानिवृत्त हुए हैं वे दो भिन्न नियमों द्वारा शासित थे । इसलिए, उन्हें समान नहीं कहा जा सकता है । आगे अतिरिक्त फायदा मंजूर करने से वित्तीय जटिलताएं भी आती हैं । अतएव, ऐसे अतिरिक्त फायदों की पुष्टि के लिए तारीख विनिर्दिष्ट करने को मनमाना नहीं कहा जा सकता है ।"

सुस्पष्टतः, मुद्दे पर निष्कर्ष निकालने के लिए इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि व्यक्तियों के दो समूह दो भिन्न नियमों द्वारा शासित होते हैं । एक अन्य महत्वपूर्ण कारक यह है कि माननीय उच्चतम न्यायालय का यह मत था कि अतिरिक्त फायदों को मंजूर करने से वित्तीय जटिलताएं उद्भूत होंगी और इसलिए, तारीख के विनिर्दिष्टिकरण को मनमाना नहीं कहा जा सकता है । इसमें भी **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले को स्पष्टीकृत किया और इसके पैरा 8 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :–

> "............के. एल. राठी **बनाम** भारत संघ [(1997) 6 एस. सी. सी. 7] वाले नवीनतम विनिश्चय में इस न्यायालय ने इस न्यायालय

[1] (2003) 3 एस. सी. सी. 733.

के विभिन्न निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले का इस अभिप्रायः में निर्वचन नहीं किया जा सकता है कि उन व्यक्तियों की परिलब्धियां जो अधिसूचित तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें समान स्तर में अभिनिर्धारित करते हुए समान समझा जाना चाहिए ....।"

यहां यह उल्लेख करना लाभदायक हो सकता है कि यह ऐसा मामला था जिसमें नए फायदे को तारीख 31 मार्च, 1985 को या उसके पश्चात् मंजूर किए गए थे, जबकि इसमें के याची वर्ष 1982 में सेवानिवृत्त हुए थे ।

26. अब, मैं कुछ नवीनतम विनिश्चयों को निर्दिष्ट करूंगा जिसमें भी **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में विस्तारपूर्वक चर्चा करने के पश्चात् इसी प्रकार का मत अपनाया गया था ।

27. **पंजाब राज्य** बनाम **अमर नाथ गोयल**[1] वाले मामले में सेवानिवृत्त सेवकों को फायदा देने के लिए तारीख 1 अप्रैल, 1995 को या उसके पश्चात् की अंतिम तारीख स्वीकार की गई थी और सरकार द्वारा इंगित कारणों में से एक कारण वित्तीय मजबूरी बताई गई थी जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विधिमान्य आधार अभिनिर्धारित किया गया था । निर्णय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि नए फायदे वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर मंजूर किए गए थे । निर्णय के पैराग्राफ 26 में विधिक प्रास्थिति को निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया गया था :–

"कर्मचारियों की ओर से दिए गए इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि केन्द्र सरकार/राज्य सरकारों का मात्र उन कर्मचारियों, जो 1 अप्रैल, 1995 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं या उनकी मृत्यु हुई है, को फायदा देने का विनिश्चय उसके निमित्त वित्तीय जटिलताओं की गणना करने के पश्चात् या तो अतर्कसंगत है या मनमाना है । वित्तीय और आर्थिक जटिलताएं केन्द्र या राज्य स्तर पर सरकार के प्रशासन हेतु किसी नीतिगत विनिश्चय के लिए अत्यधिक सुसंगत और समुचित है ।"

इस प्रकार, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि वित्तीय और आर्थिक जटिलताएं केन्द्र और राज्य स्तर पर सरकार के प्रशासन हेतु किसी

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 754.

नीतिगत विनिश्चय के लिए हमेशा ही सुसंगत होती हैं । इसमें यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि वेतन आयोग की सिफारिशें हमेशा ही सरकार पर बाध्यकारी नहीं होती हैं । वस्तुतः उस मामले में भी अंतिम तारीख आठवें वेतन आयोग द्वारा सुझाई गई थी और राज्य द्वारा उसकी स्वीकृति को अतर्कसंगत या मनमाना या संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 के अधीन अधिकारों का अतिलंघन अभिनिर्धारित नहीं किया गया था । उक्त मत निर्णय के पैराग्राफ 28 में निकाले गए निम्नलिखित निष्कर्षों से स्पष्ट है :–

> "जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि तारीख 1 अप्रैल, 1995 की अंतिम तारीख आठवें केन्द्रीय वेतन आयोग (वेतन आयोग) द्वारा अपने अंतिम रिपोर्ट में सुझाई गई थी । केन्द्रीय सरकार ने यह सचेतन आधार लिया था कि पारिणामिक वित्तीय भार असहनीय होंगे । इसलिए, तारीख 1 अप्रैल, 1995 से ही फायदा उपलब्ध कराते हुए वित्तीय भार को घटाने का चुनाव किया गया । यह स्पष्ट है कि वेतन आयोग की अंतिम सिफारिशें स्वयमेव ही सरकार पर बाध्यकारी नहीं होती हैं क्योंकि सरकार अपनी वित्तीय स्थिति के अनुसार वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करती हैं और इसे लागू करती हैं । इससे ही यह स्पष्ट होता है कि सरकार क्या करना चाहती है । सरकार की ओर से की गई ऐसी कार्रवाई को न तो अतर्कसंगत न ही मनमाना और न ही इसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन कहा जा सकता है ।"

उपर्युक्त सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अच्छी तरह से लागू होगा । वस्तुतः, उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले से लेकर **पी. एन. मेनन** (उपर्युक्त) वाले मामले तक और अन्य विनिश्चयों पर भी चर्चा की गई थी और अंतिम तौर पर पैराग्राफ 31 से 37 तक विभिन्न निर्णयों पर चर्चा की गई और यह अभिनिर्धारित किया गया कि अंतिम तारीख 1 अप्रैल, 1995 अत्यधिक विधिमान्य अर्थात् वित्तीय मजबूरी के आधार पर नियत की गई थी । संदर्भ की सरलता के लिए उक्त पैराग्राफ निम्नलिखित प्रस्तुत हैं :–

> "31. एक्शन कमेटी साउथ ईस्टर्न रेलवे पेंशनर्स **बनाम** यूनियन आफ इंडिया [(1991) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 544] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विभिन्न वेतन श्रेणियों के संबंध

में औसत मूल्य सूचकांक स्तर 272 पर महंगाई वेतन के रूप में महंगाई भत्ते का एक भाग को मिलाते हुए अंतिम तारीख इस प्रकार नियत की गई है जो मनमाना नहीं है और **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत इसमें लागू नहीं होता है । इस संबंध में, कृष्ण कुमार **बनाम** भारत संघ [(1990) 4 एस. सी. सी. 204], इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग **बनाम** भारत संघ [(1991) 2 एस. सी. सी. 104], स्टेट गर्वमेन्ट पेंशनर्स एसोसिएशन **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य [(1986) 3 एस. सी. सी. 501] और आल इंडिया रिजर्व बैंक, रिटायर्ड आफिसर्स एसोसिएशन **बनाम** भारत संघ [(1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 664] वाले मामले में दिए गए निर्णयसार भी महत्वपूर्ण हैं । इन सभी मामलों में, ऐसे फायदों को लागू करने के लिए नियत तारीख का निर्धारण मनमाना, अतर्कसंगत अथवा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन नहीं अभिनिर्धारित किया गया था ।

32. कर्मचारियों के लिए फायदों का उपबंध करते समय वित्तीय जटिलताओं पर विचार करने के महत्व को इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों, जिसमें निम्नलिखित दो मामले सम्मिलित हैं, में उल्लेख किया गया है । राजस्थान राज्य **बनाम** अमृत लाल गांधी (ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 782) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित उल्लिखित किया है –

> 'विनियमों को भूतलक्षी बनाने के लिए वित्तीय प्रभाव को ही अंतिम तारीख नियत करते समय एकमात्र विचार में लिया जा सकता है । हमारी राय में, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह नियत तारीख मनमाना या बिना किसी कारण के नियत की गई है । उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं को मंजूर करने में और तारीख 1 जनवरी, 1990 के स्थान पर तारीख 1 जनवरी, 1986 प्रतिस्थापित करने में स्पष्टतः त्रुटि कारित की है । (ए. आई. आर. पृष्ठ 784 पैरा 17) ।'

33. वीरास्वामी [(1999) 3 एस. सी. सी. 414] वाले नवीनतम मामले में, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि वित्तीय मजबूरियां पुनरीक्षित आधार पर पेंशन स्कीम लागू करते समय अंतिम तारीख को पुरःस्थापित करने के लिए विधिमान्य आधार हो सकती है (एस. सी. सी. पृष्ठ 421) । उस मामले में, पेंशन स्कीम को उन

विभिन्न व्यक्तियों में लागू किया गया था जो तारीख 1 जुलाई, 1986 के पूर्व सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे और जो उक्त तारीख को नियोजन में थे । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उन्हें समान नहीं समझा जा सकता है क्योंकि वे एक वर्ग से संबंधित नहीं थे और वे पृथक् वर्ग गठित करते थे ।

34. पंजाब राज्य **बनाम** बूटा सिंह [(2000) 3 एस. सी. सी. 735] वाले मामले में, डी. एस. नकारा [(1983) 1 एस. सी. सी. 305] से लेकर के. एल. राठी **बनाम** भारत संघ [(1997) 6 एस. सी. सी. 7] वाले मामले में दिए गए विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया था कि डी. एस. नकारा (उपर्युक्त) वाले मामले का निर्वचन इस अभिप्राय में नहीं करना चाहिए कि उन व्यक्तियों की परिलब्धियां जो अधिसूचित तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं, जो समान स्तर धारित करते हैं, उन्हें समान समझा जाना चाहिए (एस. सी. सी. पृष्ठ 735) ।

35. पंजाब राज्य **बनाम** जे. एल. गुप्ता [(2000) 3 एस. सी. सी. 736] वाले मामले में, जिसकी न्यायपीठ में एक मैं भी था, बूटा सिंह वाले मामले में अभिव्यक्त मत को दोहराया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अतिरिक्त फायदा देने के लिए जिसमें वित्तीय जटिलताएं थीं, अतिरिक्त फायदा देने हेतु पुष्टि के लिए विनिर्दिष्ट तारीख वर्णित करना मनमाना नहीं कहा जा सकता है (एस. एस. सी. पृष्ठ 737) ।

36. रामराव **बनाम** आल इंडिया वैकवर्ड क्लास बैंक एम्पलाईज वेलफेयर एसोसिएशन [(2004) 2 एस. सी. सी. 76] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रोन्नति प्रभावी करने के प्रयोजन के लिए भी अंतिम तारीख नियत करना न तो मनमाना, अयुक्तियुक्त है न ही यह संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अंतिम तारीख नियत करने के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति द्वारा सहन की जाने वाली संभाव्य कठिनाई से संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है (एस. सी. सी. पृष्ठ 88) ।

37. हमारे समक्ष वर्तमान मामले में भी अंतिम तारीख अत्यधिक

विधिमान्य आधार अर्थात् वित्तीय मजबूरियों के आधार पर तारीख 1 अप्रैल, 1995 नियत की गई है ।"

इसमें भी सरकार का आधार यह है कि तारीख 1 मार्च, 2002 को स्वीकार करने से सरकार के ऊपर अत्यधिक वित्तीय दायित्व आ जाएगा । उपर्युक्त मामले में अधिकथित युक्ति को लागू करते हुए, उपर्युक्त आधार को अतर्कसंगत नहीं कहा जा सकता और परिणामतः नियत अंतिम तारीख को भी मनमाना नहीं कहा जा सकता है ।

28. माननीय उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त विनिश्चय का **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **ए. पी. पेंशनर्स एसोसिएशन और अन्य**[1] वाले मामले में अवलंब लिया गया । इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वित्तीय मजबूरियां, राज्य द्वारा अंतिम तारीख नियत करते हुए फायदा अवधारित करने के लिए एक सुसंगत मापदंड है । उक्त मामला भी उनमें से एक था जिसमें वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिश को लागू करने पर विचार किया गया था और अंतिम तारीख की प्रकृति मनमाना होने के बारे में दिए गए तर्क को **अमरनाथ गोयल** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए रद्द कर दिया गया था और निर्णय के पैराग्राफ 39 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "इसलिए, यह सभी प्रकार के संदेहों से परे है कि वित्तीय मजबूरियां, राज्य सरकार द्वारा यह अभिनिर्धारित करने के लिए एक सुसंगत मापदंड है कि क्या वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में या के अनुसार फायदा मंजूर किया जा सकता है । वेतन पुनरीक्षण आयोग ने भी यह कथन किया है कि वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 जुलाई, 1998 के तत्काल प्रभाव से लागू होंगे जबकि आर्थिक फायदा तारीख 1 अप्रैल, 1999 से ही देय होगा । यदि आर्थिक फायदा तारीख 1 अप्रैल, 1999 से ही देय था तो पुनरीक्षित वेतनमान के आधार पर संराशित फायदा देने के सभी अधिकार तारीख 1 अप्रैल, 1999 से वेतन संदाय करने के प्रयोजन के लिए ही होंगे अथवा उस तारीख से ही पेंशन रकम के भी संदाय होंगे ।"

29. **आंध्र प्रदेश सरकार** बनाम **सुब्बारायडू**[2] वाले मामले में इन सिद्धांतों को पुनः दोहराया गया और पैराग्राफ 4 से 7 में निम्नलिखित

---

[1] (2005) 13 एस. सी. सी. 161.

[2] 2008 (2) के. एल. टी. 681.

अभिनिर्धारित किया गया था :–

"4. इस न्यायालय के कई विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अंतिम तारीख नियत करते समय कार्यपालिक प्राधिकारी द्वारा आर्थिक दशाओं, वित्तीय मजबूरियों और कई अन्य प्रशासनिक और अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है । इस न्यायालय का भी यह मत है कि अंतिम तारीखों का नियतन कार्यपालिका प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार के भीतर होता है और साधारणतया, न्यायालय द्वारा कार्यपालिका प्राधिकारी द्वारा अंतिम तारीख नियत करने में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है जब तक कि ऐसे आदेश के आमुख पर ही यह घोर विभेदकारी और मनमाना प्रतीत नहीं होता है । [(देखें पंजाब राज्य और अन्य **बनाम** अमरनाथ गोयल और अन्य (2005) 6 एस. सी. सी. 754] ।

5. निस्संदेह, डी. एस. नकारा और अन्य **बनाम** भारत संघ (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने पेंशन की मांग के संबंध में अंतिम तारीख को अभिखंडित कर दिया था । तथापि, इस न्यायालय ने पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाए गए कठोर मत को कम कर दिया जैसा कि इस न्यायालय ने पंजाब राज्य और अन्य **बनाम** अमरनाथ गोयल और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के पैरा 29 में मत व्यक्त किया था ।

6. कार्यपालिक प्राधिकारियों के विवेक में कतिपय विचार आते हैं जब वे विशिष्ट अंतिम तारीख नियत करते हैं । ये विचार वित्तीय, प्रशासनिक या अन्य विचार हो सकते हैं । न्यायालय को न्यायिक अवरोध का प्रयोग करना चाहिए और अंतिम तारीख नियत करने के लिए इसे साधारणतया कार्यपालिक प्राधिकारियों पर छोड़ देना चाहिए । सरकार के पास कुछ गुंजाइश बची रहनी चाहिए जिससे कि वह इस संबंध में स्वतंत्र भूमिका निभा सके ।

7. वस्तुतः, इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों का परिशीलन करते हुए, यह कहा जा सकता है कि अंतिम तारीख के चुनाव को मनमाना की उपाधि नहीं दी जा सकती है यद्यपि कि सरकार द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र में उसके लिए विशिष्ट कारण नहीं दिए गए हैं, (जब तक कि यह पूर्णतया अनुचित या बेतुका दर्शित नहीं होता है) ।

देखें – बिहार राज्य **बनाम** रामजी प्रसाद [(1990) 3 एस. सी. सी. 368], भारत संघ और एक अन्य **बनाम** सुधीर कुमार जायसवाल [(1994) 4 एस. सी. सी. 212], रामराव और अन्य **बनाम** आल इंडिया बैकवर्ड क्लास एम्पलाइज वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य [(2004) 2 एस. सी. सी. 76] विश्वविद्यालय अनुदान आयोग **बनाम** साधना चौधरी और अन्य [(1996) 10 एस. सी. सी. 536] आदि । इसलिए, यह स्पष्ट है कि यद्यपि सरकार या कार्यपालिक प्राधिकारी के प्रति-शपथपत्र में इस बारे में कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों विशिष्ट अंतिम तारीख का चुनाव किया गया है तो भी न्यायालय को यह घोषित नहीं करना चाहिए कि तारीख मनमाना और संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण है, जब तक कि उक्त अंतिम तारीख से घोर अनुचितता या अन्यायपूर्ण परिणाम दर्शित नहीं होता है ।"

उपर्युक्त विनिश्चय से यह दर्शित होता है कि अंतिम तारीख नियत करते समय विभिन्न बातों अर्थात् आर्थिक दशाओं, वित्तीय मजबूरियों, प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं आदि को विचार में लिया जा सकता है और न्यायालय को साधारणतया इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

30. यद्यपि, विशिष्ट कारण नहीं दिए गए हैं तो भी नियत अंतिम तारीख को मनमाना नहीं कहा जा सकता है । इस विधिक प्रास्थिति को स्पष्टीकृत किया गया है और माननीय उच्चतम न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए उड़ीसा पावर ट्रांसमिशन कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम खादेश्वर सुन्दरे और अन्य वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के नवीनतम विनिश्चय में दोहराया गया और पैराग्राफ 14 तथा 15 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :–

"14. इस न्यायालय ने बिहार राज्य **बनाम** रामजी प्रसाद [(1990) 3 एस. सी. सी. 368] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि –

"8. .... तारीख के चुनाव को मनमाना की उपाधि नहीं दी जा सकती है यद्यपि कि उसे नियत करने के लिए कोई विशिष्ट कारण नहीं दिया गया है जब तक कि यह अनुचित या बेतुका या युक्तियुक्त लक्ष्य से दूर नहीं होता है ।"

15. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् **बनाम** श्री श्याम शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान [(2011) 3 एस. सी. सी. 238] वाले नवीनतम

मामले में इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर सुषमा शर्मा (डा.) **बनाम** राजस्थान राज्य [(1985) सप्ली. एस. सी. सी. 45], विश्वविद्यालय अनुदान आयोग **बनाम** साधना चौधरी [(1996) 10 एस. सी. सी. 536], रामराव और अन्य **बनाम** आल इंडिया बैकवर्ड क्लास एम्पलाइज वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य [(2004) 2 एस. सी. सी. 76] और पंजाब राज्य और अन्य **बनाम** अमरनाथ गोयल और अन्य [(2005) 6 एस. सी. सी. 754] वाले मामलों में विभिन्न पूर्ववर्ती प्रमाणिकताओं को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस विधिक प्रतिपादना को पुनः दोहराया है और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (मान्यताप्राप्त सन्नियम और प्रक्रिया) विनियम, 2007 के विनियम 5 के खंड (4) और (5) में विनिर्दिष्ट अंतिम तारीख को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया है ।"

अतएव, अंतिम तारीख नियत करने के लिए कारणों के अभाव में, इसकी विधिमान्यता के प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । इसका न्यायनिर्णयन सुसंगत पहलुओं जिसमें मंजूर फायदों की प्रकृति सम्मिलित है, का विश्लेषण करने के पश्चात् किया जाएगा ।

31. **केरल राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य** बनाम **पी. एन. रघुकुमार और अन्य**[1] वाले नवीनतम मामले में, इस न्यायालय के एक खंड न्यायपीठ ने इसी प्रकार केरल राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा अपने कर्मचारियों को वेतन पुनरीक्षण का फायदा सीमित करते हुए, नियत की गई अंतिम तारीख में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया । इसमें, मामले के तथ्यों से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी वर्ष 2003 में बोर्ड की सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे और उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् वेतन पुनरीक्षण आदेश लागू किया गया था जिसके परिणामस्वरूप डी. सी. आर. जी. और पेंशन संराशित दर में वृद्धि हो गई थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने नियत तारीख में हस्तक्षेप किया और खंड न्यायपीठ ने **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांतों की परीक्षा करने के पश्चात् **पी. एन. मेनन और अन्य** के विनिश्चयों का अवलंब लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि अंतिम तारीख वित्तीय मजबूरियों और आर्थिक दशाओं के आधार पर नियत की गई है जिसे मनमाना नहीं कहा जा सकता है । निर्णय के पैरा 5 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

---

[1] 2011 (4) के. एच. सी. 900.

"5. ....हमारा यह निष्कर्ष है कि प्रदर्श पी-1 में अपीलार्थियों द्वारा नियत अंतिम तारीख, आर्थिक दशाओं, वित्तीय मजबूरियों तथा अन्य प्रशासनिक और विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नियत की गई है, जिसे न तो मनमाना न ही विभेदकारी न ही अवैध कहा जा सकता है । अपीलार्थी पुनरीक्षण का फायदा सीमित करते हुए अंतिम तारीख नियत करने में न्यायानुमत है और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश में गलत हस्तक्षेप किया था ।"

32. उपर्युक्त सिद्धांतों के प्रकाश में, यह प्रतीत होता है कि **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों को अन्धाधुंध और स्वतः या सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है, जिसमें एक मौजूदा स्कीम के उदारीकरण का महत्वपूर्ण पहलू विचारणीय होता है । इसमें मौजूदा सेवारत कर्मचारियों के लिए नए वेतनमानों को पुरःस्थापित करते हुए विभिन्न नए फायदों को वेतन पुनरीक्षण आदेश प्रदर्श पी-3 में प्रदत्त किए गए थे । इसलिए, सुव्यक्ततः यह नया फायदा था जिसे वेतन पुनरीक्षण आदेश के अनुसार मंजूर किया गया था । जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा स्वीकार तारीख उपर्युक्त उद्धृत प्रदर्श पी-2 के पैराग्राफ 1.17 में चर्चा किए गए विभिन्न मापदंडों के आधार पर थी । उन्होंने यह उल्लिखित किया था कि केन्द्र में वेतन+मंहगाई भत्ता से गठित मूल वेतन को तारीख 1 अप्रैल, 2004 से लागू किया गया था, जिसमें सिद्धांत को वेतन पुनरीक्षण के लिए भी स्वीकार किया गया था, जिसमें नए वेतन संरचना को मूल वेतन में मंहगाई भत्ते का 59 प्रतिशत मिलाते हुए तैयार किया गया था । तद्नुसार ही तारीख 1 जुलाई, 2004 को इसे लागू करने की तारीख के रूप में चयन किया गया था । तत्पश्चात्, सरकार द्वारा प्रदर्श पी-3 के अनुसार इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करने के लिए वेतन पुनरीक्षण आदेश जारी किया गया था । इसके पैरा 40 से यह दर्शित होता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 से तारीख 31 मार्च, 2005 तक की अवधि के लिए पुनरीक्षित वेतनमानों में वेतन नियत करने पर वेतन बकाया सांकेतिक होगा । पुनरीक्षित वेतनमान और भत्ते मार्च, 2006 से आगे से मंजूर किया जाएगा । प्रदर्श पी-3 आदेश की तारीख 25 मार्च, 2006 होगी । तारीख 1 अप्रैल, 2005 से तारीख 28 फरवरी, 2006 तक का बकाया कर्मचारियों के भविष्य निधि खाते में जमा किया जाएगा ।

33. राज्य की दलील के बारे में यह जोरदार तर्क दिया गया कि यदि

वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता है तो इससे राज्य पर हजारों करोड़ रुपए का अतिरिक्त वित्तीय भार आ जाएगा । वस्तुतः द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र में यह स्पष्टीकृत किया गया है कि कर्मचारी, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं, उन्हें वेतन पुनरीक्षण की तारीख से ही पेंशन पुनरीक्षण द्वारा फायदा दिया गया है । यह स्पष्टीकृत किया गया है कि जब भी वेतन या पेंशन पुनरीक्षण लागू किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से ऐसे पुनरीक्षण की अंतिम तारीख नियत की जाती है जिससे बचा नहीं जा सकता है । एक समूह अंतिम तारीख के भीतर आ जाएगा और आन्तरिक समूह को वेतन पुनरीक्षण का फायदा होगा और बाहरी समूह को पेंशन पुनरीक्षण का फायदा होगा । सरकार का आधार यह भी है कि न तो राज्य सरकार के कर्मचारियों को प्रत्येक पांच वर्षों में वेतन और भत्तों का पुनरीक्षण करना आज्ञापक है न ही इस प्रकार की कोई नीति सरकार द्वारा स्वीकार की गई है । यह विनिश्चय करना सरकार का परमाधिकार है कि वह अपने कर्मचारियों के वेतन और भत्तों का पुनरीक्षण कराने के लिए पुनरीक्षण का अध्ययन और सिफारिश करने के लिए और उपांतरणों, यदि आवश्यक हो, के साथ सिफारिशों को लागू करने के लिए वेतन आयोग नियुक्त करे जो सभी परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् जो वेतन पुनरीक्षण के लिए आवश्यक हो जिसमें राज्य की वित्तीय स्थिति भी सम्मिलित हो, अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करें । पैरा 7 में यह इंगित किया गया है कि वेतन आयोग की सिफारिश को तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू करने के लिए राज्य सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया था । पैरा 8 में यह कथन किया गया है कि सरकार ने इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के प्रकाश में मामले की परीक्षा की है कि क्या वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से अथवा तारीख 1 जुलाई, 2004 से लागू किया जाए । परीक्षा करने पर यह पाया गया था कि इसे लागू करने के लिए राज्य, राजकोष से क्रमशः लगभग 3275 करोड़ या 2275 करोड़ का वित्तीय भार वहन नहीं कर सकेगा । इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा कर्मचारियों के उस समूह के लिए सांकेतिक पुनरीक्षण वेतनमान भी मंजूर नहीं किया जा सकता है, जो तारीख 1 मार्च, 2002 और तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवा से सेवानिवृत्त हुए हैं जबकि अन्य को छोड़ते हुए, जो सेवा में हैं, किन्तु उस अवधि के दौरान सेवानिवृत्त नहीं हुए हैं जो वेतन पुनरीक्षण का फायदा दिए बिना उस अवधि के लिए पूर्व पुनरीक्षित वेतनमान में थे और यह कि ऐसा करना विभेदकारी होगा । याची जो तारीख 1 जुलाई, 2004

के पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें पेंशन पुनरीक्षण का फायदा दिया गया है और समय-समय पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में बढ़ोतरी होने के नाते समुचित तौर पर उस दर पर समय-समय पर महंगाई भत्ते को बढ़ाते हुए, प्रतिकर के रूप में भरपाई की गई है जैसा कि उन सरकारी सेवकों के मामले में किया गया है जो सेवा में हैं । इस प्रकार, राज्य की यह दलील है कि अंतिम तारीख नियत करने में वित्तीय क्षमता सुसंगत मापदंड था । माननीय उच्चतम न्यायालय के कतिपय विनिश्चयों का परिशीलन करने से यह सुस्पष्ट है कि वित्तीय मजबूरियां एक सुसंगत मापदंड है ।

34. याचियों का पक्षकथन यह है कि सरकार द्वारा फायदा देने के लिए प्रति-शपथपत्र में उद्धृत आंकड़े यदि तारीख 1 मार्च, 2002 से वेतन पुनरीक्षण लागू किया जाता, सही नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि वित्तीय बोझ सरकार द्वारा उद्धृत आंकड़े से अत्यधिक कम हैं । जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, मामले में अभिलेख पर अन्य कोई सामग्री नहीं है जिससे कि याचियों द्वारा उद्भूत इस दलील को स्वीकार कर लिया जाए कि सरकार पर वित्तीय बोझ अत्यधिक कम होंगे ।

35. इसलिए, अगला प्रश्न याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दिए गए इस महत्वपूर्ण पहलू से संबंधित है कि याची उन व्यक्तियों के साथ एक समान वर्ग गठित करते हैं जिन्हें तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण का फायदा दिया गया है । विद्वान् सरकारी प्लीडर ने यह निवेदन किया कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा सुझाया गया वर्गीकरण सही नहीं हो सकता है और अपने अभिवाक् के समर्थन में कई विनिश्चयों का अवलंब लिया ।

36. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् और श्रीमती वी. पी. सीमानथनी ने यह तर्क दिया है कि पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के पांच वर्षों के पश्चात् वेतन पुनरीक्षण को तारीख 1 मार्च, 2002 से प्रभाव में आना था । इसलिए, सभी व्यक्ति, जो सेवा में थे और जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हो गए थे और जो व्यक्ति तारीख 1 जुलाई, 2004 से सेवा में हैं वे ही एक समान वर्ग गठित करेंगे । आठवें वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते समय तारीख 1 जुलाई, 2004 के रूप में अंतिम तारीख नियत करते हुए, उपर्युक्त एक समान वर्ग को विभाजित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् सरकारी प्लीडर ने यह स्पष्टीकृत किया कि वे व्यक्ति जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30

जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं, वे तारीख 29 फरवरी, 2002 तक सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों के साथ एक समान वर्ग गठित करेंगे । इसलिए, मात्र यह पक्षकथन है कि विभाजित रेखा, सेवानिवृत्तियों और तारीख 1 जुलाई, 2004 के पश्चात् सेवारत व्यक्तियों के बीच में ही है । यह मुद्दा कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दिए गए तर्क को तभी स्वीकार किया जा सकता है यदि सरकार के लिए यह आज्ञापक अभिनिर्धारित कर दिया जाए कि वह पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के पांच वर्ष बीतने के पश्चात् ही वेतन पुनरीक्षण लागू कर दे जो कि इसमें तारीख 28 फरवरी, 2002 है । जैसाकि, मेरे द्वारा पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि सरकार द्वारा वेतनमान पुनरीक्षण करने का विनिश्चय एक नीतिगत मामला है । यह कर्मचारियों का कानूनी अधिकार नहीं है । यदि ऐसा हो तो वे यह नहीं कह सकते कि नए वेतन पुनरीक्षण को पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण के समाप्त होने की तारीख अर्थात् 1 मार्च, 2002 से ही लागू किया जाए । अतएव, वे व्यक्ति, जो तारीख 1 मार्च, 2002 से तारीख 30 जून, 2004 के बीच सेवानिवृत्त हुए हैं मात्र वे ही तारीख 29 फरवरी, 2002 तक के सेवानिवृत्तियों के साथ ही एक वर्ग गठित करेंगे । वे व्यक्ति जो सेवा में थे और जो तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त हो चुके थे मात्र वे ही पूर्ववर्ती वेतन पुनरीक्षण आदेश के फायदाग्राही थे । पेंशन और अन्य फायदे उस समय पर अविभावी वेतनमानों के निबंधनों में गणना किए जाने थे । वे इस प्रास्थिति की दलील नहीं दे सकते थे कि वे उस नए वेतनमानों के हकदार हैं जिसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रयोज्य बनाया गया था । जैसाकि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इंगित किए गए कतिपय विनिश्चयों में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि जब कभी वेतन पुनरीक्षण लागू करने के लिए तारीख नियत की जाती है तो व्यक्तियों का एक समूह ठीक पूर्ववर्ती दिन तक सेवानिवृत्त हो चुका होता है जिन पर यह लागू नहीं होगा और यह स्वयमेव ही यह दर्शित करने के लिए आधार नहीं है कि स्वीकृत तारीख मनमाना है । इसलिए, यह दलील कि एक ही वर्ग के व्यक्ति, तारीख 30 जून, 2004 या तारीख 1 जुलाई, 2004 को सेवानिवृत्त होने की तारीख के आधार पर पेंशन की विभिन्न दरें प्राप्त करेंगे, का भी कोई परिणाम नहीं है ।

37. अतएव, मेरा यह मत है कि याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के तर्कों पर विचार करते समय सरकार द्वारा अभिवाचित वित्तीय मजबूरियां सुसंगत होंगी । यदि याचियों के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है तो

यह भी एक अन्य पहलू होगा । यदि तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्तियों को सम्मिलित करते हुए वेतन पुनरीक्षण तारीख 1 मार्च, 2002 से लागू किया जाता है तो उस अवधि के दौरान सेवारत व्यक्तियों और उसके पश्चात् सेवारत व्यक्तियों को स्वतः ही वेतन पुनरीक्षण का फायदा मिल जाएगा जैसा कि उनके मामले हों, इसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से सीमित नहीं किया जा सकता है क्योंकि अब इसे लागू किया गया है । इसलिए, यदि तारीख 1 जुलाई, 2004 को सेवारत व्यक्तियों को अपवर्जित किया जाता है तो यह सुस्पष्टतः मनमाना होगा । अतएव, सरकार का वित्तीय भार अत्यधिक हो जाएगा । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 को नियत तारीख को किसी भी कारण से मनमाना नहीं कहा जा सकता है ।

38. अब, मैं याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल और विद्वान् सरकारी प्लीडर द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों को निर्दिष्ट करूंगा । जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है याचियों द्वारा अवलंब लिया गया मामला **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) एकमात्र मामला है जिसमें उन सेवानिवृत्त व्यक्तियों के लिए पुनरीक्षित उदारीकृत पेंशन फार्मूला लागू किया गया था । जो एक समान वर्ग गठित करते थे । **देवकीनन्दन प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि पेंशन का अधिकार सरकारी सेवक में निहित एक मूल्यवान अधिकार है । उक्त प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है । एकमात्र **मोहन लाल उजाम्सी शाह और एक अन्य** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में ही माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में, सेवानिवृत्ति की तारीख पर विचार किए बिना सेवानिवृत्तियों को फायदा देने के लिए **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले को स्वीकार किया गया था ।

39. **के. एल. राठी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले का मजबूती तौर पर अवलंब लिया गया । यह ऐसा मामला था जिसमें **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को लागू करते समय केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी शासकीय आदेश के बारे में विवाद उद्भूत हुआ था । तारीख 22 अक्तूबर, 1983 के आदेश द्वारा सरकार ने केन्द्रीय

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1409.

[2] (1984) 3 एस. सी. सी. 126.

[3] 1997 के. एच. सी. 935.

सिविल सेवा (पेंशन) नियम के साथ ही उदारीकृत पेंशन नियम, 1950 के अधीन आने वाले सभी पेंशनभोगियों को फायदा देते हुए निर्णय लागू किया था । यह दलील दी गई थी कि याची को पेंशन की वही रकम दी गई थी जो सेवानिवृत्ति की तारीख को ध्यान में रखे बिना उसी श्रेणी के अन्य कर्मचारियों को दी गई थी और तद्नुसार, उच्चतर पेंशन का दावा किया गया था जिसे कि उन व्यक्तियों को दिया गया था जो तारीख 1 अप्रैल, 1979 को सेवानिवृत्त हुए थे । माननीय उच्चतम न्यायालय ने तथ्यात्मक प्रास्थिति को भी ध्यान में रखते हुए, प्रश्न की परीक्षा की थी । निर्णय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि यह भी इसमें के याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा उद्‌भूत दलीलों का कोई समर्थन नहीं करता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में "परिलब्धियों" की परिभाषा को निरस्त नहीं किया गया है । इसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि वे व्यक्ति जो तारीख 1 अप्रैल, 1979 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं उन्हें पेंशन की गणना के प्रयोजन के लिए उन्हीं परिलब्धियों का हकदार समझा जाना चाहिए जैसा कि उन व्यक्तियों को दिया गया है, जो तारीख 1 अप्रैल, 1979 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं । इसलिए, **डी. एस. नकारा** (ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 130) वाले मामले के बल पर याची उन परिलब्धियों के संदर्भ में पेंशन को संराशित कराने के लिए कहने के हकदार नहीं हैं जिसे उसने कभी प्राप्त नहीं किया है ।"

माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चयों, जिसमें **इंडियन एक्स-सर्विसेज लीग**[1] और **कृष्ण कुमार** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय भी सम्मिलित है तथा अन्य विनिश्चयों की परीक्षा की और अंततः पैरा 12 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "इन सभी मामलों से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि **डी. एस. नकारा** (ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 130) वाला मामला ऐसा

---

[1] [1991] 1 एस. सी. आर. 158 = (1991) 2 एस. सी. सी. 207.

[2] (1990) 4 एस. सी. सी. 207 = ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 1782.

मामला नहीं है जिसे प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना सारभौमिक रूप से लागू किया जाए । जब सरकार ने यह विनिश्चय किया था कि पेंशन की गणना पिछले 10 माह की अवधि के दौरान आहरित औसत वेतन के आधार पर किया जाना था तो नकारा वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह सिद्धांत उन व्यक्तियों पर भी लागू होगा जो अधिसूचित तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे । तथापि, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उन व्यक्तियों की परिलब्धियां जो अधिसूचित तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे और उन व्यक्तियों की परिलब्धियां जो अधिसूचित तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं उन्हें उन्हीं के समान मानते हुए समान स्तर अभिनिर्धारित किया जाए । इस तर्क को विनिर्दिष्टतया **आल इंडिया सर्विसेज पेंशनर्स एसोसिएशन** (ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 501) वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा इनकार कर दिया गया था । इस मामले में, याची ने यह दावा किया है कि उपर्युक्त मामले में उसे इनकार किए गए अनुतोष को अधिक या कम मंजूर किया गया ।"

इस प्रकार, यह युक्ति अधिकथित करती है कि उन व्यक्तियों की परिलब्धियां जो अधिसूचित तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हो चुके हैं और जो अधिसूचित तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं, वे समान प्रास्थिति धारित करते हैं उन्हें एक समान नहीं माना जा सकता है ।

40. माननीय उच्चतम न्यायालय का अगला विनिश्चय **टी. एस. थिरुवेंगदम** बनाम **सचिव, भारत सरकार और अन्य**[1] वाला मामला है । इस मामले में, एक पुनरीक्षित फार्मूले को उन विभिन्न सरकारी कर्मचारियों के लिए स्वीकार किया गया था जो एक विशिष्ट तारीख से पब्लिक सेक्टर उपक्रम में आमेलित हुए थे । केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय पब्लिक सेक्टर उपक्रमों में आमेलन की पुनरीक्षित निबंधनों और शर्तों का उपबंध करते हुए एक ज्ञापन जारी किया था किन्तु पुनरीक्षित फायदा उन सेवकों तक ही निर्बंधित कर दिया गया था जो तारीख 16 जून, 1967 को या उसके पश्चात् आमेलित हुए थे । इसे मनमाना अभिनिर्धारित किया गया था । सुस्पष्टतः यह मौजूदा फार्मूले का एक पुनरीक्षण का मामला था । इसलिए, यह इस मामले के तथ्यों में लागू नहीं होगा ।

---

[1] (1993) 2 एस. सी. सी. 174.

41. एक मौजूदा फार्मूले की स्कीम के एकमात्र पुनरीक्षण पर विचार **धनराज और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में भी किया गया था । अपीलार्थी मूलतः जम्मू और कश्मीर सरकार के अधीन परिवहन उपक्रम में नियोजित थे और रोड परिवहन निगम गठित होने के पश्चात् वे उसमें नियोजित हो गए । उन व्यक्तियों को पेंशन मंजूर करने के लिए निगम द्वारा एक स्कीम पुरःस्थापित की गई जो तारीख 9 जून, 1981 अर्थात् स्कीम को स्वीकार करने की तारीख से सेवानिवृत्त हुए थे । प्रश्न की परीक्षा करते समय पैराग्राफ 13 और 14 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "13. उसके बाद, राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह एक वैकल्पिक निवेदन किया कि तारीख 3 अक्तूबर, 1986 का आदेश उक्त विनियम के अनुच्छेद 177 का अतिक्रमण करता है, अतएव अपीलार्थी इसके अधीन कोई फायदा प्राप्त नहीं कर सकते हैं । यह प्रतीत होता है कि यह ऐसा निवेदन है जो अपील न्यायालय को भ्रमित करने की ओर ले जाता है । हमें यह आश्चर्य है कि राज्य ने ऐसा आधार लिया है जिससे स्वयं उसके ही आदेश को विनियम के अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया जा सकता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध फाइल अपील में भी न तो ऐसा कोई निवेदन किया गया था न ही ऐसा कोई आधार उद्भूत किया गया था न ही इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ऐसे आधार उद्भूत किए जाने की प्रत्याशा की गई थी । अन्यथा भी, इस निवेदन की परीक्षा करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि अनुच्छेद 177 के संशोधन का फायदा उन सभी सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों अर्थात् जो तारीख 9 जून, 1981 अर्थात् संशोधन की तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त हो चुके हैं, को दिया गया है । किन्तु, इसमें ऐसा कोई भी सकारात्मक शब्द नहीं है जो अभिव्यक्ततः उन कर्मचारियों को इससे अपवर्जित करता है जो उक्त तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं । यदि बाद में, स्वयं सरकार उन कर्मचारियों को भी वही फायदा देने के लिए पुनः विचार करती है जो तारीख 9 जून, 1981 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं तो इसे न तो अनुच्छेद 177 का अतिक्रमण कहा जा सकता है न ही इसे विरोधाभास में कहा जा सकता है । यही मामला है जो इसे अनुच्छेद 177 के अधीन नहीं

---

[1] (1998) 4 एस. सी. सी. 30.

लाता है, जिस पर बाद में विचार किया जाएगा । यदि सरकार अन्यथा अपेक्षा करती है कि ऐसा किया जा सकता है तो तारीख 3 अक्तूबर, 1986 का आदेश जारी करने के पश्चात् ही इसे वापस लिया जा सकता है । इसके विपरीत, इसे निरन्तर बने रहने की अनुज्ञा दी जाती है । अतएव, उक्त आदेश के इस निवेदन में भी अनुच्छेद 177 का अतिक्रमण करने के कारण कोई बल नहीं है ।

14. अन्यथा भी, हम राज्य सरकार द्वारा उन कर्मचारियों के बीच विभाजन रेखा खींचने के लिए कोई न्यायोचित मापदंड नहीं पाते हैं जो तारीख 9 जून, 1981 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे और जो तारीख 9 जून, 1981 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं । कर्मचारियों के दोनों समूह एक ही उपक्रम/निगम में अस्थायी तौर पर समान स्थिति में रखे गए थे और सभी कर्मचारी संगठन में 20 वर्ष से अधिक की सेवा कर चुके थे । वस्तुतः, अपीलार्थियों ने 30 से 40 वर्षों से अधिक की सरकारी सेवा की थी । इतनी लम्बी अवधि तक सेवा करने वाले व्यक्ति अपनी विधिसम्मत आय की प्रत्याशा कर सकते थे । ऐसा कुछ नहीं है जिससे कि उन्होंने भीख मांगने वाला कटोरा सरकार के सामने रखने की ईप्सा की थी । राज्य सरकार के लिए यह असमुचित है कि उसने स्वयं अपने उन कर्मचारियों के फायदों से इनकार करने के लिए अपने ही आदेश का निर्बंधित निर्वचन करते हुए उसे अवैध अभिनिर्धारित किया है जो ऐसी लम्बी अवधि से कार्य कर रहे थे । वस्तुतः, डी. एस. नकारा **बनाम** भारत संघ [(1983) 1 एस. सी. सी. 305] वाले मामले में इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों को पुनरीक्षण का फायदा देने के लिए हकदार बनाते समय और उस तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों को फायदे से वंचित करते समय पुनरीक्षित स्कीम के प्रवर्तन की तारीख का मापदंड निर्धारित करना अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करता है । अन्यथा भी, पेंशनिक फायदों को मंजूर करने के प्रश्न पर विचार करते समय राज्य को यथाकथित सामाजिक राज्य की अवधारणा के सांविधानिक उद्देश्य पर पहुंचना चाहिए और राज्य की नीति-निर्देशक तत्वों को सुनिश्चित करना चाहिए । पेंशन, उस उद्देश्य का एक भाग और अंश है जो राज्य की सेवा करते हुए, सेवानिवृत्त होने के पश्चात् एक

कर्मचारी को अपनी आजीविका सुनिश्चित करने के लिए एक स्रोत होता है । बिना किसी ठीक कारण के या बिना किसी न्यायोचित विभेदक के व्यक्ति के ऐसे अधिकारों से इनकार करना संविधान की भावना के विरुद्ध होगा । हम, वर्तमान मामले में राज्य सरकार द्वारा लिए गए आधार को उक्त भावना के प्रतिकूल पाते हैं ।"

इसमें के सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारी एक वर्ग गठित करते हैं और इस कारण से ही उक्त मत व्यक्त किया गया है ।

42. **सुब्रत सेन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में अंशदायी पेंशन स्कीम के पुनरीक्षण के मामले पर विचार किया गया । उन पेंशनभोगियों को फायदा देने से इनकार कर दिया गया था जो अंतिम तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे । यह पाया गया कि नियम को वस्तुतः संशोधित किया गया था और स्कीम को पुनरीक्षित किया गया था किन्तु यह नए स्कीम को पुरःस्थापित करने वाले स्कीमों में से कोई स्कीम नहीं थी । इसमें **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत को स्वीकार किया गया था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि "इस मामले में पेंशन संदाय के लिए कोई नई स्कीम नहीं है अपितु यह मौजूदा पेंशन स्कीम का मात्र पुनरीक्षण है" । ऐसा इसके स्वयं के तथ्यों पर अभिनिर्धारित किया गया ।

43. याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **एस. पी. एस. बैंस (रिटायर्ड) और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का जोरदार अवलंब लिया । इस मामले में विचारित प्रश्न, एक ही वर्ग अर्थात् वायु सेना और नेवी के सेवानिवृत्त मेजर जनरलों के बीच की गई असमानता थी । उक्त निर्णय का अवलंब यह दलील देते हुए लिया गया कि इसमें भी एक समान वर्ग के उन व्यक्तियों, जो तारीख 30 जून, 2004 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे और जो तारीख 1 जुलाई, 2004 के पश्चात् सेवानिवृत्त हो चुके हैं, को विभिन्न दरों से पेंशन दिया गया था जो अन्यायोचित है ।

44. इसलिए, मामले के तथ्यों की सूक्ष्म संविक्षा अपेक्षित है । यह प्रश्न विचारणीय था कि क्या एक ही वर्ग के उन अधिकारियों को पेंशन

---

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 71.

[2] (2008) 9 एस. सी. सी. 125.

संदाय करने में असमानता की जा सकती है जो पुनरीक्षण वेतनमानों को पुरःस्थापित करने के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे और जो पुनरीक्षण वेतनमान पुरःस्थापित करने के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं । सेना स्टाफ के वेतनमानों को तारीख 1 जनवरी, 1996 से पुनरीक्षित किया गया था । वेतन पुनरीक्षण के पूर्व, मेजर जनरल को बिग्रेडियर से उच्चतर वेतन दिया जा रहा था । मेजर जनरल हमेशा ही बिग्रेडियर से अधिक पेंशन और कुटुम्ब पेंशन प्राप्त कर रहे थे जब सरकार ने पंचम वेतन आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार किया तो यह पाया गया था कि बिग्रेडियर मेजर जनरल से अधिक वेतन प्राप्त करने लगे और परिणामतः वे मेजर जनरलों से अधिक पेंशन और कुटुम्ब पेंशन पाने लगे । इसके पश्चात्, सरकार ने वही पेंशन उन्हें देते हुए, जो बिग्रेडियरों को दिया गया था, उन मेजर जनरलों की पेंशन को बढ़ा दिया जो तारीख 1 जनवरी, 1996 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे । इस प्रकार, उन मेजर जनरलों ने जो पूर्व में पेंशन प्राप्त कर रहे थे, एक ही वर्ग के बीच असमानता को इंगित करते हुए उच्च न्यायालय में याचिका फाइल की । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 26 में यह उल्लिखित किया गया कि नया शासकीय आदेश एक ही वर्ग के बीच असमानता पैदा करता है उन दो अधिकारियों के बीच जो मेजर जनरल के रूप में तारीख 1 जनवरी, 1996 के पूर्व और जो तारीख 1 जनवरी, 1996 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं वे भिन्न-भिन्न पेंशन रकम प्राप्त कर रहे हैं । वे अधिकारी जो तारीख 1 जनवरी, 1996 के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं वे अब वही पेंशन प्राप्त करेंगे जो मूल नियमों को ध्यान में रखते हुए बढ़ाई गई पेंशन रकम बिग्रेडियर को देय थी और मेजर जनरलों का दूसरा वर्ग जो तारीख 1 जनवरी, 1996 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे वे पेंशन की उच्चतर रकम प्राप्त करेंगे जिसका वे तारीख 1 जनवरी, 1996 के पश्चात् वेतनमानों के पुनरीक्षण का फायदा पाने के हकदार होंगे । पैरा 27 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह मनमाना होगा यदि ऐसी स्थिति को निरन्तर जारी रखना मंजूर किया जाए क्योंकि इससे संविधान के अनुच्छेद 14 उपबंधों का भी अतिक्रमण होता है । **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांतों का अवलंब लिया गया । यह भी पक्षकथन किया गया कि जहां मेजर जनरलों के एक समान वर्ग के पेंशनभोगियों को अंतिम तारीख को स्वीकार करते हुए दो विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वर्ग के भीतर वर्ग बन जाता है । इसमें कि परिस्थितियां समान नहीं हैं ।

45. इसमें, जैसा कि मेरे द्वारा पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि सुस्पष्टतः यह प्रतीत हो सकता है कि याची उन पेंशनभोगियों के साथ मिलकर बने, पेंशनभोगियों के समूह का एक भाग हो जाए जो तारीख 29 फरवरी, 2002 तक सेवानिवृत्त हो चुके हैं । इस मामले में, इस प्रकार के पेंशनभोगियों के विभाजन का कोई पक्षकथन नहीं है । इसलिए, उक्त सिद्धांत यहां लागू नहीं किया जा सकता है ।

46. **कर्नल बी. जे. अक्कारा (सेवानिवृत्त)** बनाम **भारत सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में विभिन्न विनिश्चयों, जिसमें **डी. एस. नकारा** वाला मामला सम्मिलित है तथा अन्य पश्चात्‌वर्ती सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चयों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने के पश्चात् पैरा 20 में निम्नलिखित सुसंगत सिद्धांतों को अधिकथित किया गया :–

> "20. विवाद्यक से सुसंगत पेंशन से संबंधित निम्नलिखित सिद्धांत सुस्थिर किए जाते हैं । वे हैं –
>
> > (क) एक वर्ग गठित करने वाले पेंशनभोगियों के बारे में पेंशन की गणना करने के लिए तद्‌द्वारा असमान व्यवहार करते हुए एकमात्र इस आधार पर भिन्न फार्मूला लागू नहीं किया जा सकता है कि कुछ कर्मचारी पूर्ववर्ती सेवानिवृत्त हुए हैं और कुछ कर्मचारी पश्चात्‌वर्ती सेवानिवृत्त हुए हैं । यदि सेवानिवृत्त कर्मचारी अपनी सेवानिवृत्ति के समय पेंशन के लिए अर्ह था और सुसंगत पेंशन स्कीम को तत्पश्चात् संशोधित किया गया है तो वह उस तारीख से पेंशन की गणना नए फार्मूले के अनुसार बढ़े हुए पेंशन को प्राप्त करने का हकदार होगा जब से संशोधन प्रभाव में आया है । ऐसी स्थिति में, संशोधन के अधीन अतिरिक्त फायदा जो उसी वर्ग के पेंशनभोगियों के लिए उपलब्ध बनाया गया है तो उससे उसे इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि वह उस तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका था जिस तारीख को पूर्वोक्त अतिरिक्त फायदे की पुष्टि की गई थी ।
> >
> > (ख) किन्तु, एक विशिष्ट श्रेणी से सेवानिवृत्त होने वाले सभी सेवानिवृत्त कर्मचारी सभी प्रयोजनों के लिए एक वर्ग गठित नहीं करते हैं । जहां (पेंशन की गणना के प्रयोजन के लिए)

---
[1] (2006) 11 एस. सी. सी. 709.

सेवानिवृत्ति की तारीख पर गणना योग्य परिलब्धियां उन पेंशनभोगियों के दो समूहों के संबंध में भिन्न हैं, जो उसी श्रेणी में सेवानिवृत्त हुए हैं जो कमत्तर पेंशन पाने वाला समूह है तो यह दलील नहीं दी जा सकती है कि उनकी पेंशन भी उस समूह द्वारा प्राप्त की जानी वाली पेंशन के समान अथवा पेंशन की तरह होनी चाहिए जिनकी गणना किए जाने योग्य परिलब्धियां उच्चतर हैं । दूसरे शब्दों में, उन पेंशनभोगियों को जो उसी श्रेणी में सेवानिवृत्त हुए हैं, उन्हें एक समान पेंशन दिए जाने की आवश्यकता नहीं है, जहां उनकी औसत गणना किए जाने योग्य परिलब्धियां, उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख पर वेतन की भिन्नता अथवा प्रवर्तित विभिन्न वेतनमानों को ध्यान में रखते हुए, भिन्न थीं ।

(ग) जब एक ही श्रेणी के कर्मचारियों के दो समूह विभिन्न समय पर सेवानिवृत्त होते हैं तो यह विभेदकारी नहीं होता है यदि, –

(i) जब एक समूह सेवानिवृत्त हुआ था तब कोई पेंशन स्कीम नहीं थी और जब अन्य समूह सेवानिवृत्त हुआ तो पेंशन स्कीम प्रवर्तन में थी,

(ii) जब एक समूह सेवानिवृत्त हुआ था तब एक स्वैच्छिक सेवानिवृत्त स्कीम प्रवर्तन में थी और जब अन्य समूह सेवानिवृत्त हुआ तो ऐसी स्कीम प्रवर्तन में नहीं थी, अथवा

(iii) जब एक समूह सेवानिवृत्त हुआ था तब पी. एफ. स्कीम प्रयोज्य थी और जब अन्य समूह सेवानिवृत्त हुआ तब पेंशन स्कीम प्रवर्तन में थी ।

एक समूह अन्य समूह को विस्तारित फायदों का इस आधार पर दावा नहीं कर सकता है कि वे समान स्थिति में हैं । यद्यपि, वे उसी श्रेणी से सेवानिवृत्त हुए हैं फिर भी वे 'उसी वर्ग' या 'समान समूह' के नहीं हैं । नियोजक किसी नए पेंशन/सेवानिवृत्ति स्कीम या किसी मौजूदा स्कीम की असम्मति को पुरःस्थापित करने के लिए वैधतः अंतिम तारीख नियत कर सकता है । तद्द्वारा एकल समान पेंशनभोगियों के दो समूहों को विभाजित करते हुए और उनके साथ विभिन्न व्यवहार

करते हुए मनमाने तौर पर अंतिम तारीख नियत करते हुए भूतलक्षी (या भविष्यलक्षी) फायदा देना विभेदकारी है ।"

उपर्युक्त सिद्धांत से यह दर्शित होता है कि एक भिन्न फार्मूले को एक वर्ग गठित करने वाले पेंशनभोगियों की पेंशन की गणना करने के लिए प्रयोज्य नहीं बनाया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप असमान व्यवहार होगा । इसलिए, यदि सुसंगत स्कीम संशोधित की जाती है तो एक सेवानिवृत्त कर्मचारी संशोधन की प्रभावी तारीख से नए गणना के फार्मूले के पश्चात् बढ़े हुए पेंशन को पाने का हकदार होगा । उप-पैरा(ख) इस मामले के प्रयोजन के लिए महत्वपूर्ण है । उप-पैरा(ख) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां (पेंशन की गणना के प्रयोजन के लिए) सेवानिवृत्ति की तारीख पर गणना योग्य परिलब्धियां उन पेंशनभोगियों के दो समूहों के संबंध में भिन्न हैं, जो उसी श्रेणी में सेवानिवृत्त हुए हैं तो कमत्तर पेंशन पाने वाले समूह द्वारा विभेदकारी अभिवाक् उद्भूत नहीं किया जा सकता है । पेंशन का संदाय सेवानिवृत्ति के समय पर औसत गणना योग्य परिलब्धियों पर निर्भर करेगा और यदि तत्समय प्रवर्तित वेतनमानों में भिन्नता है तो विभेदकारी के ऐसे अभिवाक् को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । महत्वपूर्ण तौर पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि उसी श्रेणी से सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्ति वही वर्ग या समान समूह गठित नहीं कर सकते हैं ।

47. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने **वी. कस्तूरी** बनाम **प्रबंध निदेशक, भारतीय स्टेट बैंक, बाम्बे और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित परीक्षण का भी अवलंब लिया जिसके पैराग्राफ 20 में सभी सुसंगत विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 22 और 23 में संवर्ग I और II में विधिक प्रास्थिति को वर्गीकृत किया जो इस प्रकार है :–

"**संवर्ग** I

22. यदि सेवानिवृत्त होने वाला व्यक्ति अपनी सेवानिवृत्ति के समय पर पेंशन के लिए अर्ह था और यदि वह सुसंगत पेंशन स्कीम के पश्चात्वर्ती संशोधन के समय तक जीवित रहता है तो वह बढ़े हुए पेंशन को पाने के लिए अर्ह हो जाएगा अथवा वह पश्चात्वर्ती प्रवर्तन में आने वाले नए फार्मूले या पेंशन की गणना के अनुसार अधिक

---
[1] (1998) 8 एस. सी. सी. 30.

पेंशन प्राप्त करने के लिए हकदार हो जाएगा, वह ऐसे आदेश की तारीख से संशोधित पेंशन उपबंधों का फायदा पाने का हकदार होगा क्योंकि वह उन्हीं पेंशनभोगियों के वर्ग का सदस्य हो जाएगा जैसे ही उन सभी के लिए अतिरिक्त फायदा प्रदत्त किया जाता है । ऐसी स्थिति में, पेंशनभोगियों के उसी वर्ग को उपलब्ध अतिरिक्त फायदा देने से उसे इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि वह उस तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका है जिस तारीख को उन पेंशनभोगियों के उसी वर्ग के सभी सदस्यों को पूर्वोक्त अतिरिक्त फायदा दिया गया था जो इन पेंशनभोगियों पर लागू करते हुए अतिरिक्त फायदा मंजूर करने वाली स्कीम के समय पर जीवित थे । **डी. एस. नकारा** [(1983) 1 एस. सी. सी. 305] वाले मामले में दिए गए निर्णयाधार के जड़ में इस मामले के संवर्ग के बारे में दिए गए इस विनिश्चय में मिल सकता है ।

संवर्ग II

23. तथापि, यदि एक कर्मचारी अपनी सेवानिवृत्ति के समय पर पेंशन पाने के लिए अर्ह नहीं है और पेंशनभोगियों के वर्ग के बाहर होता है, यदि तत्पश्चात् पेंशन स्कीम में कोई फायदा देते हुए सुसंगत पेंशन स्कीम के संशोधन द्वारा नए पेंशनभोगियों के वर्ग तक विस्तारित किया जाता है और जब ऐसा पश्चात्वर्ती पेंशन स्कीम प्रवर्तन में आती है और पहले के अपेंशनभोगी जीवित रहते हैं तो यदि पहले के अपेंशनभोगियों तक ही ऐसे पेंशन स्कीम का विस्तार करते हुए ऐसे स्कीम को उद्घोषित करने वाले प्राधिकारियों द्वारा अभिव्यक्ततः भूतलक्षी बनाया जाता है तो पहले का अपेंशनभोगी, जो ऐसे पेंशन स्कीम का विस्तार करने के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका है, ऐसे नए विस्तारित पेंशन स्कीम के फायदे का दावा कर सकता है । यदि ऐसी नई स्कीम मात्र भविष्यलक्षी है तो पुराने सेवानिवृत्त अपेंशनभोगी ऐसी स्कीम का फायदा प्राप्त नहीं कर सकते हैं यद्यपि, कि वे ऐसी नई स्कीम के समय भी जीवित रहते हैं । वे दायरे के बाहर ही रहेंगे । ऐसे द्वितीय संवर्ग के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय हैं -- कमांडर, मुख्यालय **बनाम** कैप्टन, बिपलाबेन्द्र चन्द्र [(1997) 1 एस. सी. सी. 208] और तमिलनाडु सरकार **बनाम** के. जयरमन् [(1997) 9 एस. सी. सी. 606] तथा अन्य मामलों में दिए गए विनिश्चय हैं जिसके प्रति हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं । यदि पेंशन का फायदा पाने के

लिए दावेदार संतोषजनक तौर पर अपने पक्षकथन को प्रथम संवर्ग के मामलों के भीतर दावा करता है तो वह गणना की जाने वाली पेंशन के अतिरिक्त फायदों को पाने का हकदार होगा यद्यपि वह ऐसे अतिरिक्त फायदाप्रद उपबंधों को प्रवर्तन में आने के पूर्व ही सेवानिवृत्त हो चुका हो । किन्तु, दूसरी ओर, यदि सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारी का मामला द्वितीय वर्ग में आता है तो इस तथ्य के बावजूद कि वह नई स्कीम के प्रवर्तन में आने की सुसंगत तारीख के पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका है, ऐसे नए फायदे को पाने के अधिकार से वंचित हो जाएगा ।"

श्री एम. के. दामोदरन् ने यह दलील दी कि इसमें के याची संवर्ग I के भीतर आएंगे और इसलिए वे नए वेतनमानों पर आधारित पेंशन का फायदा पाने के हकदार होंगे ।

48. निर्णय के सूक्ष्म परिशीलन से यह दर्शित होता है कि संवर्ग I, इसमें उन पेंशनभोगियों को लागू होगा जो अपनी सेवानिवृत्ति के समय पर पेंशन पाने के लिए अर्ह थे और सुसंगत पेंशन स्कीम के संशोधन होने तक जीवित थे । संवर्ग II से यह दर्शित होता है कि जब नई पेंशन स्कीम प्रस्थापित की जाती है तो जब तक कि इसे भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाता है तब तक पुराने सेवानिवृत्त व्यक्ति ऐसी स्कीम का फायदा प्राप्त नहीं कर सकते हैं । इसमें यह दर्शित हो सकता है कि याची कठोरतः संवर्ग I के अधीन नहीं आते हों । वस्तुतः उन्होंने उन पुनरीक्षित वेतनमानों का फायदा पाने की ईप्सा की है जो उन्हें कभी भी लागू नहीं होता था । निस्संदेह, उनकी पेंशन की गणना के आधार पर उन्हें वही वेतनमान लागू किए जा सकते हैं जो तारीख 30 जून, 2004 तक पुनरीक्षित हो गए हैं । इस प्रकार, संवर्ग I उन्हें लागू नहीं होगा । यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें सुस्पष्टतः किसी स्कीम के उदारीकरण या किसी स्कीम के पुनरीक्षण द्वारा अतिरिक्त फायदों को तारीख 1 जुलाई, 2004 से पेंशनभोगियों को मंजूर किया गया है । इसमें यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि स्वयं वेतनमानों का पुनरीक्षण और उसे लागू करने की तारीख एक ही अर्थात् तारीख 1 जुलाई, 2004 है ।

49. जहां तक उन याचियों की परिस्थिति का संबंध है, जिन्होंने विभिन्न फायदों, जिनमें तारीख 1 मार्च, 2002 से वेतन पुनरीक्षण सम्मिलित है, को लागू करने की ईप्सा की है, उपर्युक्त चर्चा किए गए सिद्धांतों से कमजोर प्रतीत होता है । यह न्यायालय किसी भी कारण से तारीख 1

जुलाई, 2004 के स्थान पर तारीख 1 मार्च, 2002 प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है । न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रयोग मात्र यह देखने के लिए किया जा सकता है कि क्या तारीख का चुनाव मनमाना है या नहीं ।

50. इस संदर्भ में, विद्वान् सरकारी प्लीडर ने **केरल राज्य और अन्य** बनाम **वी. जे. फिलामीना**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें न्यायपीठ का यह मत था कि "जब वित्तीय बाध्यताओं में रियायत को सरकार द्वारा मंजूर किया जाता है तो न्यायिक निर्वचन द्वारा ऐसी रियायत के क्षेत्र को विस्तार करने से राजकोष पर अप्रत्याशित भार डालने को आमंत्रित करना होगा । समयबद्ध उच्चतर ग्रेड, कानूनी नियमों द्वारा गारंटीकृत सेवा की शर्तें नहीं होती है अपितु रियायत उन कर्मचारियों तक विस्तारित की जाती है जो नियमित प्रोन्नति की ईप्सा करते हुए विशिष्ट पद पर होते हैं" । यह दलील दी गई कि यह न्यायालय ऐसा निर्वचन नहीं कर सकता है जिससे कि राजकोष पर भार पड़ता हो । विद्वान् सरकारी प्लीडर ने केरल स्टेट सर्विस पेंशनर्स आर्गनाइजेशन, कोलम् बनाम केरल राज्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । इस मामले में भी विवाद्यक, 1997 का वेतन पुनरीक्षण आदेश को लागू करने के बारे में था । इसमें वेतन पुनरीक्षण आदेश, 1 मार्च, 1997 से लागू किया गया था । याची उक्त तारीख के पूर्व अर्थात् तारीख 1 जनवरी, 1996 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे । उन्हें फायदा देने से इनकार करने की चुनौती दी गई थी । सरकार ने यह दलील दी थी कि वेतन पुनरीक्षण की प्रभावी तारीख का चुनाव करना सरकार का नीतिगत मामला होता है क्योंकि यह वित्तीय स्थिरता को भी प्रदान करता है । इस पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "इसके अतिरिक्त, वेतन पुनरीक्षण पिछले कई वर्षों से प्रभावी होते रहे हैं । याची भी तारीख 1 जनवरी, 1996 के पश्चात् भी सेवा निवृत्त होते रहे हैं । इसका अभिप्राय यह है कि वे उस तारीख के पूर्व जारी आदेशों से भी वेतन पुनरीक्षण का फायदा पहले भी उठाते रहे हैं । अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् वे वेतन पुनरीक्षण नहीं प्राप्त कर सकते हैं । प्रदर्श पी-7, तारीख 1 मार्च, 1997 को सेवारत कर्मचारियों का पुनरीक्षित वेतन संरचना है । इसमें कुछ भी मनमाना नहीं है । याचियों ने कोई अधिकार सिद्ध नहीं किया है और उन्हें अपनी

---

[1] 2008 (1) के. एच. सी. 665 = 2008 (1) के. एल. टी. 666.

सेवानिवृत्ति के पश्चात् अपने वेतन को पुनरीक्षित कराने का कोई अधिकार नहीं होगा ।"

उपर्युक्त युक्ति से यह दर्शित होता है कि इसमें के याचियों को भी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अपना पुनरीक्षित वेतन पाने का अधिकार नहीं हो सकता है क्योंकि नियत तारीख को मनमाना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । मैं, इसमें अपनाए गए मत से आदरपूर्वक सहमत हूं ।

51. मामले में, इस मत को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि तारीख 1 जुलाई, 2004 की अंतिम तारीख का नियतन किसी भी तरह से मनमाना है । जहां तक अंतिम तारीख स्वीकार करने का संबंध है, सरकार द्वारा विभिन्न तथ्यों पर विचार किया गया जिसे पूर्णतया असंगत नहीं कहा जा सकता है । मामला नीतिगत क्षेत्र में आता है और सरकार की वित्तीय बाध्यताएं और वित्तीय स्थिरता भी सुसंगत तथ्य हैं । वेतन पुनरीक्षण लागू करना और फायदों को मंजूर करना कानूनी प्रकृति की नहीं होती हैं । इसलिए, कर्मचारियों को प्रत्येक 5 वर्ष के अन्तराल पर पुनरीक्षित वेतन पाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं होता है ।

52. रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत प्रदर्श पी-15 आदेश द्वारा सरकार ने उन व्यक्तियों जैसे याचियों की समस्याओं के प्रति अग्रेषित किया है और संबंधित पेंशन मंजूरी के कतिपय खंडों को उपातंरित किया है । किन्तु, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह इंगित किया है कि उससे उनके दावों की पूर्णतया पुष्टि नहीं होगी क्योंकि उनकी संपूर्ण सेवाओं को कोई अधिभार नहीं दिया गया है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्रीमती वी. पी. सीमानथिनी ने यह भी निवेदन किया है कि यदि यह न्यायालय यह मत अभिनिर्धारित करता है कि वेतन पुनरीक्षण प्रत्येक 5 वर्षों में प्रभावी होना चाहिए तो याची भी वेतन पुनरीक्षण फायदों को पाने के लिए हकदार होंगे ।

53. प्रदर्श पी-15 को इस रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है, सुस्पष्टतः इस कारण से कि वह याचियों को कुछ रियायत मंजूर करता है । किन्तु, उसकी पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायिक निर्वचन का मामला नहीं हो सकता है, क्योंकि सरकार की संदाय करने की क्षमता एक सुसंगत कारक है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों के प्रकाश में, हम इस मुद्दे को इस सीमा तक ही सीमित रखते हैं कि यह एक नीतिगत मामला है तो याची स्वतः इस बात पर जोर नहीं दे सकते हैं कि तारीख 1 जुलाई, 2004 से वेतन पुनरीक्षण को प्रभावी बनाते हुए मौजूदा कर्मचारियों

को मंजूर सभी फायदे उन्हें भी लागू होंगे । सुस्पष्टतः तारीख 30 जून, 2004 तक सेवानिवृत्त व्यक्ति और तारीख 1 जुलाई, 2004 से सेवारत व्यक्ति एक समान वर्ग गठित नहीं करते हैं ।

54. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एम. के. दामोदरन् ने यह निवेदन किया कि सरकार की ओर से वेतन पुनरीक्षण को प्रवर्तन में लाने में किए गए विलम्ब मात्र के परिणामस्वरूप याचियों को कठिनाई हुई है और इसलिए, उन्हें उपयुक्त उपचार दिया जाना चाहिए । वस्तुतः, **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **जे. पी. चौरसिया और अन्य**[1] तथा **टी. एन. इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड** बनाम **आर. वीरास्वामी और अन्य**[2] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, ऐसे तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

55. याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह इंगित किया कि वेतन पुनरीक्षण आयोग की नियुक्ति में विलम्ब करने और उसके उपरान्त तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी बनाते हुए उसकी सिफारिशों को स्वीकार करने से बड़ी संख्या में कर्मचारियों अर्थात् लगभग 35,000 कर्मचारियों को वेतन पुनरीक्षण के फायदों से इनकार करना है और इसलिए नियत अंतिम तारीख को भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि वेतन पुनरीक्षण को सरकार द्वारा रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत तारीख 25 मार्च, 2006 के आदेश (प्रदर्श पी-3) के अनुसार लागू किया गया था । सरकार ने तत्पश्चात् वस्तुतः पेंशन पुनरीक्षण फायदों को भी लागू किया जैसा कि रिट याचिका (सिविल) सं. 23346/2008 में प्रस्तुत आदेश प्रदर्श पी-9 से सुस्पष्ट होता है । यह तारीख 25 मार्च, 2006 के वेतन पुनरीक्षण आदेश पर आधारित था । इसमें नियतन के विभिन्न सिद्धांतों को कथित किया गया है । जहां तक याचियों के पेंशन पुनरीक्षण का संबंध है यह रिट याचिका (सिविल) सं. 7569/2008 में प्रस्तुत उक्त आदेश के साथ ही आदेश प्रदर्श पी-15 द्वारा शासित होता है ।

56. **जे. पी. चौरसिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वेतनमान का नियतन एक कार्यपालिका कृत्य है और साधारणतया न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं करते हैं । इसके पैराग्राफ 18 में

---

[1] (1989) 1 एस. सी. सी. 121.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 414.

इस प्रश्न पर विचार करते समय कि क्या नियोजन की समानता और वेतन की समानता, वेतन आयोग और सरकार के लिए विचारणीय मामला होता है, यह अभिनिर्धारित किया गया कि वेतन पुनरीक्षण के बारे में विभिन्न मामलों और उन पर लागू होने वाले सिद्धांतों पर विचार करने के लिए इसे कार्यपालक सरकार और विशेषज्ञ निकाय जैसे वेतन आयोग के विनिश्चय पर छोड़ा जाता है और साधारणतया न्यायालयों को इसे स्वीकार कर लिया जाना चाहिए ।

57. यह प्रश्न कि क्या मामले में किया गया विलम्ब याचियों को कोई सहायता करेगा । यदि इस न्यायालय द्वारा याचियों के पक्ष में ऐसा घोषित किया जाता है तो वेतन पुनरीक्षण आदेश को तारीख 1 मार्च, 2002 से प्रभाव में देना होगा । इसी प्रकार के प्रश्न पर **आर. वीरास्वामी** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी विचार किया गया था । इसमें तमिलनाडु इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड का अपना नियोजन था, तमिलनाडु सरकार के इलेक्ट्रीसिटी विभाग के कर्मचारियों, जिनका 1 जुलाई, 1957 को बोर्ड गठित होने के पश्चात् स्थानांतरण कर दिया गया था । वे स्थानांतरण के समय पर अंशदायी भविष्य निधि स्कीम द्वारा शासित थे । वे सभी सेवानिवृत्ति फायदों को प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 1 जुलाई, 1986 के पूर्व सेवा से सेवानिवृत्त हो गए थे । तमिलनाडु सरकार ने तारीख 30 जून, 1969 को अपने उन कर्मचारियों के लिए एक पेंशन स्कीम प्रस्तुत की जो ऐसी पेंशन स्कीम द्वारा पूर्ववर्ती शासित नहीं थे जिसे एक साथ बोर्ड द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था । कर्मचारियों ने स्कीम का फायदा पाने के लिए समय-समय पर अभ्यावेदन किया । केन्द्रीय सरकार से कतिपय पहलुओं के बारे में छूट प्राप्त करने के पश्चात् अन्ततोगत्वा बोर्ड ने तारीख 1 जुलाई, 1986 से प्रभावी पेंशन स्कीम प्रस्तुत की । सेवानिवृत्त कर्मचारियों ने इसे तारीख 1 जुलाई, 1986 से लागू करते हुए भविष्यलक्षी प्रभाव देने से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकालते हुए दावों को नामंजूर कर दिया कि तारीख 1 जुलाई, 1986 का चुनाव करने से संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है । किन्तु, खंड न्यायपीठ ने बोर्ड के इस तर्क को स्वीकार करने के पश्चात् कि **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत लागू नहीं होंगे, यह अभिनिर्धारित किया कि बोर्ड द्वारा पेंशन स्कीम को लाने में किया गया विलम्ब उन सेवानिवृत्त कर्मचारियों को प्रभावित करता है जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष याचिका फाइल की है और उन्हें

फायदा देने का निदेश दिया । उसकी वैधता के बारे में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया गया था । माननीय न्यायाधीशों ने **वी. कस्तूरी**[1]**, भारत संघ** बनाम **लेफ्टिनेंट इंजीनियर लैकट्स**[2] और **हरिराम गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों तथा अन्य विनिश्चयों जिनमें **डी. एस. नकारा** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांतों पर विचार किया गया था और इसे प्रतिष्ठित किया गया था, का अवलंब लिया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अंतिम तौर पर यह अभिनिर्धारित किया कि सेवानिवृत्त कर्मचारी और स्कीम का फायदा प्राप्त करने वाले अन्य कर्मचारियों को एक समूह नहीं कहा जा सकता है । पैरा 15 में सेवानिवृत्त कर्मचारियों की दलीलों का निम्नलिखित तरीके से नामंजूर कर दिया :–

> "जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, विद्वान् न्यायाधीशों ने भी यह उल्लेख करने के पश्चात् कि डी. एस. नकारा [(1983) 1 एस. सी. सी. 305] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के निर्णयासार लागू नहीं हो सकते हैं, उस पेंशन स्कीम को पुरःस्थापित करने में अपीलार्थी-इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड की ओर से अभिकथित विलम्ब पर त्रुटिपूर्वक मंजूर अनुतोष जो निश्चित तौर पर पेंशन स्कीम को भूतलक्षी प्रभाव देने हेतु न्यायालय के लिए आधार नहीं हो सकता था । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी-बोर्ड ने तारीख 1 जुलाई, 1986 से पेंशन स्कीम पुरःस्थापित करने के लिए बेहतर कारण जिसमें वित्तीय बाध्यताएं सम्मिलित हैं, दिए हैं जो एक वैध आधार है । हमारा यह मत है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी (प्रत्यर्थियों), जो तारीख 1 जुलाई, 1986 के पूर्व सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके थे और वे कर्मचारी जो उक्त तारीख पर नियोजन में थे, उन्हें एक समान नहीं माना जा सकता है क्योंकि वे एक वर्ग से संबंधित नहीं थे । कर्मकार जो अंशदायी भविष्य निधि स्कीम के अधीन उपलब्ध सभी फायदों को प्राप्त करने के पश्चात् सेवानिवृत्त हो चुके थे वे अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख से अपीलार्थी-बोर्ड के कर्मचारी नहीं रह गए थे । वे एक पृथक् वर्ग गठित करते हैं ।"

इसलिए, विलम्ब, यदि कोई हुआ है, तो वह वेतन पुनरीक्षण आदेश को

---

[1] (1998) 8 एस. सी. सी. 30.

[2] (1997) 7 एस. सी. सी. 334.

[3] (1998) 6 एस. सी. सी. 328.

भूतलक्षी प्रभाव देने के अभिवाक् पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के लिए कोई मामला नहीं हो सकता है । सुस्पष्टतः, वेतन पुनरीक्षण, नए वेतनमानों को पुरःस्थापित करता है । सरकार द्वारा विभिन्न कारकों पर विचार किया गया था । **लेफ्टिनेंट इंजीनियर लैकट्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में जिसका अवलंब **आर. वीरास्वामी** (उपर्युक्त) वाले मामले में लिया गया था, माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में भी यह मत अपनाया गया था कि प्रदत्त नए वित्तीय फायदे अपेक्षित समुचित वित्तीय आंकलन पर आधारित होते हैं और तद्नुसार यह अभिनिर्धारित किया कि नियत अंतिम तारीख मनमाना नहीं हो सकती है और क्योंकि वह अध्ययन टीम की रिपोर्ट पर भी आधारित था । पैराग्राफ 5 में विधिक प्रास्थिति को निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया गया :–

> "अन्यथा भी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सर्वप्रथम अध्ययन दल नियुक्त किया गया था और उसकी रिपोर्ट के अनुसार, अध्ययन समूह की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् कतिपय फायदे दिए गए थे, यह दर्शित होता है कि नियत अंतिम तारीख का अध्ययन दल की रिपोर्ट के आधार पर इन फायदों को मंजूर करने के विनिश्चय के साथ तार्किक संबंध थे । नए वित्तीय फायदे, जो प्रदत्त किए गए थे, वे भी अपेक्षित समुचित वित्तीय आंकलन पर आधारित थे । इन सभी सुसंगत कारकों को ध्यान में रखते हुए यदि ऐसा फायदा दी हुई तारीख से प्रदत्त किया जाता है तो ऐसे फायदों को प्रदत्त करने के लिए दी गई अंतिम तारीख को मनमाना या अयुक्तियुक्त रूप में विचारित नहीं किया जा सकता है ।"

अतएव, यह प्रतीत होता है कि यहां सरकार द्वारा अंतिम तारीख नियत करते हुए वेतन पुनरीक्षण आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करने में कुछ गलत नहीं है ।

58. याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 39 और 43 तथा कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन सुनिश्चित करने के लिए नीति निदेशक तत्वों की महत्ता का जोरदार अवलंब लिया । अनुच्छेद 39(घ) और 43 इस प्रकार हैं :–

> "39. **राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व** – राज्य अपनी नीति विशिष्टतया, इस प्रकार करेगा कि सुनिश्चित रूप से –
>
> (क) से (ग) . . . .

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो,

43. **कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि** – राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवनस्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा ।"

यह प्रश्न कि क्या उपर्युक्त अनुच्छेदों के अभिकथित उल्लंघन से इस प्रश्न की ओर मोड़ा जा सकता है कि क्या अनुच्छेद 14 का कोई अतिलंघन किया गया था । वस्तुतः, **जे. पी. चौरसिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 39(घ) और नीति निदेशक तत्वों के अधीन सिद्धांत को समान कार्य के प्रत्येक मामले में यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है और उन्हें अनुच्छेद 14 के साथ पढ़ा जाना चाहिए और इसलिए उनको ऐसे मामलों में सत्यापित किया जाना होता है । पैराग्राफ 29 में उक्त पहलू को निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया गया :–

"29. संविधान, 1950 का अनुच्छेद 39(घ), 'समान कार्य के लिए समान वेतन' की उद्घोषणा करता है । यह अनुच्छेद और इसी प्रकार के नीति निदेशक तत्वों के उपबंध 'हमारे संविधान की अंतःकरण हैं' । सामाजिक न्याय में इनकी जड़े हैं । उनका आशय हमारे समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाना है । जैसा कि केशवानन्द भारती **बनाम** केरल राज्य [(1973) 4 एस. सी. सी. 225 (एस. सी. सी. पृष्ठ 502 पैरा 712] वाले मामले में न्यायमूर्ति हेग और न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा मत व्यक्त किया गया था कि 'संविधान सामान्य व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने और हमारे समाज की संरचना को परिवर्तित करने की ईप्सा करता है' । न्यायमूर्ति शेलट और न्यायमूर्ति ग्रोवर के शब्दों में, 'राज्य का उद्देश्य अधिकतर सामान्य व्यक्तियों की बेहतरी और सुधार करना होता है और उन्हें सामाजिक-आर्थिक न्याय प्रदान करना होता है' । नियोजन के मामलों में समाजवादी राज्य की सरकार को कमजोर वर्गों की

संरक्षा करनी चाहिए । यह सुनिश्चित करना चाहिए कि गरीब और अनभिज्ञ व्यक्तियों का शोषण न हो । राज्य को यह देखने का कर्तव्य होता है कि वंचित या कमजोर वर्ग अपने बकायों को प्राप्त करें । तथापि, यदि वे स्वेच्छया असमान निबंधनों पर नियोजन स्वीकार करते हैं तो राज्य को उनके समान व्यवहार के आधारभूत अधिकारों से इनकार नहीं करना चाहिए । यह इस पृष्ठभूमि के विरुद्ध है कि प्रथम स्थान पर 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत को निर्मित किया गया है । द्वितीयतः, यह सिद्धांत समान कार्य के प्रत्येक मामलों में यांत्रिक रूप से लागू नहीं होता है । इसे संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 के साथ पढ़ा जाना चाहिए । अनुच्छेद 14 विभिन्न आधारों पर युक्तियुक्त वर्गीकरण करने की अनुज्ञा देता है । अब यह सुस्थिर है कि वर्गीकरण एक-साथ एक समूह के व्यक्तियों के कुछ गुणों या लक्षणों के आधार पर किया जा सकता है और अन्यों में नहीं जिन्हें छोड़ा जाता है । निस्संदेह उन गुणों या लक्षणों का ईप्सित उद्देश्य को प्राप्त करने के साथ युक्तियुक्त संबंध होना चाहिए ।"

इसलिए, इसमें यह नहीं कहा जा सकता है कि यहां अनुच्छेद 39(घ) या अनुच्छेद 43 का कोई अतिलंघन किया गया है । याची अपने सेवा के दौरान विभिन्न वेतनमान द्वारा शासित थे । उन्हें नए वेतन पुनरीक्षण स्कीम से बाहर रखा गया था क्योंकि उनकी सेवानिवृत्त तारीख 1 जुलाई, 2004 के पूर्व हो गई थी । जब राज्य नियत अंतिम तारीख से जो भी नियत की जाती है, वेतनमानों का पुनरीक्षण करने के लिए सशक्त होता है तो इसे उसी तारीख से लागू किया जा सकता है । ऐसे कुछ व्यक्ति हो सकते हैं जिन्हें छोड़ा जा सकता है या जो उसके ठीक पूर्ववर्ती दिन को सेवानिवृत्त हो चुके होते हैं । इसलिए, इस सिद्धांत को लागू करने के प्रकाश में कि जहां तक वेतन पुनरीक्षण के साथ कोई कानूनी अधिकार नहीं हो सकता है, का संबंध है और यह कि यह राज्य का नीतिगत मामला होता है जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ए. के. चन्द्रशेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था, मात्र मुख्य और महत्वपूर्ण प्रश्न यह विचारित किया जाना है कि क्या नियत अंतिम तारीख संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन करता है । इसमें अंतिम तारीख 1 जुलाई, 2004 नियत की गई है जो कतिपय पहलुओं पर आधारित वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा की गई सिफारिश है । सरकार ने भी इसे स्वीकार करना ठीक सोचा है । प्रस्थापित अंतिम तारीख नियत करने के लिए वेतन पुनरीक्षण

आयोग की रिपोर्ट में विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई थी और जिसकी सरकार द्वारा अपने प्रति-शपथपत्र द्वारा पुष्टि भी की गई है । यह ऐसा नहीं है कि अंतिम तारीख मनमाने तरीके से नियत कर दी गई है और उसका ईप्सित उद्देश्य प्राप्त करने के साथ कोई संबंध नहीं है । वेतन पुनरीक्षण को प्रभावी बनाने के लिए तारीख नियत करने की शक्ति पुनरीक्षित वेतनों और पेंशनों की शक्ति के सहवर्ती होती है । मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा किया गया सम्पूर्ण कार्य इतना अधिक मनमाना या अयुक्तियुक्त है कि इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप किया जाए । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, राज्य की वित्तीय बाध्यताएं एक सुसंगत पहलू है जो राज्य को सम्यक् रूप से यह सशक्त करती हैं कि वह तारीख 1 जुलाई, 2004 के रूप में अंतिम तारीख नियत कर सके । इसलिए, जो व्यक्ति जैसे याची बच गए हैं वे उन व्यक्तियों के साथ समान वर्ग नहीं बनाते हैं जो उस वेतन पुनरीक्षण को पाने के लिए हकदार हैं जिसे तारीख 1 जुलाई, 2004 से प्रभावी बनाया गया है, जैसा कि इन रिट याचिकाओं में याचियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दलीलें दी गई हैं ।

इन सभी कारणों से यह सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं ।

क.

प्रमोद कुमार और अन्य

बनाम

जिला अधिकारी, केरल लोक सेवा आयोग, जिला कार्यालय, मलपुरम् और अन्य

तारीख 6 जनवरी, 2012

न्यायमूर्ति टी. आर. रामचन्द्रन् नायर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित के. एस. एण्ड एस. एस. आर. भाग II नियम 3(ख), 15(क) तथा नियम 14, 16 एवं 17] – किसी लोक सेवा पद हेतु चयन प्रक्रिया आरम्भ करते हुए चयनित अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची जारी करना – इसी दौरान संबंधित नियमों में संशोधन द्वारा वर्तमान श्रेणीबद्ध सूची के स्थान पर नई श्रेणीबद्ध सूची जारी करना – नई श्रेणीबद्ध सूची के साथ ही संशोधन को चुनौती देना – चुनौती खारिज होना – यदि किसी लोक सेवा पद हेतु चयन प्रक्रिया आरम्भ करते हुए चयनित अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची जारी की जाती है और इसी दौरान संबंधित नियमों में संशोधन के कारण वर्तमान श्रेणीबद्ध सूची समाप्त करके नई श्रेणीबद्ध सूची जारी की जाती है तो यह तभी वैध और विधिमान्य होगी जब संशोधित नियमों को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है और पूर्व श्रेणीबद्ध सूची में नाम आने के कारण ही संबंधित अभ्यर्थी चयनित होने के अधिकारी नहीं हो जाते हैं क्योंकि मात्र इसी कारण से उनमें कोई कानूनी अधिकार अर्जित नहीं हो जाता है ।

वर्तमान मामले में, रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में के याची ने पी. एस. सी. द्वारा विभिन्न जिलों में शासकीय हाई स्कूलों में हाई स्कूल सहायक (अंग्रेजी) के रूप में नियुक्ति के लिए जारी अधिसूचना के अनुसरण में एक आवेदन प्रस्तुत किया था । उसने मलपुरम् जिले में भर्ती के लिए आवेदन किया । लिखित परीक्षा और साक्षात्कार द्वारा चयन प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात् तारीख 17 अक्तूबर, 2005 को एक श्रेणीबद्ध सूची (प्रदर्श पी-1) प्रकाशित की गई । वह ओ. बी. सी. (अन्य पिछड़ी जाति) के लिए अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 3 के रूप में दर्ज था । तारीख 3 फरवरी, 2006 का प्रदर्श पी-2 एच. एस. ए. (अंग्रेजी) के रूप में नियुक्ति के लिए याची का सलाहकारी पत्र है । वह तृतीय प्रत्यर्थी के तारीख 17 मई, 2006

के आदेश प्रदर्श पी-3 के अनुसार नियुक्त हुआ और तद्नुसार, उसने तारीख 5 जून, 2006 को अपनी ड्यूटी ग्रहण की । प्रदर्श पी-4, आयोग द्वारा कारण बताओ नोटिस, उसकी सलाह को रद्द करने के लिए प्रस्थापित संसूचना है । के. एस. एण्ड एस. एस. आर. जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ है, के अधीन नियमों के संशोधन का अवलंब लिया गया । रद्दकरण के लिए प्रस्थापना इस आधार पर की गई है कि वस्तुतः याची अन्य पिछड़े वर्ग में नियुक्त हुआ था । इसके पूर्व जब एस. आई. यू. सी./ए. आई. उद्भूत होने की बारी आई क्योंकि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं था, तो इस बारी को अन्य पिछड़े वर्ग को दे दिया गया और तद्नुसार, अन्य पिछड़े वर्ग की अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 2 में स्थित श्रीमती श्रीप्रिया सी. के. को चक्रानुक्रम आदेश में रखने की सलाह दी गई । जब अन्य पिछड़े वर्ग की अगली बारी आई तो याची के लिए सलाह दी गई । जब जी. ओ. (पी.) सं. 7/2006/पी. एण्ड ए. आर. डी. तारीख 8 मार्च, 2006 जिसे तारीख 2 फरवरी, 2006 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था, के अनुसार नियम संशोधित किए गए तो श्रीमती श्रीप्रिया, एस. आई. यू. सी./ए. आई. की बारी में सलाह पाने की हकदार नहीं थी । इसलिए, उसे पश्चात्वर्ती अन्य पिछड़े वर्ग की बारी के विरुद्ध सलाह दी गई क्योंकि वह श्रेणीबद्ध सूची में याची से ऊपर थी और याची अन्य पिछड़े वर्ग की बारी के विरुद्ध सलाह पाने का हकदार नहीं था । इसके लिए याची ने प्रदर्श पी-6 के अनुसार सविस्तार स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और तत्पश्चात् यह दलील उद्भूत की कि जिस रिक्ति के लिए श्रीमती श्रीप्रिया और याची को सलाह दी गई है वह रिक्ति तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व उद्भूत हुई थी । यह वही प्रक्रम है जब रिट याचिका फाइल की गई थी । प्रदर्श पी-7 और प्रदर्श पी-8 कतिपय परिपत्र और शासकीय आदेश हैं जिनका अवलंब याची द्वारा यह दर्शित करने के लिए लिया गया है कि यह संशोधन उस चयन पर लागू होता है जो पहले से ही पूर्ण हो गया है और यह भविष्य में होने वाले चयनों में ही लागू होगा । जहां तक रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 के तथ्यों का संबंध है, इसमें के याची ने थ्रिसूर जिला में एच. एस. ए. (अंग्रेजी) के पद के लिए आवेदन किया था और तारीख 9 नवम्बर, 2005 को श्रेणीबद्ध सूची (प्रदर्श पी-1) प्रकाशित हुआ था । वह धीवरा समुदाय की अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 2 पर थी । प्रदर्श पी-2, तारीख 17 फरवरी, 2006 सलाह ज्ञापन है और प्रदर्श पी-3 तारीख 16 मई, 2006 नियुक्ति आदेश है और उसने तारीख 1 जून, 2006 को ड्यूटी ग्रहण की थी । प्रदर्श पी-4 सलाह रद्द करने के लिए प्रस्थापित

कारण बताओ नोटिस है । इसमें यह आधार लिया गया है कि 48 ओ. एक्स. की बारी की उपेक्षा कर दी गई थी क्योंकि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं था और उस रिक्ति को याची के लिए सलाह देते हुए भरा गया था क्योंकि उस समुदाय से उत्तीर्ण होने वाला तत्काल अगला अभ्यर्थी याची था । संशोधन, जो तारीख 2 फरवरी, 2006 को प्रभावी हुआ था, के प्रकाश में 48 ओ. एक्स. बारी की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी और एक नई चयन प्रक्रिया आयोजित करनी थी । प्रदर्श पी-6 स्पष्टीकरण की प्रति है । इसमें याची ने प्रदर्श पी-7 और पी-8 परिपत्रों का भी अवलंब लिया है । प्रदर्श पी-5 अधिसूचना द्वारा नियमों के संशोधन को रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 और 2243/2007 में प्रस्तुत किया गया था । उक्त अधिसूचना तारीख 8 मार्च, 2006 की है और इसकी प्रभावी तारीख 2 फरवरी, 2006 है । इसलिए, उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया गया है । के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के नियम 15(क) से यह दर्शित होता है कि "यदि उपाबंध में विनिर्दिष्ट किसी विशिष्ट समुदाय या समुदायों के समूह से चयन के लिए कोई उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है तो ऐसी रिक्ति भरी नहीं जाएगी और उस चयन वर्ष के लिए उस समुदाय या समुदायों के समूह के लिए पृथक् तौर पर अधिसूचित किया जाएगा और उसे उस समुदाय या समुदायों के समूह में से अनन्य रूप से सीधी भर्ती द्वारा भरा जाएगा" । एक स्पष्टीकरण के माध्यम से "चयन वर्ष" को परिभाषित किया गया है इसमें लोक सेवा आयोग द्वारा सुस्पष्टतः यह आधार लिया गया है कि संशोधित नियम और इसकी प्रयोज्यता के प्रकाश में, इसकी अस्थायी तौर पर उपेक्षा नहीं की जा सकती है यदि विशिष्ट समुदाय से कोई उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है जैसा कि असंशोधित नियमों में पूर्ववर्ती उपबंध में था । रिक्ति, उस समुदाय या समुदायों के समूह के लिए पृथक् तौर पर अधिसूचित की जाएगी । इसलिए, जिन रिक्तियों के लिए याचियों की सलाह दी गई थी और अस्थायी तौर पर उपेक्षा करते हुए नियुक्ति की गई थी वे संशोधित नियमों के विरुद्ध जाती हैं । तद्नुसार, इनका रद्दकरण अपेक्षित है । इससे व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा याचिकाओं का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसमें के विवाद्यक पर संशोधन के भूतलक्षी प्रभाव अर्थात् प्रदर्श पी-5 तारीख 8 मार्च, 2006 की अधिसूचना, जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुई थी, के प्रकाश में विचार किया जाएगा । महत्वपूर्ण

तौर पर, संशोधन या इसकी वैधता को नियुक्त अभ्यर्थियों द्वारा फाइल रिट याचिकाओं में चुनौती नहीं दी गई है । इसलिए, यह प्रश्न कि क्या संशोधन वैध है या नहीं, इसमें विचार के लिए उद्भूत नहीं होता है । सरकार द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से नियमों में संशोधन करने की शक्ति निर्विवाद है । इसलिए, यह कहना पर्याप्त है कि सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी का मात्र अधिकार किसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने तक ही है और यह कि इससे उसमें कोई अधिकार निहित नहीं होता है । यही के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के संशोधित नियम 3(ख) का प्रभाव है, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं । इसलिए, याचियों के विद्वान् काउंसेल के तर्क पर इस सिद्धांत के प्रकाश में ही विचार किया जाएगा । इसलिए, खंड न्यायपीठ का यह मत था कि रिक्ति होने की तारीख, उसी सेवा में निचले कैडर से प्रोन्नति के मामले में किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं होगी । यह याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्भूत इस दलील का पूर्ण उत्तर है कि सलाह और नियुक्ति के लिए सलाह अभ्यर्थियों के अधिकार पर रिक्ति होने की तारीख पर ही विचार किया जाना चाहिए । आयोग के विद्वान् काउंसेल श्री पी. सी. शशीधरन् ने यह सही ही दलील दी है कि यदि श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी के अधिकार पर रिक्ति की तारीख पर विचार किया जाता है तो इससे कई समस्याएं उद्भूत हो जाएंगी । जहां तक सीधी भर्ती की ईप्सा करते हुए अभ्यर्थी की अर्हता और पात्रता का संबंध है, इस पर आवेदन प्राप्ति की अंतिम तारीख पर विचार करना होगा यदि नियम कोई अन्य अत्यावश्यकता के लिए उपबंध नहीं करता है । यह एक सुस्थिर विधिक प्रतिपादना है । इसके परे, इस पर रिक्ति होने की तारीखों पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि लोक सेवा रिक्तियां विभिन्न तारीखों पर उद्भूत होती हैं और इन रिक्तियों की रिपोर्ट समय-समय पर लोक सेवा आयोग में की जाती है । जहां तक आयोग द्वारा स्वीकृत व्यवहार का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अधिसूचना प्रकाशित होने की तारीख तक रिपोर्ट की गई रिक्तियों पर भी एक ब्लाक वर्ष में सलाह के लिए विचार किया जाता है । इसके पश्चात्, समय-समय पर श्रेणीबद्ध सूची के अस्तित्व में रहने के दौरान भी रिक्तियां उद्भूत हो सकती हैं और इन्हें समय-समय पर पृथक् प्रक्रियाओं द्वारा रिपोर्ट किया जा सकता है । श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थियों की बारी पर समय-समय पर सलाह अभ्यर्थियों के लिए आयोग द्वारा के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के नियम 14 से 17 के निबंधनों में विचार किया जाता है यदि ऐसा है तो यह कहा जा सकता है कि याची के विद्वान्

काउंसेल की इस दलील को कि इस पर रिक्ति होने की तारीख पर विचार किया जाना चाहिए, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । सुस्थिर विधिक प्रतिपादना यह है कि जहां तक श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित व्यक्तियों का संबंध है, उनमें नियुक्ति के लिए कोई अधिकार निहित नहीं होता है । चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् भी सरकार द्वारा भर्ती नियमों में संशोधन किया जा सकता है । यदि संशोधन भूतलक्षी है तो वह श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थियों के अधिकारों को भी प्रभावित कर सकती है । खंड न्यायपीठ का यह मत था कि यदि संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है तो जब तक कि इससे अभ्यर्थी का कोई सांविधानिक अधिकार प्रभावित नहीं होता है तभी संशोधन को इसके आशय और प्रभाव के रूप में प्रभावी किया जा सकता है । (पैरा 21, 25, 27, 29 और 31)

इसलिए, खंड न्यायपीठ का यह मत है कि चयन वर्ष की अवधारणा, जिसे पुरःस्थापित किया गया है, से अब यह दर्शित होता है कि यह श्रेणीबद्ध सूची के प्रवर्तन में आने की तारीख से इसकी समाप्ति की तारीख तक होगी । यदि ऐसा है तो, संशोधन जिसे तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी बनाया गया है, तब लागू होगा जब एन. सी. ए. रिक्तियों को पुनः अधिसूचित किया जाए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिपत्र, संशोधित नियमों के प्रतिकूल कुछ भी जोड़ता या फेरफार या उपांतरित नहीं करता है । परिपत्र, मात्र यह अनुध्यात करता है कि चयन वर्ष उस प्रक्रम से जारी रहेगा जिस समय तक चयन सूची जारी रही जो कि अंतिम सलाह की तारीख थी । खंड न्यायपीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रभावी तारीख अर्थात् तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व की गई सलाह निर्विघ्न रहेगी, जो इन मामलों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है । के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के असंशोधित नियम 15 से भी यह स्पष्ट होता है कि आरक्षण के नियमों को स्वीकार करने के लिए पैमाना एक वर्ष के लिए था । यह एक वर्ष में भर्ती के लिए 50 प्रतिशत नियम की सीमा में आवेदन के लिए था । नियम 15(ग) (असंशोधित) के परन्तुक में यह उपबंध था कि किसी पद में एक संवर्ग के लिए एक वर्ष में आरक्षण जिसमें अग्रनयन रिक्तियां सम्मिलित हैं, कुल रिक्तियों की संख्या का 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी जिस वर्ग की सीधी भर्ती द्वारा चयन के लिए उस वर्ष में प्रत्यावर्तित किया गया है । इसमें हम यह पाते हैं कि स्पष्टीकरण द्वारा नियम के प्रयोजन के लिए एक चयन वर्ष उस तारीख की अवधि के बीच होगी जिस तारीख को अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची प्रवर्तन में आने के

पश्चात् जिस तारीख को समाप्त होती है । इसलिए, जहां तक इसमें की श्रेणी सूचियों का संबंध है, यद्यपि, उन्हें स्पष्टीकरण की पुरःस्थापना के प्रकाश में तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व प्रकाशित कर दी गई थी और श्रेणीबद्ध सूची की अवधि सामान्यतः तीन वर्षों के पश्चात् ही समाप्त होती थी । इसलिए, समुदायों के लिए बारी के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के असंशोधित नियम 15 के प्रकाश में आवश्यक रूप से निर्धारित की जाएगी । यदि ऐसा है तो अस्थायी तौर पर की गई अवहेलना को तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है । याचियों का दावा यह है कि उन्हें तारीख 8 मार्च, 2006 के पूर्व सलाह दी गई थी जिस तारीख को प्रदर्श पी-5 प्रकाशित हुआ था । किन्तु, सुस्पष्टतः संशोधन तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ । यदि ऐसा था तो एम. सी. ए. रिक्तियां पुनः अधिसूचित की जाएंगी और उनकी बारी की कोई अस्थायी अवहेलना नहीं की जा सकती है । जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, रिक्ति होने की तारीख के बारे में कोई मानदंड नहीं हो सकता है । याचियों में कोई सलाह पाने और किसी विनिर्दिष्ट रिक्ति में नियुक्ति पाने का निहित अधिकार नहीं है । याची के विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुगाथन ने यह निवेदन किया कि रिट याचिका (सिविल) सं. 843/2008 के निर्णय में भी यद्यपि रिक्तियां भरने के समय पर लागू विधि के सिद्धांत को विचार में लिया गया था न कि श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित होने के समय पर अविभावी विधि को विचार में लिया गया था, खंड न्यायपीठ का विनिश्चय भी सही तौर पर अधिकथित सुसंगत विधिक सिद्धांतों में नहीं है । किन्तु, श्री पी. नन्द कुमार द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों तथा मोहनन वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के निर्णयों के प्रकाश में, जिन पर मेरे द्वारा पहले ही चर्चा की जा चुकी है, यह प्रतीत होता है कि भूतलक्षी संशोधन द्वारा पक्षकारों के अधिकार कम किए जा सकते हैं । इसलिए, याची तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् दी गई सलाह का अवलंब नहीं ले सकते हैं, सुस्पष्टतः जिन्हें अस्थायी तौर पर बारी की अवहेलना करते हुए की गई है । इसलिए, आयोग द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस सुनिश्चित तौर पर न्यायानुमत है । रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में आयोग द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र और इसमें फाइल अतिरिक्त शपथपत्र में यह स्पष्टीकृत किया गया है कि जब एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. की बारी आई तब सूची में कोई ओ. एक्स. अभ्यर्थी नहीं था और इसलिए उक्त बारी में श्री मोहन राज पी. एम. के लिए सलाह दी गई जो धीवारा के लिए अनुपूरक सूची में श्रेणी संख्या 1 पर था और

एम. आर. आई. 50 डी. की बारी भी अगले अभ्यर्थी अर्थात् श्रीमती सुगान्धी आर. वी., जो तारीख 17 फरवरी, 2006 को उसी सूची में श्रेणी संख्या 2 पर थी, के लिए सलाह देते हुए भरी गई थी । चक्रानुक्रम इस प्रकार था – एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. एन. सी. ए. डी. : मोहन राज पी. एम., श्रेणी सं. 1 (अनुपूरक सूची-धीवारा), एम. आर. आई. 50 डी. : सुगान्धी आर. वी., श्रेणी सं. 2 (अनुपूरक सूची) संशोधन जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ था, के प्रकाश में, तारीख 17 फरवरी, 2006 को चक्रानुक्रम पुनरीक्षित हुआ था और एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. की बारी एन. सी. ए. चयन के लिए अधिसूचित हुआ था और अभ्यर्थी श्री मोहन राज पी. एम. (श्रेणी सं. 1) के लिए एम. आर. आई. 50 डी. बारी में सलाह दी गई थी । इसलिए, याची श्रीमती सुगान्धी आर. वी. की सलाह को रद्द कर दिया गया था । यह भी उल्लेख है कि श्रेणीबद्ध सूची का विस्तार तारीख 13 जनवरी, 2009 की एक युक्तिका अधिसूचना द्वारा किया गया था और याची के नाम को मुख्य सूची में श्रेणी सं. 110 के रूप में सम्मिलित किया गया था । मूल श्रेणीबद्ध सूची तारीख 18 अक्तूबर, 2006 समाप्त कर दी गई थी किन्तु अभ्यर्थियों की तारीख 9 नवम्बर, 2005 की श्रेणीबद्ध सूची की वैधता अवधि के भीतर रिपोर्टिंग सभी रिक्तियों के विरुद्ध सलाह दी गई थी । अंतिम सलाह की तारीख 25 जून, 2009 थी और उस तारीख को मौजूद चक्रानुक्रम एम. आर. आई. 5 ओ. सी. भी था । यह भी उल्लिखित किया जाता है कि धीवारा समुदाय से संबंधित एक अन्य अभ्यर्थी को भी उपांतरित श्रेणीबद्ध सूची में श्रेणी संख्या 75 के रूप में रखा गया है । अंतिमतः यह कथित है कि धीवारा समुदाय की बारी उद्भूत नहीं हुई है और आयोग ने तारीख 29 अक्तूबर, 2006 से प्रभावी पद के लिए एक नई श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित की है और उक्त सूची से अभ्यर्थियों के लिए सलाह दी जानी है । रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में लोक सेवा आयोग द्वारा तारीख 21 दिसम्बर, 2010 को फाइल शपथपत्र के पैरा 3 में यह कथित है कि पद के लिए श्रेणीबद्ध सूची का, रिट याचिका (सिविल) सं. 21300/2005 में तारीख 13 जुलाई, 2006 के निर्णय के अनुसार विस्तार किया गया था और पुनः सलाह के लिए याची की बारी उद्भूत हुई थी किन्तु सलाह को मामले में पारित अंतरिम आदेश को ध्यान में रखते हुए अवमुक्त नहीं किया गया था । इसलिए, रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में याची पुनः सलाह के लिए हकदार होगा । (पैरा 37, 38, 40, 41, 43, 44, 45 और 46)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2006]	2006 (3) के. एल. टी. 641 (एफ. बी.) : **मोहनन** बनाम **होम्योपैथी निदेशक ;**	12
[1981]	1981 के. एल. टी. 458 (एफ. बी.) : **वर्गीज और अन्य** बनाम **केरल राज्य और अन्य ।**	12

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 725 : **दीपक अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	15,28,43
[2011]	आई. एल. आर. 2011 (4) केरल 954 : **साजिथ बी.** बनाम **केरल राज्य और अन्य ;**	34
[2010]	(2010) 7 एस. सी. सी. 678 : **ईस्ट कोस्ट रेलवे और अन्य** बनाम **महादेव अप्पाराव और अन्य ;**	42
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2497 : **उच्च न्यायालय, दिल्ली और एक अन्य** बनाम **ए. के. महाजन और अन्य ;**	15,27
[2006]	2006 (1) के. एल. टी. 493 : **स्टालिन** बनाम **केरल राज्य ;**	22
[2005]	2005 (1) के. एल. टी. 364 : **कुंजू कुंजू** बनाम **केरल राज्य ;**	22
[2005]	(2005) 4 एस. सी. सी. 154 : **सचिव, आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग** बनाम **बी. स्वप्ना और अन्य ;**	12
[1993]	1993 (1) के. एल. टी. 740 (डी. बी.) : **श्रीकुमार** बनाम **त्रावणकोर देवासम बोर्ड ;**	12
[1993]	1993 (2) के. एल. टी. 721 : **मोहम्मद नाजीम** बनाम **केरल राज्य ;**	15

[1993]	(1993) 1 एस. सी. सी. 154 : **चंड़ीगढ़ संघीय राज्य क्षेत्र** बनाम **दिलबाग सिंह और अन्य** ;	42
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 47 : **शंकरसन दास** बनाम **भारत संघ** ;	42
[1985]	1985 के. एल. टी. 793 : **वेलायूधन** बनाम **सचिव, सरकार** ;	26
[1977]	1977 के. एल. टी. 622 : **जेम्स थामस** बनाम **मुख्य न्यायाधीश** ।	18,26

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : **2007 (एच.) की सिविल रिट याचिका सं. 1125, 2007 (पी.) की सिविल रिट याचिका सं. 2243 और 2011 (एम.) की सिविल रिट याचिका सं. 11329.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री एन. सुगाथन और श्रीमती वर्षा भास्कर

प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से सर्वश्री पी. सी. शशीधरन्, पी. नन्द कुमार, एलेक्जेन्डर थामस, स्थायी काउंसेल

प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 की ओर से श्रीमती निशा बोस, सरकारी प्लीडर

न्यायमूर्ति टी. आर. रामचन्द्रन् नायर – इन तीनों रिट याचिकाओं में केरल राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम (के. एस. एण्ड एस. एस. आर.) तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी यथासंशोधित के भाग II के नियम 15(क) के निर्वचन से संबंधित प्रश्न अन्तर्वलित हैं । रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 और 2243/2007 में के याची चयनित किए गए थे और तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् नियुक्त किए गए थे, जिसे लोक सेवा आयोग (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'पी. एस. सी.' कहा गया है) द्वारा उस संशोधन के प्रकाश में जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ है, रद्द करने की ईप्सा की गई है । रिट याचिका (सिविल)

सं. 11329/2011 में के याची ने एन. सी. ए. (कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं) रिक्तियों के लिए प्रकाशित श्रेणीबद्ध सूची में अपना नाम सम्मिलित करने के प्रकाश में नियुक्त करने की ईप्सा की है । चूंकि, सामान्य प्रश्न उद्भूत हुए हैं इसलिए, इन रिट याचिकाओं का एक साथ निपटारा किया जाएगा ।

2. इन मामलों के तथ्य इस प्रकार हैं – रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में के याची ने पी. एस. सी. द्वारा विभिन्न जिलों में शासकीय हाई स्कूलों में हाई स्कूल सहायक (अंग्रेजी) के रूप में नियुक्ति के लिए जारी अधिसूचना के अनुसरण में एक आवेदन प्रस्तुत किया था । उसने मलपुरम् जिले में भर्ती के लिए आवेदन किया । लिखित परीक्षा और साक्षात्कार द्वारा चयन प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात् तारीख 17 अक्तूबर, 2005 को एक श्रेणीबद्ध सूची (प्रदर्श पी-1) प्रकाशित की गई । वह ओ. बी. सी. (अन्य पिछड़ी जाति) के लिए अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 3 के रूप में दर्ज था । तारीख 3 फरवरी, 2006 का प्रदर्श पी-2 एच. एस. ए. (अंग्रेजी) के रूप में नियुक्ति के लिए याची का सलाहकारी पत्र है । वह तृतीय प्रत्यर्थी के तारीख 17 मई, 2006 के आदेश प्रदर्श पी-3 के अनुसार नियुक्त हुआ और तद्नुसार, उसने तारीख 5 जून, 2006 को अपनी ड्यूटी ग्रहण की ।

3. प्रदर्श पी-4, आयोग द्वारा कारण बताओ नोटिस, उसकी सलाह को रद्द करने के लिए प्रस्थापित संसूचना है । के. एस. एण्ड एस. एस. आर. जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ है, के अधीन नियमों के संशोधन का अवलंब लिया गया ।

4. रद्दकरण के लिए प्रस्थापना इस आधार पर की गई है कि वस्तुतः याची अन्य पिछड़े वर्ग में नियुक्त हुआ था । इसके पूर्व जब एस. आई. यू. सी./ए. आई. उद्भूत होने की बारी आई क्योंकि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं था, तो इस बारी को अन्य पिछड़े वर्ग को दे दिया गया और तद्नुसार, अन्य पिछड़े वर्ग की अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 2 में स्थित श्रीमती श्रीप्रिया सी. के. को चक्रानुक्रम आदेश में रखने की सलाह दी गई । जब अन्य पिछड़े वर्ग की अगली बारी आई तो याची के लिए सलाह दी गई । जब जी. ओ. (पी.) सं. 7/2006/पी. एण्ड ए. आर. डी. तारीख 8 मार्च, 2006, जिसे तारीख 2 फरवरी, 2006 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था, के अनुसार नियम संशोधित किए गए तो श्रीमती श्रीप्रिया, एस. आई. यू. सी./ए. आई. की बारी में सलाह पाने की हकदार नहीं थी । इसलिए, उसे पश्चात्वर्ती अन्य पिछड़े वर्ग की बारी के विरुद्ध सलाह दी गई क्योंकि वह

श्रेणीबद्ध सूची में याची से ऊपर थी और याची अन्य पिछड़े वर्ग की बारी के विरुद्ध सलाह पाने का हकदार नहीं था । इसके लिए याची ने प्रदर्श पी-6 के अनुसार सविस्तार स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और तत्पश्चात् यह दलील उद्भूत की कि जिस रिक्ति के लिए श्रीमती श्रीप्रिया और याची को सलाह दी गई है वह रिक्ति तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व उद्भूत हुई थी ।

5. यह वही प्रक्रम है जब रिट याचिका फाइल की गई थी । प्रदर्श पी-7 और प्रदर्श पी-8 कतिपय परिपत्र और शासकीय आदेश हैं जिनका अवलंब याची द्वारा यह दर्शित करने के लिए लिया गया है कि यह संशोधन उस चयन पर लागू होता है जो पहले से ही पूर्ण हो गया है और यह भविष्य में होने वाले चयनों में ही लागू होगा ।

6. जहां तक रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 के तथ्यों का संबंध है, इसमें के याची ने थ्रीसुर जिला में एच. एस. ए. (अंग्रेजी) के पद के लिए आवेदन किया था और तारीख 9 नवम्बर, 2005 को श्रेणीबद्ध सूची (प्रदर्श पी-1) प्रकाशित हुआ था । वह धीवरा समुदाय की अनुपूरक सूची में श्रेणी सं. 2 पर थी । प्रदर्श पी-2, तारीख 17 फरवरी, 2006, सलाह ज्ञापन है और प्रदर्श पी-3 तारीख 16 मई, 2006 नियुक्ति आदेश है और उसने तारीख 1 जून, 2006 को ड्यूटी ग्रहण की थी । प्रदर्श पी-4, सलाह रद्द करने के लिए प्रस्थापित कारण बताओ नोटिस है । इसमें यह आधार लिया गया है कि 48 ओ. एक्स. की बारी की उपेक्षा कर दी गई थी क्योंकि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं था और उस रिक्ति को याची के लिए सलाह देते हुए भरा गया था क्योंकि उस समुदाय से उत्तीर्ण होने वाला तत्काल अगला अभ्यर्थी याची था । संशोधन, जो तारीख 2 फरवरी, 2006 को प्रभावी हुआ था, के प्रकाश में 48 ओ. एक्स. बारी की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी और एक नई चयन प्रक्रिया आयोजित करनी थी ।

7. प्रदर्श पी-6 स्पष्टीकरण की प्रति है । इसमें याची ने प्रदर्श पी-7 और पी-8 परिपत्रों का भी अवलंब लिया है ।

8. प्रदर्श पी-5 अधिसूचना द्वारा नियमों के संशोधन को रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 और 2243/2007 में प्रस्तुत किया गया था । उक्त अधिसूचना तारीख 8 मार्च, 2006 की है और इसकी प्रभावी तारीख 2 फरवरी, 2006 है । इसलिए, उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया गया है । के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के नियम 15(क) से यह दर्शित होता है कि "यदि उपाबंध में विनिर्दिष्ट किसी विशिष्ट समुदाय या समुदायों के

समूह से चयन के लिए कोई उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है तो ऐसी रिक्ति भरी नहीं जाएगी और उस चयन वर्ष के लिए उस समुदाय या समुदायों के समूह के लिए पृथक् तौर पर अधिसूचित किया जाएगा और उसे उस समुदाय या समुदायों के समूह में से अनन्य रूप से सीधी भर्ती द्वारा भरा जाएगा" । एक स्पष्टीकरण के माध्यम से "चयन वर्ष" को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है :–

> "स्पष्टीकरण – इस नियम के प्रयोजन के लिए 'एक चयन वर्ष' की अवधि उस तारीख के बीच होगी जिस तारीख से अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची प्रवर्तन में आकर समाप्त हुई ।"

यह नवीनतम पुरःस्थापित अवधारणा भी है । इसमें का टिप्पण यह उपबंध करता है कि :–

> "टिप्पण – ऐसी सभी रिक्तियों की लम्बित अप्रतिकर बारी की अस्थायी तौर पर उपेक्षा कर दी जाएगी, यदि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है और तारीख 2 फरवरी, 2006 तक ड्यूटी ग्रहण नहीं करता है तो उसकी भरपाई की जाएगी ।"

9. इसमें लोक सेवा आयोग द्वारा सुस्पष्टतः यह आधार लिया गया है कि संशोधित नियम और इसकी प्रयोज्यता के प्रकाश में, इसकी अस्थायी तौर पर उपेक्षा नहीं की जा सकती है यदि विशिष्ट समुदाय से कोई उपयुक्त अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है जैसा कि असंशोधित नियमों में पूर्ववर्ती उपबंध में था । रिक्ति, उस समुदाय या समुदायों के समूह के लिए पृथक् तौर पर अधिसूचित की जाएगी । इसलिए, जिन रिक्तियों के लिए याचियों की सलाह दी गई थी और अस्थायी तौर पर उपेक्षा करते हुए नियुक्ति की गई थी वे संशोधित नियमों के विरुद्ध जाती है । तद्नुसार, इनका रद्दकरण अपेक्षित है ।

10. रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में प्रदर्श पी-9, नियुक्ति के लिए सलाह को रद्द करने वाला आदेश है । यह प्रतीत होता है कि रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में मामले में पारित अंतरिम आदेश को ध्यान में रखते हुए कोई अन्य आदेश पारित नहीं किए गए थे ।

11. दोनों रिट याचिकाओं में, याची निरन्तर अन्तरिम आदेशों पर आधारित रहे । याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुगाथन ने यह निवेदन किया कि श्रेणीबद्ध सूची को संशोधन पुरःस्थापित करने के पूर्व प्रकाशित

कर दिया गया था । याची, प्रदर्श पी-5 तारीख 8 मार्च, 2006 की अधिसूचना जारी किए जाने के पूर्व नियुक्त किए जा चुके थे । इसलिए, यह निवेदन किया कि सुस्पष्टतः याचियों की नियुक्ति के लिए जिन रिक्तियों के विरुद्ध सलाह दी गई थी वे तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थीं जो संशोधन प्रभावी होने की भी तारीख है । इसलिए, उनके अधिकार रिक्तियों के अस्तित्व में आने की तारीख पर ही निश्चित हो चुके थे । यदि ऐसा था तो बारी की अस्थायी उपेक्षा करते हुए की गई सलाह, जो असंशोधित नियम के अधीन उपबंधित एक तरीका है, अत्यधिक संरक्षित है । यह इंगित किया गया है कि संशोधन मात्र भावी चयनों में ही लागू किया जा सकता है । याचियों का यह भी पक्षकथन है कि चयन प्रक्रिया संशोधन के पूर्व पूरी की जा चुकी थी । अंततः यह तर्क दिया गया कि संशोधन के अनुसरण में पुरःस्थापित "चयन वर्ष" का अर्थान्वयन मात्र उस श्रेणीबद्ध सूची में ही लागू किया जा सकता है जो तारीख 2 फरवरी, 2006 को या उसके पश्चात् प्रवर्तन में आया ।

12. इस अभिवाक् के समर्थन में कि संशोधन, याचियों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा, निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया गया :– **वर्गीज और अन्य** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1], **श्रीकुमार** बनाम **त्रावणकोर देवासम बोर्ड**[2], **मोहनन** बनाम **होम्योपैथी निदेशक**[3] तथा **सचिव, आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग** बनाम **बी. स्वप्ना और अन्य**[4] ।

13. आयोग के विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री पी. सी. शशीधरन् और रिट याचिका (सिविल) सं. 11329/2011 में याची के विद्वान् काउंसेल श्री पी. नन्दकुमार ने श्री एन. सुथागन की दलीलों का विरोध किया । जहां तक रिट याचिका (सिविल) सं. 11329/2011 में याची का संबंध है, वह थ्रिसुर जिले में एच. एस. ए. (अंग्रेजी) के पद के लिए श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित किया गया था जो अन्य ईसाई समुदाय (ओ. एक्स.) के एन. सी. ए. की बारी को भरने के लिए था । वह प्रदर्श पी-1 श्रेणीबद्ध सूची में क्रम सं. 1 पर था । इसलिए, उसने रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में याची द्वारा धारित पद के विरुद्ध नियुक्ति का दावा किया है ।

---

[1] 1981 के. एल. टी. 458 (एफ. बी.).

[2] 1993 (1) के. एल. टी. 740 (डी. बी.).

[3] 2006 (3) के. एल. टी. 641 (एफ. बी.).

[4] (2005) 4 एस. सी. सी. 154.

14. आयोग के विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री पी. सी. शशीधरन् ने यह निवेदन किया कि संशोधन, तारीख 2 फरवरी, 2006 से भूतलक्षी प्रभाव रखता है और इसलिए, कोई सलाह, के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के संशोधित नियम 15(क) के निबंधनों में ही संशोधन के प्रवर्तन में आने के पश्चात् ही किया जा सकता है । इसलिए, एन. सी. ए. रिक्तियां पुनः अधिसूचित की जानी चाहिए और नियम 15(क) का टिप्पण भी याचियों के पक्षकथन की संरक्षा नहीं करता है । यह इंगित किया गया कि याचियों में मात्र श्रेणीबद्ध सूची में नाम सम्मिलित होने के कारण ही नियुक्ति का कोई अधिकार निहित नहीं होता है । संशोधन को इन रिट याचिकाओं में चुनौती नहीं दी गई है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि रिक्तियां अस्तित्व में आने की तारीख से दावे पर विचार करने के लिए अभिवाक् को चयन हेतु स्वीकार नहीं किया जा सकता जैसा कि विभिन्न रिक्तियों को लोक सेवा आयोग में समय-समय पर रिपोर्ट किया जाता है और यदि अभ्यर्थियों के अधिकारों को रिक्तियों के अस्तित्व में आने की तारीख के आधार पर अवधारित किया जाए तो असंख्य अभ्यर्थी अपनी अर्हताओं अथवा अन्य बातों के आधार पर उस तारीख से दावा कर सकते हैं जिस तारीख को सम्पूर्ण चयन प्रक्रिया समाप्त हुई । यह इंगित किया गया कि उक्त अभिवाक् को प्रोन्नति के मामले में **वर्गीज और अन्य** बनाम **केरल राज्य और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा स्वीकार किया गया था जिसमें प्रोन्नति पाने वाले व्यक्तियों के अधिकारों पर रिक्ति होने की तारीख से विचार करने का निदेश दिया गया था । इसमें उक्त अवधारणा लागू नहीं हो सकती है । रिट याचिका (सिविल) सं. 19525/2006 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवंलब लिया गया जिसकी पुष्टि डब्ल्यू. ए. सं. 777/2011 में खंड न्यायपीठ द्वारा की गई थी । यह इंगित किया गया कि इस न्यायालय ने आयोग के इस अभिवाक् को स्वीकार कर लिया था कि तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् सलाह मात्र कानूनी नियमों के संशोधन द्वारा पुरःस्थापित परिवर्तित विधि के अनुसार ही की जा सकती थी । यह इंगित किया गया कि चयन वर्ष श्रेणीबद्ध सूची के प्रकाशन की तारीख से प्रारम्भ होता है और इसलिए याचियों के विद्वान् काउंसेल की दलीलों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । यह इंगित किया गया कि आयोग द्वारा संशोधन के निबंधनों का स्पष्टीकरण करते हुए, जारी परिपत्रों को रिट याचिका (सिविल) सं. 19525/2006 में इस न्यायालय द्वारा तथा डब्ल्यू. ए. सं. 777/2011 में खंड न्यायपीठ द्वारा कायम रखा गया है ।

15. श्री पी. नन्द कुमार ने **मोहम्मद नाजीम** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय और **उच्च न्यायालय, दिल्ली और एक अन्य** बनाम **ए. के. महाजन और अन्य**[2] तथा **दीपक अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब इस प्रास्थिति की दलील देने के लिए लिया कि ऐसे किन्हीं व्यक्तियों के अधिकारों में, जो श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित हैं, भूतलक्षी संशोधन द्वारा फेरफार किया जा सकता है । सरकार को भूतलक्षी प्रभाव से नियमों में संशोधन करने की शक्ति पर कोई निर्बंधन नहीं होता है यद्यपि चयन प्रक्रिया आरम्भ हो गई हो । यह निवेदन किया गया कि रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 और रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में के याचियों ने कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है और इसलिए संशोधित उपबंधों से उनके अधिकार प्राप्त हो जाएंगे ।

16. के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के संशोधित नियम 15(क), जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, यदि इसमें लागू किया जाता है तो एन. सी. ए. रिक्तियों को पुनः अधिसूचित करना होगा । संशोधन तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी होते हैं । जहां तक श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित, जैसा कि इसमें एक अभ्यर्थी है, अभ्यर्थियों के विधिक अधिकार का संबंध है, उसके निमित्त के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के नियम 3(ख) में यह अभिव्यक्त उपबंध हैं कि "किसी सेवा (राज्य या अधीनस्थ) या सेवा में किसी वर्ग या संवर्ग के लिए अनुमोदित अभ्यर्थियों की किसी सूची में अभ्यर्थी का नाम सम्मिलित होने से ही उसे उस सेवा, वर्ग या संवर्ग में नियुक्ति के लिए कोई दावा करने का अधिकार प्रदत्त नहीं हो जाता है" । उद्भूत दलीलों का इन उपबंधों के प्रकाश में विश्लेषण किया जाएगा ।

17. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुगाथन ने यह दलील दी है कि अभ्यर्थी के अधिकारों का निर्धारण रिक्ति होने की तारीख से किया जाएगा ।

18. **वर्गीज** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय

---

[1] 1993 (2) के. एल. टी. 721.

[2] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2497.

[3] (2011) 6 एस. सी. सी. 725.

जिसका अनुसरण **जेम्स थामस** बनाम **मुख्य न्यायाधीश**[1] वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के एक अन्य पूर्ववर्ती विनिश्चय में किया गया था, प्रोन्नति के लिए दावे की पुष्टि करता है । **वर्गीज** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा यह घोषित किया गया था कि "रिक्ति का अस्तित्व में आने का समय ही प्रोन्नति के प्रश्न का अवधारण करने के लिए सुसंगत होता है न कि प्रोन्नति का आदेश पारित करने का समय सुसंगत होता है । सुसंगत तारीख सुनिश्चित होनी चाहिए और यह प्राधिकारियों के अतिक्रमण पर निर्भर नहीं होना चाहिए अन्यथा अवधारण मनमाना हो जाएगा" । श्री सुगाथन् द्वारा इस विनिश्चय का अवलंब इस प्रास्थिति की दलील देने के लिए लिया गया कि इसमें की रिक्तियां संशोधन प्रभावी होने की तारीख के पूर्व रिपोर्ट कर दी गई थीं । विद्वान् काउंसेल द्वारा रिपोर्टिंग रिक्तियों के लिए प्रोफार्मा को रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में ज्ञापन के साथ प्रस्तुत किया गया है जिसमें रिक्तियां अस्तित्व में आने की तारीख देने के लिए कालम भी है । **श्री कुमार** बनाम **त्रावणकोर देवासम** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ के विनिश्चय में भी इस सिद्धांत को दोहराया गया है कि चयन विधि का अवधारण अधिसूचना के समय पर किया जाना चाहिए तथा अधिसूचना जारी होने के पश्चात् इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है । निर्णय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इस मुद्दे पर विभिन्न संदर्भों में विचार किया गया था । इसमें त्रावणकोर देवासम भर्ती नियम का नियम 9 निवर्चन के लिए आया था । न्यायपीठ का यह मत था कि बोर्ड बाद के प्रक्रम पर और अधिसूचना प्रकाशित होने के पश्चात् या तो अर्हता या उपयुक्तता के रूप में चयन के लिए अतिरिक्त अपेक्षा नहीं कर सकता है । उस संदर्भ में, उपर्युक्त उद्धृत सिद्धांत को अधिकथित किया गया । इसमें प्रास्थिति उसके समान नहीं है क्योंकि इसमें ऐसी स्थिति के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के नियमों में भूतलक्षी संशोधन के कारण उद्भूत हुई है ।

19. **सचिव, आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग** बनाम **बी. स्वप्ना और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 10 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "सेवा विधि में दो सिद्धांत हैं जो निर्विवाद हैं । प्रथमतः, विज्ञापित संख्या के परे नियुक्ति नहीं की जा सकती है और

---

[1] 1977 के. एल. टी. 622.

द्वितीयतः, चयन के मानकों में चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद परिवर्तन नहीं किया जा सकता है ।"

याचियों के विद्वान् काउंसेल ने इसका भी जोरदार अवलंब लिया । विद्वान् काउंसेल ने **मोहनन** बनाम **होम्योपैथी निदेशक** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय का भी अवलंब लिया ।

20. **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने उन विशेष नियमों में संशोधन के प्रभाव पर विचार किया था जो चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् जारी किए गए थे जिनमें कतिपय पदों के लिए अर्हताओं में परिवर्तन सम्मिलित था । इसमें पूर्ण न्यायपीठ ने माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों पर सविस्तार विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि संशोधित विशेष नियम उन रिक्तियों को लागू होंगे जो संशोधन के प्रवर्तन में आने के पश्चात् उद्भूत हुए थे । इसे इस प्रकार घोषित किया गया था :–

> "इसलिए, हमारे विवेक में इस बाबत कोई संदेह नहीं रह जाता है कि जब एक बार किसी रिक्ति के अस्तित्व में आने पर उस विशिष्ट पद के संबंध में, नियुक्ति के लिए अर्हताओं और तरीकों के बारे में संशोधन किया जाता है जो संशोधित नियमों के प्रवर्तन में आने के पश्चात् उद्भूत हुई है तो यदि उसके लिए चयन प्रक्रिया नियमों के संशोधन के पूर्व आरम्भ हो चुकी है तो ऐसे पद को लोक सेवा आयोग द्वारा प्रकाशित किसी श्रेणीबद्ध सूची के चालू रहते हुए भी मात्र संशोधित नियमों के अनुसार ही भरा जा सकता है । (पैरा 22)"

21. इसमें के विवाद्यक पर संशोधन के भूतलक्षी प्रभाव अर्थात् प्रदर्श पी-5 तारीख 8 मार्च, 2006 की अधिसूचना, जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुई थी, के प्रकाश में विचार किया जाएगा । महत्वपूर्ण तौर पर, संशोधन या इसकी वैधता को नियुक्त अभ्यर्थियों द्वारा फाइल रिट याचिकाओं में चुनौती नहीं दी गई है । इसलिए, यह प्रश्न कि क्या संशोधन वैध है या नहीं, इसमें विचार के लिए उद्भूत नहीं होता है । सरकार द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से नियमों में संशोधन करने की शक्ति निर्विवाद है जैसा कि **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है ।

22. **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए

विनिश्चय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि पूर्ण न्यायपीठ ने विवाद्यक पर, माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न विनिश्चयों में अधिकथित कतिपय सिद्धांतों के प्रकाश में सविस्तार विचार किया था । वस्तुतः, पूर्ण न्यायपीठ ने इस न्यायालय के दो खंड न्यायपीठों के विनिश्चयों में प्रकट विरोधाभाष को हल किया था अर्थात् **कुंजू कुंजू** बनाम **केरल राज्य**[1] और **स्टालिन** बनाम **केरल राज्य**[2] । प्रथम वाले विनिश्चय में संशोधन भूतलक्षी था । इसमें खंड न्यायपीठ का यह मत था कि सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी के सीमित अधिकार को किसी प्राधिकारी द्वारा विज्ञापन में अधिसूचित निबंधनों और शर्तों में संशोधन करते हुए अथवा भर्ती नियमों में संशोधन करते हुए, समाप्त नहीं किया जा सकता है जब तक कि ऐसे संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाता है । (रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है) **स्टालिन** (उपर्युक्त) वाले बाद के विनिश्चय में संशोधन मात्र भविष्यलक्षी था । इसलिए **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ ने पैरा 5 में यह अभिनिर्धारित किया है कि इन दोनों विनिश्चयों में कोई विरोधाभास नहीं है ।

23. **कुंजू कुंजू** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि माननीय न्यायाधीशों का यह मत था कि अभ्यर्थी, जिसने नियुक्ति के लिए आवेदन किया है उसमें चयनित होने का कोई अधिकार निहित नहीं है । पैराग्राफ 11 में व्यक्त मत निम्नलिखित है :–

> "इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति जो विज्ञापन के अनुसार एक पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करता है वह चयनित होने का कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं करता है । यदि वह पात्र है और पद को शासित करने वाले भर्ती नियमों तथा विज्ञापन में अन्तर्विष्ट निबंधनों और शर्तों के अनुसार अन्यथा भी अर्ह है तो वह उन नियमों के अनुसरण में चयनित होने के लिए विचार करने का अधिकार रखता है जैसा कि वे विज्ञापन की तारीख पर मौजूद हों ।"

24. **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने भी उपर्युक्त सिद्धांत को दोहराया जैसा कि पैरा 20 से स्पष्ट है । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "वह मात्र उद्भूत होने वाले किसी रिक्ति में नियुक्त

---

[1] 2005 (1) के. एल. टी. 364.

[2] 2006 (1) के. एल. टी. 493.

होने के लिए विचारित किए जाने का ही अधिकार रखता है । उक्त प्रतिपादना से सहमति रखते हुए, हमारी यह राय है कि उक्त सिद्धांत उस चयन सूची के समान प्रवर्तन में ही लागू होता है जो वस्तुतः उस समय प्रवर्तन में थी जब संशोधन किए गए थे, इसका अभिप्राय यह है कि ऐसे मामलों में भी जब पश्चात्वर्ती उद्भूत होने वाली रिक्तियों के लिए कोई संशोधन किया जाता है तो ऐसी रिक्तियों को चालू चयन सूची के होते हुए भी संशोधित भर्ती नियमों के अनुसार ही भरा जा सकता है" ।

25. पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उपर्युक्त मताभिव्यक्तियां, श्री पी. नन्दकुमार द्वारा अवलंब लिए गए **मोहम्मद नाजीम** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करने के पश्चात् व्यक्त की गई थीं । इसलिए, यह कहना पर्याप्त है कि सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी का मात्र अधिकार किसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने तक ही है और यह कि इससे उसमें कोई अधिकार निहित नहीं होता है । यह ही के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के संशोधित नियम 3(ख) का प्रभाव है, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं । इसलिए, याचियों के विद्वान् काउंसेल के तर्क पर इस सिद्धांत के प्रकाश में ही विचार किया जाएगा ।

26. अब मैं इस दलील पर विचार करूंगा कि अभ्यर्थी के अधिकार का अवधारण रिक्ति होने की तारीख पर किया जाना चाहिए । वस्तुतः **वेलायूधन** बनाम **सचिव, सरकार**[1] वाले मामले में पूर्ववर्ती न्यायपीठ ने निर्णय के पैरा 8 में इसी प्रकार की दलील को नामंजूर कर दिया था । इसमें, **जेम्स थामस** बनाम **मुख्य न्यायाधीश और अन्य**[2] वाले मामलों में अधिकथित सिद्धांतों को निर्दिष्ट करने के पश्चात्, खंड न्यायपीठ ने प्रोन्नति का दावा करने वाले व्यक्ति के अधिकार और चयन सूची में सम्मिलित नियुक्ति की ईप्सा करने के साथ ही रिक्ति की तारीख पर उद्भूत पद पर नियुक्ति के लिए दावा करने के अधिकार पर विचार किया । पैरा 8 में इसे निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया गया था :–

> "एक रिक्ति जो सेवा में उच्चतर कैडर में उद्भूत होती है, को या तो उसी सेवा में निचले कैडर से प्रोन्नति द्वारा अथवा सीधी भर्ती द्वारा भरा जा सकता है । यह मामले को शासित करने वाले नियमों

---

[1] 1985 के. एल. टी. 793.

[2] 1977 के. एल. टी. 622.

पर निर्भर करता है । यदि यह ऐसी रिक्ति है जिसे निचले कैडर से प्रोन्नति द्वारा भरी जानी है तो इसके लिए पात्रता उस समय के नियमों के अनुसार अवधारित की जाएगी । मात्र वे व्यक्ति जो रिक्ति की तारीख पर पात्र हैं, ही पद के लिए दावा कर सकते हैं । ऐसा कोई व्यक्ति जो रिक्ति होने की तारीख पर उस रिक्ति में प्रोन्नति द्वारा नियुक्त होने का अधिकार नहीं रखता है, यद्यपि वह उस पद के लिए तत्पश्चात् हकदार हो जाता है फिर भी वह उस पद में कोई विधिक अधिकार नहीं रख सकता है कि उसे ही वह पद मिलना चाहिए । सीधी भर्ती के मामले में, अवधारण के लिए सुसंगत तारीख यह होती है कि क्या अभ्यर्थी उस तारीख को अर्ह है या नहीं जो तारीख आवेदन आमंत्रित करते हुए, अधिसूचना में उल्लिखित की जाती है । रिक्ति होने की तारीख किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं होती है जैसा कि उसी सेवा में निचले कैडर से प्रोन्नति के मामले में होती है ।"

27. इसलिए, खंड न्यायपीठ का यह मत था कि रिक्ति होने की तारीख, उसी सेवा में निचले कैडर से प्रोन्नति के मामले में किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं होगी । यह याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्भूत इस दलील का पूर्ण उत्तर है कि सलाह और नियुक्ति के लिए सलाह अभ्यर्थियों के अधिकार पर रिक्ति होने की तारीख पर ही विचार किया जाना चाहिए । आयोग के विद्वान् काउंसेल श्री पी. सी. शशीधरन् ने यह सही ही दलील दी है कि यदि श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी के अधिकार पर रिक्ति की तारीख पर विचार किया जाता है तो इससे कई समस्याएं उद्भूत हो जाएंगी । जहां तक सीधी भर्ती की ईप्सा करते हुए अभ्यर्थी की अर्हता और पात्रता का संबंध है, इस पर आवेदन प्राप्ति की अंतिम तारीख पर विचार करना होगा यदि नियम कोई अन्य अत्यावश्यकता के लिए उपबंध नहीं करता है । यह एक सुस्थिर विधिक प्रतिपादना है । इसके परे, इस पर रिक्ति होने की तारीखों पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि लोक सेवा रिक्तियां विभिन्न तारीखों पर उद्भूत होती हैं और इन रिक्तियों की रिपोर्ट समय-समय पर लोक सेवा आयोग में की जाती है । जहां तक आयोग द्वारा स्वीकृत व्यवहार का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अधिसूचना प्रकाशित होने की तारीख तक रिपोर्ट की गई रिक्तियों पर भी एक ब्लाक वर्ष में सलाह के लिए विचार किया जाता है । इसके पश्चात्, समय-समय पर श्रेणीबद्ध सूची के अस्तित्व में रहने के दौरान भी रिक्तियां उद्भूत हो सकती हैं और इन्हें समय-समय पर पृथक् प्रक्रियाओं द्वारा रिपोर्ट

किया जा सकता है । श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थियों की बारी पर समय-समय पर सलाह अभ्यर्थियों के लिए आयोग द्वारा के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग II के नियम 14 से 17 के निबंधनों में विचार किया जाता है यदि ऐसा है तो यह कहा जा सकता है कि याची के विद्वान् काउंसेल की इस दलील को कि इस पर रिक्ति होने की तारीख पर विचार किया जाना चाहिए, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । श्री पी. नन्द कुमार द्वारा अवलंब लिए गए **उच्च न्यायालय, दिल्ली और एक अन्य** बनाम **ए. के. महाजन और अन्य**[1] तथा संबंधित मामलों में दिए गए विनिश्चय के पैराग्राफ 11 में इस अभिवाक् पर विचार करते हुए कि प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार एक निहित अधिकार है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने दलील का नकारात्मक उत्तर देते हुए पैरा 11 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "...........उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विचार किए जाने का फायदा जो याची सं. 8 को नियमों के भूतलक्षी संशोधन के पूर्व उपलब्ध था वह नियमों के संशोधन के पश्चात् उसे उपलब्ध नहीं रहा । हमारी राय में, यह एक गलत धारणा है । यहां विचार के लिए कोई फायदा नहीं हो सकता । कर्मचारी के अधिकार पर विचार किया जाता है किन्तु मात्र विचार किए जाने का अधिकार स्वयमेव में ही ऐसा फायदा नहीं है जिसे कर्मचारी के चयन या प्रोन्नति के लिए किया जा सके या नहीं किया जा सके और अतएव यह एक अवसर की प्रकृति हो सकती है । हमारी राय में, संशोधन द्वारा प्रभावित होने वाले प्रोन्नति का मात्र अवसर, असंगत है । इस न्यायालय के पास समय है और पुनः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रोन्नति पाना कर्मचारी का कोई अधिकार नहीं होता है, इसलिए, मात्र प्रोन्नति का अवसर किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं हो सकता है और यह नियोजक द्वारा की गई कार्रवाई को अविधिमान्य नहीं कर सकता है ।"

नियम के भूतलक्षी संशोधन का प्रभाव ही इसमें विचारणीय है ।

28. **दीपक अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले के पैरा 26 में विधि को निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2497.

[2] (2011) 6 एस. सी. सी. 725.

गया :–

> "अब, यह विधि की सुस्थिर प्रतिपादना है कि एक अभ्यर्थी को मौजूद नियमों के प्रकाश में विचारित किए जाने का अधिकार है जो विचार किए जाने की तारीख पर 'प्रवर्तित नियम' में विवक्षित होता है । यहां कोई सार्वभौमिक या पूर्ण नियम नहीं हो सकता है जो उन रिक्तियों को उस तारीख पर मौजूद विधि द्वारा एक ही तरह से भरा जा सके जब रिक्तियां उद्भूत हुई हैं । पुराने नियमों के अधीन, पुरानी रिक्तियों को भरे जाने की अपेक्षा प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार अर्जित करने वाले अभ्यर्थी के साथ जुड़ी होती हैं । प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार अभ्यर्थियों की पात्रता पर विचार किए जाने की तारीख पर उद्भूत होता है ....।"

विद्वान् काउंसेल श्री नन्द कुमार द्वारा उपर्युक्त पैराग्राफ का अवलंब यह इंगित करने के लिए लिया गया कि यद्यपि प्रोन्नति के मामले में, साधारणतया लागू सिद्धांतों की भिन्नता की अपेक्षा करते हुए विभिन्न परिस्थितियां उद्भूत हो सकती हैं ।

29. इसलिए, **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा सुस्थिर विधिक प्रतिपादना यह है कि जहां तक श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित व्यक्तियों का संबंध है, उनमें नियुक्ति के लिए कोई अधिकार निहित नहीं होता है । चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् भी सरकार द्वारा भर्ती नियमों में संशोधन किया जा सकता है । यदि संशोधन भूतलक्षी है तो वह श्रेणीबद्ध सूची में सम्मिलित अभ्यर्थियों के अधिकारों को भी प्रभावित कर सकती है ।

30. अब मैं, **मोहम्मद नाजीम** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट करूंगा जिसमें चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के पश्चात् भी सरकार द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से नियमों में संशोधन करने की शक्ति की पर्याप्तता पर विचार किया गया था । सीधी भर्ती द्वारा अमीन के पद के लिए कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई थी । चयन प्रक्रिया आरम्भ करने के पश्चात् एक संशोधन प्रभावी किया गया जिसके द्वारा इसे तारीख 24 फरवरी, 1981 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया । लोक सेवा आयोग द्वारा अधिसूचना तारीख 12 मार्च, 1985 को जारी किया गया था । संशोधन के पश्चात् अमीन, वर्ग-II के परिचालकों में से प्रोन्नति द्वारा नियुक्त किए गए थे । मात्र वे ही अमीन जो उपयुक्त और अर्ह सहायक के

रूप में प्रोन्नति हेतु उपलब्ध नहीं थे उन्हीं की सीधी भर्ती की जा सकती थी ।

31. खंड न्यायपीठ ने दलीलों पर विभिन्न मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांतों के प्रकाश में विस्तारपूर्वक विचार किया । खंड न्यायपीठ का यह मत था कि यदि संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है तो जब तक कि इससे अभ्यर्थी का कोई सांविधानिक अधिकार प्रभावित नहीं होता है तभी संशोधन को इसके आशय और प्रभाव के रूप में प्रभावी किया जा सकता है । पैराग्राफ 12 और 14 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :–

> "12. ....इसलिए, इन दोनों विनिश्चयों में इस सिद्धांत की पुष्टि की जाती है कि यद्यपि एक आवेदक को चयन प्रक्रिया आरम्भ होने के समय पर मौजूद विधि के अनुसार पद पर विचार किए जाने का अधिकार होता है फिर भी, यह अधिकार इस प्रकार अलंघनीय या अतिक्रमणीय नहीं हो सकता है जिसे नियमों के भूतलक्षी प्रभाव द्वारा प्रभावित किया जा सके । ऐसा संशोधन किसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के उसी अधिकार को प्रवर्तित और कम कर सकता है जो एकमात्र आवेदक में अंतर्निहित होता है ....।
>
> 14. ....आवेदकों द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों के प्रभाव और हमारे द्वारा पूर्ववर्ती रूप में की गई चर्चा के बावजूद उनमें की गई भाषा के विस्तार से एकमात्र यह प्रकट होता है कि किसी ऐसे नियम का भूतलक्षी प्रभाव का ऐसा प्रवर्तन नहीं किया जाएगा जिससे कि किसी व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार प्रभावित हो जाता है ....।"

32. जहां तक चयन सूची में सम्मिलित अभ्यर्थी के अधिकार का संशोधन के पश्चात् प्रभावित होने का प्रश्न है, खंड न्यायपीठ ने पैरा 15 और 16 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "लोक सेवा आयोग में अमीन के रूप में चयनित होने के लिए आवेदन करने के द्वारा ही याचियों में चयनित होने का कोई अधिकार अंतर्निहित नहीं हो जाता है । मात्र उनमें यह अधिकार निहित होता है कि वे विज्ञापन की तारीख पर मौजूद नियमों के अनुसरण में चयनित होने के लिए विचारित किए जा सकें, जिसके लिए पुनः वे भूतलक्षी संशोधन द्वारा वंचित किए जा सकते हैं । चयन सूची में सम्मिलित

होने पर भी उनमें मात्र यह अधिकार निहित होता है कि वे ऐसी किसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए विचारित किए जाएं जो उद्भूत हो सकती हैं । अन्य कोई अधिकार मौजूद नहीं होता है । वस्तुतः, केरल राज्य और अधीनस्थ सेवा नियम का नियम 3(ख) यह विनिर्दिष्ट करता है कि किसी सेवा के लिए अनुमोदित अभ्यर्थियों की किसी सूची में अभ्यर्थी का नाम सम्मिलित होने से सेवा में नियुक्ति के लिए उसके किसी दावे को प्रदत्त करना नहीं होता है । चूंकि संशोधन भूतलक्षी था और इससे चूंकि याचियों का कोई सांविधानिक अधिकार प्रभावित नहीं होता है इसलिए, उनकी यह कथन करते हुए सुनवाई नहीं की जा सकती है कि संशोधन की अवहेलना करते हुए, चयन सूची में से अमीन के रूप में उनकी नियुक्ति की जानी चाहिए । याचियों का मात्र अधिकार नियुक्ति के लिए संशोधित नियम के अधीन अपना अवसर लेने का है, यदि कोई उपयुक्त सहायक या अंतिम ग्रेड सेवक उपलब्ध नहीं हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

इस प्रकार के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के नियम 3(ख) का भी अवलंब लिया गया ।

33. इसलिए, जहां तक याचियों का संबंध है उनमें कोई निहित अधिकार नहीं है । रिक्ति होने की तारीख भी सुसंगत मानदंड नहीं है ।

34. इसमें, रिट याचिका (सिविल) सं. 19525/2006 में दिए गए निर्णय के प्रभाव जिसकी पुष्टि डब्ल्यू. ए. सं. 777/2011 में की गई थी, का भी परिशीलन किया जाएगा । रिट याचिका (सिविल) सं. 19525/2006 (**साजिथ बी.** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1]) वाले मामले में, मुझे इसी प्रकार के संशोधन के प्रभाव पर विचार करने का अवसर मिला उस रिक्ति के बारे में, जो तारीख 1 जून, 2006 को उद्भूत हुई थी । **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जहां तक उक्त रिक्ति का संबंध है उसमें यथासंशोधित के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II का नियम 15(क) लागू होगा । **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया । पैरा 23 में भी रिट याचिका (सिविल) सं. 16557/2007 और डब्ल्यू.

[1] आई. एल. आर. 2011 (4) केरल 954.

ए. सं. 843/2008 और रिट याचिका (सिविल) सं. 21028/2006 में इस न्यायालय के विनिश्चयों पर चर्चा की गई । यह निम्नलिखित उद्धृत है :–

"23. अब मैं, इस न्यायालय के कुछ ऐसे ही विनिश्चयों के प्रति निर्दिष्ट करूंगा । रिट याचिका (सिविल) सं. 16557/2007 वाले निर्णय में उक्त प्रश्न पर विचार किया गया और निर्णय के पैरा 4 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"यह सत्य है कि सूची प्रकाशित होने के पश्चात् संशोधित नियम प्रवर्तन में आया था । मेरा विचार है कि नए नियम जिसमें यह कथन है कि यदि विशिष्ट समुदाय से अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है तो अन्य समुदायों के अभ्यर्थी के लिए सलाह नहीं दी जा सकती है, तभी लागू होगा जब कि उक्त नियम के प्रवर्तन में आने के पश्चात् विभिन्न बारी के लिए सलाह दी जाती है । दूसरे शब्दों में, नए नियम मौजूदा सूचियों से अभ्यर्थियों को सलाह देने के लिए ही लागू होंगे । इसके प्रतिकूल दलील अमान्य है ।"

24. रिट याचिका (सिविल) सं. 843/2008 वाले निर्णय में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने पैरा 2 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

"किन्तु, अब यह सुस्थिर है कि रिक्तियां भरे जाने के समय पर लागू विधि को ही विचार में लिया जाएगा और न कि उस विधि को अविभावी किया जाएगा जबकि श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित हुई थी । इस सुस्थिर प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी द्वारा के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के नियम 15 में पुरःस्थापित संशोधन की अवहेलना करने के दावे को मंजूर नहीं किया जा सकता है ।"

इस मुद्दे पर, रिट याचिका (सिविल) सं. 21028/2006 वाले मामले के निर्णय में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पुनः विचार किया गया था । इसके पैरा 7 में रिट याचिका (सिविल) सं. 2420/2007 और रिट याचिका (सिविल) सं. 843/2008 वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णयों का अवलंब लेने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"यह अभिनिर्धारित किया गया है कि रिक्तियां भरे जाने के समय पर अविभावी विधि ही अभ्यर्थियों के सलाह के लिए लागू किए जाएंगे और न कि उस समय पर अविभावी विधि को, जबकि श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित हुई थी । इसलिए, यद्यपि वर्तमान मामले में, श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित हुई थी और तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व इसकी अंतिम तारीख समाप्त हो गई थी, यथासंशोधित नियमों के नियम 15(क) आवश्यक रूप से उन अभ्यर्थियों को सलाह देने के लिए लागू की जाएंगी जो श्रेणीबद्ध सूची की अंतिम तारीख समाप्त होने तक 11 रिक्तियां खाली पड़ी हुई थीं ।"

इसलिए, इन सभी का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि संशोधित नियमों को प्रवर्तित श्रेणीबद्ध सूची को लागू करने के लिए प्रभावी बनाया गया था । इसलिए, के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के नियम 15(क) के संशोधन की लोक सेवा आयोग द्वारा अवहेलना नहीं की जा सकती है और इसलिए, रिक्तियां भरे जाने के समय पर अविभावी विधि ही लागू की जाएगी । पैरा 25 में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के संशोधित नियम 15(क) लागू होगा ।

35. उक्त मुद्दे पर डब्ल्यू. ए. सं. 777/2011 में खंड न्यायपीठ द्वारा सविस्तार विचार किया गया था । खंड न्यायपीठ ने उक्त मत की पुष्टि करते हुए पैरा 12 में निम्नलिखित अधिकथित किया :–

"निस्संदेह, इस सुस्थिर विधिक प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि नियमों की प्रक्रिया को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है यदि एक बार यह आरम्भ हो जाती हैं और जैसा कि अपीलार्थी की ओर से उद्धृत विभिन्न विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया था जिन्हें विद्वान् एकल न्यायाधीश और हमारे समक्ष निर्दिष्ट किया गया है जिसमें के. मंजुश्री **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय तथा रिट याचिका (सिविल) सं. 2282/2009 और संबंधित आशा पी. **बनाम** केरल राज्य [आई. एल. आर. 2009 (4) केरल 543] वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के विनिश्चय सम्मिलित हैं । इसका मुख्यतया आशय एक सामान्य मंच की व्यवस्था करना है जहां पर विभिन्न व्यक्ति आपस में प्रतियोगिता कर सकें और

चयन के लिए अर्हताओं/मानकों में परिवर्तन से संबंधित पक्षकारों के अधिकारों और हितों पर कोई प्रभाव न पड़े ताकि वे अपनी योग्यता को उस सीमा तक साबित कर सकें, जितनी कि अपेक्षित और अधिसूचित है । प्रदर्श पी-5, के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के नियम 14 और 15 में संशोधन के क्षेत्र और प्रयोज्यता के बारे में पूर्णरूपेण भिन्न आधार तैयार हो सके जो उस अनुध्यात बारी के अलावा जिसमें श्रेणीबद्ध सूची से निर्धारण किया जाना है, का अनुसरण आरक्षित/चक्रानुक्रम में हो सके । जैसा कि प्रदर्श पी-5 के 'स्पष्टीकरण टिप्पण' में दिया गया है, नियमों में परिवर्तन सरकार द्वारा न्यायमूर्ति नरेन्द्रन आयोग की रिपोर्ट को प्रभाव में देने के लिए उठाया गया कदम था जिसे आयोग ने पिछड़े वर्ग के पर्याप्त प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने को ध्यान में रखते हुए और उन समुदायों के प्रतिनिधित्व का नुकसान होने से बचाने के लिए भी जिनके लिए, केरल लोक सेवा आयोग/चयन प्राधिकारी द्वारा की गई नियुक्तियों में आरक्षण किया जाता है । यह इस आशय के लिए था कि 'चयन वर्ष' की अवधारणा को उस तारीख की अवधि के लिए प्रभावी बनाने के लिए परिवर्तित किया जाए जिस तारीख से चयन सूची प्रभाव में आती हैं और जब इसकी अंतिम तारीख समाप्त हो जाती है । इस प्रकार, असम्यक् फायदा जो अन्यथा हो सकता था उसे सामान्य अभ्यर्थियों के लिए बना दिया गया था यह अनुध्यात करते हुए कि रिक्तियां खाली रह गई थीं और इसमें विनिर्दिष्ट तरीके से पृथक्तः अधिसूचित की जानी थीं । नियम 15(क) के अधीन जोड़े गए टिप्पण के अनुसार, सभी लम्बित रिक्तियों की अप्रतिकर बारी, जिसकी अस्थायी तौर पर अवहेलना की जा सकती थी, तारीख 2 फरवरी, 2006 तक 'कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं' और 'ड्यूटी नहीं ग्रहण करने' को भरपाई के तौर पर अनुज्ञात किया गया जिसे स्वयं इंगितकर्ता द्वारा किया जा सकता था जिससे कि ईप्सित उद्देश्य प्राप्त किया जा सके । उपबंधों का परिशीलन किया गया न कि इन्हें अलग-थलग किया गया है अपितु सम्पूर्ण उपबंधों का परिशीलन करने से यह सुस्पष्ट होता है कि ईप्सित संशोधन उन परिस्थितियों में उपचार के लिए किए गए थे जो अन्यथा, संबंधित संवर्गों के लिए दिए गए सलाह और नियुक्ति के बारे में समुचित मापदंड को उपलब्ध कराने में इस प्रकार त्रुटि कारित कर सकते थे । इस प्रकार, अपीलार्थी की

ओर से दिए गए इस तर्क में कि संशोधन मात्र आरक्षित संवर्गों से संबंधित है न कि 'सामान्य संवर्ग की बारी' को प्रभावित करने के आशय से किए गए हैं, में कोई सार और तत्व नहीं है ।''

36. लोक सेवा आयोग द्वारा जारी परिपत्र और इसकी वैधता पर विचार पैरा 13 में किया गया था और इसमें भी निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"13. लोक सेवा आयोग द्वारा प्रदर्श पी-13 परिपत्र जारी करने की शक्ति या क्षमता के अभाव के संदर्भ में किए गए निवेदन के बारे में यह उल्लेख किया जाता है कि लोक सेवा आयोग द्वारा कुछ भी नया नहीं कहा गया है न ही संशोधित नियम प्रदर्श पी-5 के प्रतिकूल में कुछ भी जोड़ा या फेरफार या उपांतरित किया गया है । जैसा कि इसमें मेरे समक्ष उल्लिखित किया गया है, वस्तुतः, संशोधन द्वारा 'चयन वर्ष' की अवधारणा में परिवर्तन किया गया है जिसे श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित होने की तारीख से उसकी समाप्ति की तारीख तक बनाया गया है । यह अनुध्यात किया गया है कि इसमें अन्तर्विष्ट अन्य उपबंधों के प्रकाश में संशोधन तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रवर्तन में आएगा, मात्र यह सुझाव देता है कि उक्त तारीख के पूर्व की गई सलाह को अनिश्चित रखने की आवश्यकता नहीं थी, तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि अस्थायी अवहेलना तभी की जा सकती है जबकि कोई अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं है और न ही उन रिक्तियों के विरुद्ध कोई ड्यूटी ग्रहण की है जिनका कि उस तारीख से पूर्व पहले ही परिणाम घोषित किया जा चुका है, जिनकी भरपाई की जानी है । लोक सेवा आयोग प्रदर्श पी-13 परिपत्र के अनुसार चयन वर्ष के आरम्भ को परिवर्तित नहीं कर सकता है, किन्तु, यह उल्लिखित करने के लिए की तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व अंतिम की गई श्रेणी सूचियों के मामले में, चयन वर्ष उस प्रक्रम से जारी रहेगा जिस समय पूर्ववर्ती चयन वर्ष, यदि कोई हो, से असहमति जताते हुए अंतिम सलाह की तारीख को श्रेणीबद्ध सूची रही थी । यह न्यायालय अपीलार्थी द्वारा विवादित इस प्रतिपादना को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता है क्योंकि इसे प्रदर्श पी-13 परिपत्र के विरुद्ध अथवा प्रदर्श पी-5 संशोधन के संबंध में चुनौती दी गई है जिसे प्रभावी नहीं बनाया गया है अथवा सफलतापूर्वक लाया नहीं गया है ।''

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

37. इसलिए, खंड न्यायपीठ का यह मत है कि चयन वर्ष की अवधारणा, जिसे पुरःस्थापित किया गया है, से अब यह दर्शित होता है कि यह श्रेणीबद्ध सूची के प्रवर्तन में आने की तारीख से इसकी समाप्ति की तारीख तक होगी । यदि ऐसा है तो, संशोधन जिसे तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी बनाया गया है, तब लागू होगा जब एन. सी. ए. रिक्तियों को पुनः अधिसूचित किया जाए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिपत्र, संशोधित नियमों के प्रतिकूल कुछ भी जोड़ता या फेरफार या उपांतरित नहीं करता है । परिपत्र, मात्र यह अनुध्यात करता है कि चयन वर्ष उस प्रक्रम से जारी रहेगा जिस समय तक चयन सूची जारी रही जो कि अंतिम सलाह की तारीख थी ।

38. खंड न्यायपीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रभावी तारीख अर्थात् तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व की गई सलाह निर्विध्न रहेगी, जो इन मामलों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है ।

39. श्री एन. सुगाथन ने यह तर्क दिया कि जहां तक श्रेणीबद्ध सूची के लिए चयन वर्ष का इसमें संबंध है उसकी तारीख 2 फरवरी, 2006 से ही गणना की जाएगी ।

40. के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के असंशोधित नियम 15 से भी यह स्पष्ट होता है कि आरक्षण के नियमों को स्वीकार करने के लिए पैमाना एक वर्ष के लिए था । यह एक वर्ष में भर्ती के लिए 50 प्रतिशत नियम की सीमा में आवेदन के लिए था । नियम 15(ग) (असंशोधित) के परन्तुक में यह उपबंध था कि किसी पद में एक संवर्ग के लिए एक वर्ष में आरक्षण जिसमें अग्रनयन रिक्तियां सम्मिलित हैं, कुल रिक्तियों की संख्या का 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी जिस वर्ग की सीधी भर्ती द्वारा चयन के लिए उस वर्ष में प्रत्यावर्तित किया गया है । इसमें हम यह पाते हैं कि स्पष्टीकरण द्वारा नियम के प्रयोजन के लिए एक चयन वर्ष उस तारीख की अवधि के बीच होगी जिस तारीख को अभ्यर्थियों की श्रेणीबद्ध सूची प्रवर्तन में आने के पश्चात् जिस तारीख को समाप्त होती है । इसलिए, जहां तक इसमें की श्रेणी सूचियों का संबंध है, यद्यपि, उन्हें स्पष्टीकरण की पुरःस्थापना के प्रकाश में तारीख 2 फरवरी, 2006 के पूर्व प्रकाशित कर दी गई थी और श्रेणीबद्ध सूची की अवधि सामान्यतः तीन वर्षों के पश्चात् ही समाप्त होती थी । इसलिए, समुदायों के लिए बारी के. एस. एण्ड एस. एस. आर. के भाग-II के असंशोधित नियम 15 के प्रकाश में आवश्यक रूप से निर्धारित की जाएगी । यदि ऐसा है तो अस्थायी तौर

पर की गई अवहेलना को तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है ।

41. याचियों का दावा यह है कि उन्हें तारीख 8 मार्च, 2006 के पूर्व सलाह किया गया था जिस तारीख को प्रदर्श पी-5 प्रकाशित हुआ था । किन्तु, सुस्पष्टतः संशोधन तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ । यदि ऐसा था तो एम. सी. ए. रिक्तियां पुनः अधिसूचित की जाएंगी और उनकी बारी की कोई अस्थायी अवहेलना नहीं की जा सकती है । जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है, रिक्ति होने की तारीख के बारे में कोई मानदंड नहीं हो सकता है । याचियों में कोई सलाह पाने और किसी विनिर्दिष्ट रिक्ति में नियुक्ति पाने का निहित अधिकार नहीं है, जैसा कि **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा अधिकथित किया गया है और अन्य विनिश्चयों में मेरे द्वारा भी पहले ही चर्चा की जा चुकी है ।

42. उपर्युक्त प्रतिपादना, **शंकरसन दास** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय से भी स्पष्ट होता है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "यह कहना सही नहीं है कि यदि कई रिक्तियां नियुक्ति के लिए अधिसूचित की गई हैं और पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी ठीक नहीं पाए जाते हैं तो सफल अभ्यर्थी मौजूदा रिक्तियों के विरुद्ध नियुक्त होने के लिए कोई अलोप्य अधिकार अर्जित कर लेते हैं । सामान्यतया, अधिसूचना भर्ती के लिए आवेदन करने हेतु अर्ह अभ्यर्थियों को एक आमंत्रण मात्र होता है और उनका चयन होने पर वे उस पद में कोई अधिकार अर्जित नहीं कर लेते हैं ।"

इसका अनुसरण, **चंड़ीगढ़ संघीय राज्य क्षेत्र** बनाम **दिलबाग सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में भी किया गया । निर्णय के पैरा 12 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> " . . . . . . एक अभ्यर्थी, जो सिविल पद पर नियुक्ति के लिए चयनित अभ्यर्थी के रूप में चयन सूची में स्थान पाता है, वह ऐसी नियुक्ति के लिए उसे हकदार बनाने वाले किसी विनिर्दिष्ट नियम के अभाव में ऐसे पद पर नियुक्त होने के लिए कोई अलोप्य अधिकार

---

[1] (1991) 3 एस. सी. सी. 47.

[2] (1993) 1 एस. सी. सी. 154.

अर्जित नहीं करता है . . . . . . ।''

उपर्युक्त विधिक प्रतिपादना को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में भी दोहराया गया है । मैं, **ईस्ट कोस्ट रेलवे और अन्य** बनाम **महादेव अप्पाराव और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए एक नवीनतम विनिश्चय के प्रति निर्देश कर सकता हूं जिसके पैरा 13 में उपर्युक्त निर्दिष्ट माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> ''उपर्युक्त से यह सुस्पष्ट होता है कि जबकि कोई अभ्यर्थी मात्र परीक्षा में उपस्थित होने अथवा चयन सूची में अपना नाम पाए जाने के कारण से ही कोई अलोप्य अधिकार अर्जित नहीं करता है फिर भी राज्य को मनमाने ढंग से या अभ्यर्थियों की मैरिट सूची, जिसे चयन प्रक्रिया के अंत में तैयार की जाती है, की अवहेलना करते हुए नियुक्त करने से इनकार करने का अनर्हित परमाधिकार नहीं प्राप्त हो जाता है . . . .।''

यह मात्र मापदंड है जहां तक कि उक्त सिद्धांत का संबंध है ।

43. याची के विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुगाथन ने यह निवेदन किया कि रिट याचिका (सिविल) सं. 843/2008 के निर्णय में भी यद्यपि रिक्तियां भरने के समय पर लागू विधि के सिद्धांत को विचार में लिया गया था न कि श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित होने के समय पर अविभावी विधि को विचार में लिया गया था, खंड न्यायपीठ का विनिश्चय भी सही तौर पर अधिकथित सुसंगत विधिक सिद्धांतों में नहीं है । किन्तु, श्री पी. नन्द कुमार द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों तथा **मोहनन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के निर्णयों के प्रकाश में, जिन पर मेरे द्वारा पहले ही चर्चा की जा चुकी है, यह प्रतीत होता है कि भूतलक्षी संशोधन द्वारा पक्षकारों के अधिकार कम किए जा सकते हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **दीपक अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में, जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि एक अभ्यर्थी को मौजूदा नियमों के प्रकाश में विचार किए जाने का अधिकार होता है जो विचार किए जाने की तारीख पर 'प्रवर्तित नियम' में विवक्षित होता है और ऐसा

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 678.

[2] (2011) 6 एस. सी. सी. 725.

कोई सारभौमिक या सम्पूर्ण रूप से लागू नियम नहीं है कि उक्त रिक्तियां उस तारीख को मौजूद विधि द्वारा एक ही तरह से भरी जाएंगी जब रिक्तियां उद्भूत हुई थीं । उपर्युक्त मत से यह भी दर्शित होता है कि यह दलील कि रिट याचिका (सिविल) सं. 843/2008 में विनिश्चय सही तौर पर नहीं किया गया है, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

44. इसलिए, याची तारीख 2 फरवरी, 2006 के पश्चात् दी गई सलाह का अवलंब नहीं ले सकते हैं, सुस्पष्टतः जिन्हें अस्थायी तौर पर बारी की अवहेलना करते हुए की गई है । इसलिए, आयोग द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस सुनिश्चित तौर पर न्यायानुमत है ।

45. रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007 में आयोग द्वारा फाइल प्रति-शपथपत्र और इसमें फाइल अतिरिक्त शपथपत्र में यह स्पष्टीकृत किया गया है कि जब एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. की बारी आई तब सूची में कोई ओ. एक्स. अभ्यर्थी नहीं था और इसलिए उक्त बारी में श्री मोहन राज पी. एम. के लिए सलाह दी गई जो धीवारा के लिए अनुपूरक सूची में श्रेणी संख्या 1 पर था और एम. आर. आई. 50 डी. की बारी भी अगले अभ्यर्थी अर्थात् श्रीमती सुगान्धी आर. वी., जो तारीख 17 फरवरी, 2006 को उसी सूची में श्रेणी संख्या 2 पर थी, के लिए सलाह देते हुए भरी गई थी । चक्रानुक्रम इस प्रकार था :–

एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. एन. सी. ए. डी. – मोहन राज पी. एम., श्रेणी सं. 1 (अनुपूरक सूची-धीवारा)

एम. आर. आई. 50 डी. – सुगान्धी आर. वी., श्रेणी सं. 2 (अनुपूरक सूची)

संशोधन जो तारीख 2 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुआ था, के प्रकाश में, तारीख 17 फरवरी, 2006 को चक्रानुक्रम पुनरीक्षित हुआ था और एम. आर. आई. 48 ओ. एक्स. की बारी एन. सी. ए. चयन के लिए अधिसूचित हुआ था और अभ्यर्थी श्री मोहन राज पी. एम. (श्रेणी सं. 1) के लिए एम. आर. आई. 50 डी. बारी में सलाह दी गई थी । इसलिए, याची श्रीमती सुगान्धी आर. वी. की सलाह को रद्द कर दिया गया था । यह भी उल्लेख है कि श्रेणीबद्ध सूची का विस्तार तारीख 13 जनवरी, 2009 की एक युक्ति का अधिसूचना द्वारा किया गया था और याची के नाम को मुख्य सूची में श्रेणी सं. 110 के रूप में सम्मिलित किया गया था । मूल श्रेणीबद्ध सूची तारीख 18 अक्तूबर, 2006 समाप्त कर दी गई थी किन्तु अभ्यर्थियों की

तारीख 9 नवम्बर, 2005 की श्रेणीबद्ध सूची की वैधता अवधि के भीतर रिपोर्टिंग सभी रिक्तियों के विरुद्ध सलाह दी गई थी । अंतिम सलाह की तारीख 25 जून, 2009 थी और उस तारीख को मौजूद चक्रानुक्रम एम. आर. आई. 5 ओ. सी. भी था । यह भी उल्लिखित किया जाता है कि धीवारा समुदाय से संबंधित एक अन्य अभ्यर्थी को भी उपांतरित श्रेणीबद्ध सूची में श्रेणी संख्या 75 के रूप में रखा गया है । अंतिमतः यह कथित है कि धीवारा समुदाय की बारी उद्भूत नहीं हुई है और आयोग ने तारीख 29 अक्तूबर, 2006 से प्रभावी पद के लिए एक नई श्रेणीबद्ध सूची प्रकाशित की है और उक्त सूची से अभ्यर्थियों के लिए सलाह दी जानी है ।

46. रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में लोक सेवा आयोग द्वारा तारीख 21 दिसम्बर, 2010 को फाइल शपथपत्र के पैरा 3 में यह कथित है कि पद के लिए श्रेणीबद्ध सूची का, रिट याचिका (सिविल) सं. 21300/2005 में तारीख 13 जुलाई, 2006 के निर्णय के अनुसार विस्तार किया गया था और पुनः सलाह के लिए याची की बारी उद्भूत हुई थी किन्तु सलाह को मामले में पारित अंतरिम आदेश को ध्यान में रखते हुए अवमुक्त नहीं किया गया था । इसलिए, रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में याची पुनः सलाह के लिए हकदार होगा ।

47. विधिक प्रतिपादना, जैसा कि पहले ही स्पष्टीकृत किया जा चुका है, के प्रकाश में आयोग द्वारा सलाह ज्ञापन रद्द करने के लिए जारी कारण बताओ नोटिस सुनिश्चित तौर पर न्यायानुमत है । आयोग शीघ्रतापूर्वक रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 में याची को सम्मिलित करते हुए, पुनः सलाह जारी करने के लिए स्वतंत्र है । रिट याचिकाएं, रिट याचिका (सिविल) सं. 1125/2007 और रिट याचिका (सिविल) सं. 2243/2007, उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन खारिज की जाती हैं और रिट याचिका (सिविल) सं. 11329/2011 मंजूर की जाती है और लोक सेवा आयोग को यह निर्देश दिया जाता है कि वह एन. सी. ए. रिक्तियों में पात्र अभ्यर्थी के लिए सलाह जारी करे । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

तद्नुसार, रिट याचिकाएं निपटाई गईं ।

क.

अब्दूल रहीम राथर

बनाम

इंडियन आयल कारपोरेशन और अन्य

तारीख 9 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति मन्सूर अहमद मीर

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – अनुच्छेद 103 [सपठित किसान सेवा केन्द्र स्कीम] – सरकार द्वारा किसान सेवा केन्द्र खुदरा आउटलेट आबंटित करने के लिए विज्ञापन जारी करना – याची द्वारा करार पूरा हुए बिना आउटलेट खोलने के लिए खर्च किया जाना – स्थान नियमों के अनुसार न होने के कारण करार पूरा किए जाने से इनकार – रिट याचिका – जहां किसी कार्य द्वारा व्यक्ति के मूल अधिकार का अतिक्रमण न हुआ हो वहां न्यायालय रिट याचिका में निदेश जारी नहीं कर सकता ।

तारीख 6 अक्तूबर, 2005 को एक विज्ञापन सूचना हंगुलगुंड, जिला अनंतनाग में किसान सेवा केन्द्र स्कीम के अधीन खुदरा आउटलेट डीलरशिप आबंटित करने के लिए जारी की गई थी । उसके लिए याची ने आवेदन किया था । याची को चयन समिति के समक्ष साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और आउटलेट आबंटित करने के लिए उसके पक्ष में तारीख 23 जनवरी, 2006 का इस आशय का पत्र जारी किया गया था । तत्पश्चात्, याची से संबंधित विभागों से अनापत्ति प्रमाणपत्र फाइल करने के लिए कहा गया था जिसे उसने प्राप्त करके जमा किया था । तत्पश्चात, याची ने भूमि को क्रय करने, इसका विकास करने, निर्माण करने, और बाड़ आदि लगाने के लिए 25 लाख रुपए खर्च किया; किन्तु कुछ समय बाद वर्तमान प्रत्यर्थियों ने तारीख 2 जून, 2009 को एक सूचना भेजी जिसके द्वारा याची की सुनवाई किए बिना उक्त आशय पत्र को रद्द कर दिया गया । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थियों ने याची द्वारा वर्तमान याचिका फाइल करने के लिए अधिकार को चुनौती देते हुए यह प्रकथन किया है कि संविदा पूरा नहीं हुई थी । आशय पत्र को डीलरशिप का 'निश्चित आफर' नहीं माना जा सकता और डीलरशिप की नियुक्ति पत्र द्वारा पुष्टि की जानी थी और

उसके पश्चात् डीलरशिप का करार हस्ताक्षरित किया जाना था । याची के पास प्रत्यर्थियों के विरुद्ध रिट याचिका फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि मामले में तथ्य पर जो विवादित प्रश्न अंतर्वलित है, रिट याचिका में विचार नहीं किया जा सकता । याची के विद्वान् काउंसेल श्री जावेद इकबाल ने यह स्वीकार किया है कि किसान सेवा केन्द्र खुदरा आउटलेट राष्ट्रीय राजमार्ग पर नहीं खोला जा सकता और यह अनुरोध किया है कि प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे आक्षेपित अधिसूचना को वापस लें और याची को खुदरा आउटलेट स्थापित करने के लिए अनुज्ञात करें । ऊपर उल्लिखित चर्चाओं को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि पक्षकारों के बीच कोई करार नहीं हुआ है और किसान सेवा केन्द्र स्कीम का खुदरा आउटलेट राजमार्ग या राज्य सड़क पर स्थापित नहीं किया जा सकता । याची ने कार्य करने के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए दावा करने का कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है । यदि याची को किसी प्रकार से नुकसान हुआ है तो वह उसके लिए प्रतिकर प्राप्त करने के लिए और उचित उपचार प्राप्त करने के लिए दावा कर सकता है । (पैरा 2, 5 और 6)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2009 की मूल रिट याचिका सं. 953.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 के अनुच्छेद 103 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री जावेद इकबाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनिल भान

न्यायमूर्ति मन्सूर अहमद मीर – तारीख 6 अक्तूबर, 2005 को एक विज्ञापन सूचना हंगुलगुंड, जिला अनंतनाग में किसान सेवा केन्द्र स्कीम के अधीन खुदरा आउटलेट डीलरशिप आबंटित करने के लिए जारी की गई थी । उसके लिए याची ने आवेदन किया था । याची को चयन समिति के समक्ष साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और आउटलेट आबंटित करने के लिए उसके पक्ष में तारीख 23 जनवरी, 2006 का इस आशय का पत्र जारी किया गया था । तत्पश्चात्, याची से संबंधित विभागों से अनापत्ति प्रमाणपत्र फाइल करने के लिए कहा गया था जिसे उसने प्राप्त करके जमा किया था । तत्पश्चात्, याची ने भूमि को क्रय करने, इसका विकास करने, निर्माण करने, और बाड़ आदि लगाने के लिए 25 लाख रुपए खर्च किया;

किन्तु कुछ समय बाद वर्तमान प्रत्यर्थियों ने तारीख 2 जून, 2009 को एक सूचना भेजी जिसके द्वारा याची की सुनवाई किए बिना उक्त आशय पत्र को रद्द कर दिया गया ।

2. प्रत्यर्थियों ने प्रत्युत्तर फाइल किया और उसी आधार पर विरोध किया कि याची के किसी मूल अधिकार का कोई अतिलंघन नहीं हुआ है क्योंकि आक्षेपित संसूचना जारी करने से पूर्व उसको सुनवाई का अवसर दिया जाना अपेक्षित नहीं है । रद्दकरण का आधार यह था कि किसान सेवा केन्द्र स्कीम ऐसे स्थान पर स्थापित नहीं की जा सकती जो राष्ट्रीय राजमार्ग के निकट हो और विवादित स्थान राष्ट्रीय राजमार्ग 1-बी के अंतर्गत आता था । यह भी प्रकथन किया गया है जो जगह किसान खुदरा आउटलेट स्थापित करने के लिए चुनी गई वह अपेक्षित नियमों और विनियमों का अतिक्रमण करती है, और इसलिए यह सही नहीं था । प्रत्यर्थियों ने याची द्वारा वर्तमान याचिका फाइल करने के लिए अधिकार को चुनौती देते हुए यह प्रकथन किया है कि संविदा पूरा नहीं हुई थी । आशय पत्र को डीलरशिप का 'निश्चित आफर' नहीं माना जा सकता और डीलरशिप की नियुक्ति पत्र द्वारा पुष्टि की जानी थी और उसके पश्चात् डीलरशिप का करार हस्ताक्षरित किया जाना था । याची के पास प्रत्यर्थियों के विरुद्ध रिट याचिका फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है ।

3. पक्षकारों के काउंसेलों को सुना गया ।

4. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सर्वसम्मति से रिट याचिका को ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही अंतिम निपटान के लिए स्वीकार किया जाता है ।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि मामले में तथ्य पर जो विवादित प्रश्न अंतर्वलित है, रिट याचिका में विचार नहीं किया जा सकता । याची के विद्वान् काउंसेल श्री जावेद इकबाल ने यह स्वीकार किया है कि किसान सेवा केन्द्र खुदरा आउटलेट राष्ट्रीय राजमार्ग पर नहीं खोला जा सकता और यह अनुरोध किया है कि प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे आक्षेपित अधिसूचना को वापस लें और याची को खुदरा आउटलेट स्थापित करने के लिए अनुज्ञात करें ।

6. ऊपर उल्लिखित चर्चाओं को दृष्टिगत करते हुए, मेरा यह मत है कि पक्षकारों के बीच कोई करार नहीं हुआ है और किसान सेवा केन्द्र स्कीम का खुदरा आउटलेट राजमार्ग या राज्य सड़क पर स्थापित नहीं

किया जा सकता । याची ने कार्य करने के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए दावा करने का कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है । यदि याची को किसी प्रकार से नुकसान हुआ है तो वह उसके लिए प्रतिकर प्राप्त करने के लिए और उचित उपचार प्राप्त करने के लिए दावा कर सकता है ।

7. उपरोक्त पृष्ठभूमि में रिट याचिका में कोई बल नहीं है, अतः यह खारिज की जाती है । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि रिट याचिका की खारिजी याची को समुचित उपचार का अनुरोध करने के लिए वर्जित नहीं करेगी ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

(2013) 2 सि. नि. प. 307 **राजस्थान**

राजू लाल

बनाम

श्रीमती श्यामोबाई और अन्य

तथा

श्रीमती श्यामोबाई और अन्य

बनाम

राजू लाल

तारीख 18 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – यान स्वामी द्वारा घटना होने से इनकार – अधिकरण द्वारा 4,60,000/- रुपए के प्रतिकर के लिए अधिनिर्णय – प्रतिकर बढ़ाने के लिए अपील – जहां निचले न्यायालय ने मामले के तथ्यों और सुसंगत विधि पर विचार करने के पश्चात् अधिनिर्णय पारित किया हो वहां अपील न्यायालय द्वारा निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर चार विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, हिण्डौन सिटी ने अपने निर्णय तारीख 18 नवम्बर, 2004 के क्लेमेन्ट्स को 4,60,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी वाहन चालक व मालिक की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2509/2004 एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 407/2005 इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपील संख्या 2509/2004 पर बहस करते हुए अपीलार्थी वाहन चालक व मालिक राजू लाल के विद्वान् अधिवक्ता श्री संदीप माथुर का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया । उनका तर्क है कि पत्रावली पर इस बात का पर्याप्त साक्ष्य मौजूद है कि मृतक राजेन्द्र सिंह की साइकिल को टक्कर किसी अज्ञात मारूति कार ने मारी थी, उनके ट्रेक्टर से दुर्घटना नहीं हुई है । किन्तु साक्ष्य पर कोई गौर नहीं कर विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित किया है, जो अपास्त किए जाने योग्य है । जबकि अपील संख्या 407/2005 पर बहस करते हुए क्लेमेन्ट्स की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री सुनील जैन का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने क्लेमेन्ट्स को समस्त मदों में अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका तर्क है कि मृतक की आय 5,000/- रुपए प्रति माह थी किन्तु विद्वान् अधिकरण ने मृतक की आय केवल मात्र 3,000/- रुपए मासिक मानते हुए क्षतिपूर्ति राशि का निर्धारण किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । अतः क्लेमेन्ट्स को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाई जाए । मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । (पैरा 4, 5 और 6)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की एकलपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील संख्या 2509 और 2005 की अपील संख्या 407.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से श्री संदीप माथुर

दावेदारों की ओर से श्री सुनील जैन

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी चालक व मालिक वाहन राजू लाल की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2509/2004 एवं क्लेमेन्ट्स श्रीमती श्यामोबाई व अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 407/2005 मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, हिण्डौन सिटी द्वारा पारित निर्णय तारीख 18 नवम्बर, 2004 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा क्लेमेन्ट्स को 4,46,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया । चूंकि उपरोक्त वर्णित दोनों अपीलों के अन्तर्गत अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

2. प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि क्लेमेन्ट्स ने मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, हिण्डौन सिटी के समक्ष क्लेम याचिका इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत की कि तारीख 16 अक्तूबर, 2002 को सुबह लगभग 11 बजे की बात है, राजेन्द्र सिंह साइकिल से ग्राम पटोदा से महावीर जी अपनी बाईं साइड में सड़क से नीचे पटरी पर होकर जा रहा था, जैसे ही वह किशन मीना के खेत के पास पहुंचा तो विपक्षी राजू लाल अपने मैसी ट्रेक्टर मय ट्रोली तेजी, लापरवाही व गफलत से चलाता हुआ लाया और गलत साइड में आकर अपनी साइड में चल रहे राजेन्द्र सिंह को टक्कर मार दी, जिससे राजेन्द्र सिंह के चोटें आईं, इलाज हेतु जीप से जयपुर ले जा रहे थे तो उसकी दौसा के पास मृत्यु हो गई ।

3. क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिका के नोटिस याचिका के विपक्षी राजू लाल को जारी किए गए । विपक्षी की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए अपने ट्रेक्टर से कोई दुर्घटना कारित नहीं होना बताते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर चार विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, हिण्डौन सिटी ने अपने निर्णय तारीख 18 नवम्बर, 2004 के क्लेमेन्ट्स को 4,60,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी वाहन चालक व मालिक की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2509/2004 एवं क्लेमेन्ट्स

की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 407/2005 इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है ।

4. अपील संख्या 2509/2004 पर बहस करते हुए अपीलार्थी वाहन चालक व मालिक राजू लाल के विद्वान् अधिवक्ता श्री संदीप माथुर का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया । उनका तर्क है कि पत्रावली पर इस बात का पर्याप्त साक्ष्य मौजूद है कि मृतक राजेन्द्र सिंह की साइकिल को टक्कर किसी अज्ञात मारूति कार ने मारी थी, उनके ट्रेक्टर से दुर्घटना नहीं हुई है । किन्तु साक्ष्य पर कोई गौर नहीं कर विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित किया है, जो अपास्त किए जाने योग्य है ।

5. जबकि अपील संख्या 407/2005 पर बहस करते हुए क्लेमेन्ट्स की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री सुनील जैन का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने क्लेमेन्ट्स को समस्त मदों में अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका तर्क है कि मृतक की आय 5000/- रुपए प्रति माह थी किन्तु विद्वान् अधिकरण ने मृतक की आय केवल मात्र 3000/-रुपए मासिक मानते हुए क्षतिपूर्ति राशि का निर्धारण किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । अतः क्लेमेन्ट्स को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाई जाए ।

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

7. अतः अपीलार्थी चालक व मालिक वाहन राजू लाल की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2509/2004 एवं क्लेमेन्ट्स श्रीमती श्यामोबाई व अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 407/2005 निरस्त की जाती है । मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, हिण्डौन सिटी द्वारा पारित निर्णय दिनांक 18 नवम्बर, 2004 की पुष्टि की जाती है ।

अपीलें खारिज की गई ।

मही./मह.

ओरियन्टल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

बनाम

शर्मिला और अन्य

तारीख 19 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होने की दलील – विचारण न्यायालय द्वारा 4,72,000/- रुपए प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना – जहां निचले न्यायालय का अधिनिर्णय विधि की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए दिया गया है वहां अपील न्यायालय द्वारा ऐसे अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन मोटर दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, नीम का थाना, जिला सीकर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 1 फरवरी, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा क्लेमेन्ट्स को 4,72,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया । अपील और क्रास ओब्जेक्शन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि दुर्घटना के समय वाहन चालक के पास वाहन चलाने हेतु वैध एवं प्रभावी लाइसेन्स नहीं था । उनका कथन है कि ट्रेक्टर लीला राम का बताया गया है और बाद में मिलीभगत कर दूसरे ट्रेक्टर को लिप्त बताया गया है । उनका कथन है कि दुर्घटना के समय मृतक स्वयं ट्रेक्टर को उपेक्षा एवं उतावलेपन से चला रहा था और स्वयं की लापरवाही से ट्रेक्टर से गिर जाने से उसकी मृत्यु हुई है और बाद में मिलीभगत कर झूठा आरोपपत्र पेश करवाया गया है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । जबकि आपत्तिकर्तागण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान्

अधिकरण ने समस्त मदों में अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेन्ट्स को दिलाई है । उनका तर्क है कि मृतक 28 वर्ष का स्वस्थ युवक था । वह कृषि कार्य एवं दूध विक्रय का कार्य करता था, जिससे उसकी मासिक आय 10,000/- रुपए थी । इस संबंध में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य पर गौर नहीं कर उसकी मासिक आय केवल मात्र 3,000/- रुपए अनुमान की गई है, जो विधिसम्मत नहीं है । अतः क्लेमेन्ट्स को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाई जाए । प्रत्यर्थी संख्या 10 के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया, जिससे निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है । मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । (पैरा 4, 5, 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एकलपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1781 और प्रति आक्षेप सं. 49.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजपाल चौधरी

दावेदारों की ओर से श्री हर्ष सैनी

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन मोटर दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, नीम का थाना, जिला सीकर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 1 फरवरी, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा क्लेमेन्ट्स को 4,72,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया । चूंकि उपरोक्त वर्णित अपील एवं क्रास आब्जेक्शन के माध्यम से अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

2. प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि क्लेमेन्ट्स श्रीमती शर्मिला व अन्य ने मोटर यान दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, नीम का थाना के समक्ष बहादुर **उर्फ** लालचन्द की मृत्यु वाहन दुर्घटना में होने से प्रतिकर राशि प्राप्त करने हेतु याचिका इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत की कि दिनांक 9 जून, 2008 को रात्रि 8 बजे मृतक बहादुर **उर्फ** लालचन्द ट्रेक्टर संख्या आर.जे. 23-आर-2727 से खेत में बजाई करा रहा था तो ट्रेक्टर चालक गोपाल ने ट्रेक्टर को तेजी व लापरवाही से घुमाकर साइड में मेंड पर खड़े बहादुर **उर्फ** लालचन्द के टक्कर मारी, जिससे बहादुर **उर्फ** लालचन्द की मौके पर ही मृत्यु हो गई । दुर्घटना के समय मृतक बहादुर **उर्फ** लालचन्द 28 वर्ष का स्वस्थ व्यक्ति होते हुए दूध विक्रय एवं कृषि कार्य करते हुए 10,000/- रुपए मासिक आय अर्जित करता था । मृतक के वारिसान क्लेमेन्ट्स ने 50,30,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने की प्रार्थना की ।

3. क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिका के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर चार विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, नीम का थाना ने अपने निर्णय दिनांक 1 फरवरी, 2011 के क्लेमेन्ट्स को 4,72,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी बीमा कम्पनी की ओर से यह सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं ।

4. अपीलार्थी-बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि दुर्घटना के समय वाहन चालक के पास वाहन चलाने हेतु वैध एवं प्रभावी लाइसेन्स नहीं था । उनका कथन है कि ट्रेक्टर लीला राम का बताया गया है और बाद में मिलीभगत कर दूसरे ट्रेक्टर को लिप्त बताया गया है । उनका कथन है कि दुर्घटना के समय मृतक स्वयं ट्रेक्टर को उपेक्षा एवं उतावलेपन से चला रहा था और स्वयं की लापरवाही से ट्रेक्टर से गिर जाने से उसकी मृत्यु हुई है और बाद में मिलीभगत कर झूठा आरोपपत्र पेश करवाया गया है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है ।

5. जबकि आपत्तिकर्तागण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने समस्त मदों में अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेन्ट्स को दिलाई है । उनका तर्क है कि मृतक 28 वर्ष का स्वस्थ युवक था । वह कृषि कार्य एवं दूध विक्रय का कार्य करता था, जिससे उसकी मासिक आय 10,000/- रुपए थी । इस संबंध में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य पर गौर नहीं कर उसकी मासिक आय केवल मात्र 3,000/- रुपए अनुमान की गई है, जो विधिसम्मत नहीं है । अतः क्लेमेन्ट्स को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाई जाए ।

6. प्रत्यर्थी संख्या 10 के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया, जिससे निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।

7. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

8. अतः अपीलार्थी-बीमा कम्पनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन निरस्त किए जाते हैं । मोटर वाहन दुर्घटना वाद न्यायाधिकरण, नीम का थाना, जिला सीकर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 1 फरवरी, 2011 की पुष्टि की जाती है । अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है ।

अपील और क्रास ओब्जेक्शन खारिज किया गया ।

मही./मह.

राधा और एक अन्य

बनाम

जमुना देवी

तारीख 19 अगस्त, 2011

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 और आदेश 41, नियम 2 – सम्पत्ति पर उत्तराधिकारी के रूप में दावा – उत्तराधिकारी होने के संबंध में सम्यक् साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाना – न्यायालय द्वारा पेंशन कागजपत्रों में नामांकन के आधार पर उत्तराधिकारी माना जाना – मात्र पेंशन कागजपत्रों में नामांकन से उत्तराधिकार साबित नहीं हो जाता – उत्तराधिकार को साबित करने के लिए उत्तराधिकार से संबंधित तात्विक साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 62-एस./13 में तारीख 5 अक्तूबर, 1998 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी द्वारा दिए गए अतिमहत्वपूर्ण साक्ष्य की प्रथम अपील न्यायालय ने उपेक्षा की है । यह विवादित नहीं है कि चन्दू देवी का दौलत राम से विवाह हुआ था । दौलत राम की वह संपत्ति जो दूसरे गांव में स्थित थी, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/बी और नामांतरण प्रदर्श पी. आर. 1 के साक्ष्य के अनुसार वादी ने उत्तराधिकार में प्राप्त की थी । यह जमुना देवी द्वारा दौलत राम के अन्य बच्चों के साथ समान अंशों में उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी अर्थात् शजरा नसब में प्रतिवादी सं. 1 को दौलत राम की पुत्री के रूप में दर्शाया गया है । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/डी शजरा नसब की प्रतिलिपि के अनुसार अमर चन्द अपनी मृत्यु के समय निःसंतान था और उसके भाई त्रिलोक चन्द की दो पुत्रियां थीं । अपीलार्थियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था जिसके द्वारा राजस्व अभिलेख को

अभिलेख में प्रस्तुत करने का निवेदन किया गया था । वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज अपीलार्थी-वादी के इस अभिवाक् को साबित करते हैं कि जमुना देवी अमर चन्द की पुत्री नहीं थी । ये दस्तावेज वादी द्वारा किए गए दावे का आधार प्रदत्त करते हैं । न्यायालय का यह निश्चित मत है कि ये दस्तावेज मामले का निर्णय करने के लिए आवश्यक हैं । तद्नुसार, आवेदन स्वीकार किया जाता है । प्रतिवादी ने यह उपदर्शित करने का प्रयास किया है कि अमर चन्द और चन्दू के बीच विवाद होने के पश्चात् मामला राना कोटी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तथापि, प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर साक्षियों द्वारा दिए गए स्वयं के वर्णन के सिवाय ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह साबित हो सके कि वास्तव में मामला राना कोटी के समक्ष पेश किया गया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने अमर चन्द के पेंशन के कागजपत्रों में प्रतिवादी द्वारा किए गए नामांकन को असम्यक् महत्व दिया है । मात्र प्रतिवादी का नाम अमर चन्द के पेंशन के कागजों में दिए जाने से पैतृत्व साबित नहीं हो जाता । प्रतिवादी ने अपने कथन में भी यह कहा है कि राजस्व प्रविष्टियों में संशोधन के लिए समुचित प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, न तो कोई आवेदन और न ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित कोई आदेश अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । परिणामस्वरूप न्यायालय प्रतिवादी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए आबद्ध है । डी. डब्ल्यू. 2 गौरी दत्त के कथन में यह आया है कि प्रतिवादी ग्राम जोट में निवास करता था तथा ग्राम धनैन और ग्राम जोट के बीच 5-6 किलोमीटर की दूरी है । प्रथम अपील न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह मामले के संपूर्ण तथ्यों और विधि के बिन्दुओं आदि दोनों पर ही विचार करता । प्रथम अपील न्यायालय का यह भी कर्तव्य था कि वह विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए उन आधारों पर भी विचार करता जिसके विरुद्ध प्रथम अपील फाइल की गई थी । (पैरा 21 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 316 : **श्याम गोपाल बिंदल और अन्य** बनाम **भूमि अर्जन अधिकारी और एक अन्य ।**	22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की नियमित द्वितीय अपील सं. 40.

1996 की सिविल अपील सं. 62-एस./13 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा तारीख 5 अक्तूबर, 1998 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री जी. डी. वर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता और बी. सी. वर्मा, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री भूपेन्द्र गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता और कु. चारु गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 62-एस./13 में तारीख 5 अक्तूबर, 1998 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील के न्यायनिर्णयन हेतु आवश्यक तात्विक तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-वादी अर्थात् श्रीमती राधा (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने स्थायी व्यादेश के लिए प्रत्यर्थी-प्रतिवादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षिप्ततः "प्रतिवादी" कहा गया है) के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था जिसमें उसने ग्राम धनैन, तहसील और जिला शिमला (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वाद भूमि" कहा गया है) में स्थित खसरा सं. 2, 3, 4, 5 और 6 क्षेत्रफल 35 बीघा, 19 बिस्वा भूमि के संबंध में प्रतिवादी को हस्तक्षेप से रोकने के लिए अनुरोध किया था । उसके अनुसार, वाद की भूमि पूर्व में उसके पिता त्रिलोक चन्द और उनके पिता के भाई अमर चन्द के स्वामित्व में थी और त्रिलोक चन्द की मृत्यु के पश्चात् भूमि में आधा अंश उसे, उसकी बहन प्रभा देवी जिसे प्रतिवादी सं. 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया है तथा उसकी माता जीवनी को विरासत में मिला था तथा उसकी माता जीवनी की मृत्यु के उपरान्त उसका अंश उसे तथा उसकी बहन प्रभा देवी को विरासत में प्राप्त हुआ था । उसने यह भी अभिवाक् किया कि चूंकि उसके पिता के भाई अमर चन्द अविवाहित थे और उनके कोई संतान नहीं

थी इसलिए फरवरी, 1989 में उनकी मृत्यु के पश्चात् उसे तथा उसकी बहन प्रभा देवी को विरासत में उनका अंश पहुंचा तथा इस प्रकार वह और प्रफार्मा-प्रतिवादी वादान्तर्गत संपूर्ण भूमि में एक बटा दो अंश के संयुक्त स्वामी बन गए थे । उसने यह भी दावा किया कि वादान्तर्गत संपूर्ण भूमि उसके और उसकी बहन प्रभा देवी के कब्जे में थी । उसने यह भी अभिकथित किया कि प्रतिवादी ने बिना किसी अधिकार, हक या हित के यह झूठा दावा करते हुए कि वह अमर चन्द की बेटी थी, उसके और प्रोफार्मा-प्रतिवादी के कब्जे वाली वादान्तर्गत भूमि में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया । यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी जमुना देवी ने अपने पक्ष में प्रविष्टियों को संशोधित करने के लिए सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, शिमला के यहां एक आवेदन भी दिया था किन्तु उक्त सहायक कलक्टर ने यह निदेश देते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि वह अपना हक सिविल न्यायालय द्वारा स्थापित कराए ।

3. प्रतिवादी द्वारा वाद में प्रतिवाद किया गया था । उसके अनुसार, वाद न तो चलने योग्य है और न ही ग्रहण किए जाने योग्य है । उसके अनुसार वादी का कब्जा नहीं था और वह व्यादेश का अनुतोष पाने की हकदार नहीं है । गुणागुण के आधार पर यह कहा गया है कि अमर चन्द प्रतिवादी का पिता था और उसकी मृत्यु के पश्चात् वाद भूमि में आधा अंश उसे प्राप्त हो गया । यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी अमर चन्द की भूमि और घर के आधे हिस्से पर काबिज है । उसके अनुसार अमर चन्द ने काफी समय पूर्व चंदू नाम की महिला से विवाह किया था और उनके विवाह के पश्चात् प्रतिवादी का जन्म हुआ था किन्तु जब प्रतिवादी डेढ़ वर्ष की आयु की ही थी तब अमर चन्द और चन्दू का विवाह विच्छेद हो गया था और उसके पश्चात् चन्दू दौलत राम नामक व्यक्ति के साथ रहने लगा था ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 24 अगस्त, 1990 को विवाद्यक तैयार किए थे । विचारण न्यायालय ने वादी के पक्ष में वाद को डिक्री किया था । उसके पश्चात्, प्रतिवादी जमुना देवी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला के समक्ष अपील फाइल की थी । उसे तारीख 5 अक्तूबर, 1998 को मंजूर कर लिया गया था । इन परिस्थितियों में यह नियमित द्वितीय अपील वादी और प्रोफार्मा-प्रतिवादी अर्थात् श्रीमती प्रभा देवी ने फाइल की है । नियमित द्वितीय अपील तारीख

20 मई, 1999 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार की गई थी :–

"1. क्या प्रत्यर्थी द्वारा पेश किया गया साक्ष्य अभिवचनों की परिधि से परे है तथा उसे विधि के अनुसार अभिलेख पर पेश नहीं किया गया है ?

2. क्या प्रत्यर्थी के विरुद्ध स्व. श्री अमर चन्द की पेंशन और उपदान सहित सेवा अभिलेख जिसमें प्रत्यर्थी के अनुसार उसे नामनिर्देशिती के रूप में अभिलिखित किया गया था, के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य को अभिलेख पर पेश न करने के कारण उसके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए ?"

5. तत्पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा एक आवेदन अर्थात् 2010 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 751 विधि के अतिरिक्त सारवान् प्रश्नों को विरचित किए जाने के लिए प्रस्तुत किया गया था । जिसका प्रत्यर्थियों द्वारा उत्तर फाइल किया गया था । न्यायालय द्वारा तारीख 9 मार्च, 2011 को आवेदन मंजूर कर लिया गया था और नियमित द्वितीय अपील विधि के पूर्वतर सारवान् प्रश्न सं. 1 से 5 के अतिरिक्त पेपर बुक के पृष्ठ सं. 77 पर विरचित विधि के अतिरिक्त सारभूत प्रश्न सं. 1 से 5 के आधार पर स्वीकार की गई समझी गई थी । अपीलार्थियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन भी एक आवेदन अर्थात् 2010 का सी. एम. पी. सं. 991 फाइल किया था । यह आवेदन भी अपील के साथ सुनवाई के लिए ग्रहण किया गया था ।

6. विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी. डी. वर्मा ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है । उनके अनुसार, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का गलत रूप से निर्वचन तथा गलत मूल्यांकन किया है । उनके अनुसार, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी जमुना देवी अमर चन्द की पुत्री थी । उनके अनुसार प्रतिवादी जमुना देवी श्री रोलू **उर्फ** दौलत राम नामक व्यक्ति की पुत्री थी, जिसकी संपत्ति उसे विरासत में मिली थी ।

7. विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भूपेन्दर गुप्ता ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है । उन्होंने यह

दलील दी है कि जमुना देवी अमर चन्द की पुत्री थी और वह ही स्व. श्री अमर चन्द की संपत्ति विरासत में पाने की हकदार थी ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और ध्यानपूर्वक अभिवचनों का परिशीलन किया ।

9. चूंकि विधि के सभी सारवान् प्रश्न एक दूसरे से संबंधित और परस्पर जुड़े हुए हैं इसलिए इन पर एक साथ विचार किया जा रहा है जिससे कि साक्ष्य पर चर्चा की पुनरावृत्ति न हो ।

10. वादी राधा देवी पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित हुई है । उसके अनुसार वाद भूमि 35 बीघा 19 बिस्वा है । उसका अपनी बहन प्रभा देवी के साथ उस पर कब्जा था । श्री अमर चन्द की मृत्यु के पूर्व यह भूमि संयुक्त भूमि थी । त्रिलोक चन्द की मृत्यु के उपरान्त उसका, उसकी माता का और उसकी बहन का वाद भूमि पर कब्जा हो गया था । उसकी माता का नाम जीवनी था । जीवनी की मृत्यु के पश्चात् उसका और उसकी बहन प्रभा का वाद भूमि पर कब्जा हो गया था । अमर चन्द निःसंतान था । वह प्रभा देवी के साथ वाद भूमि पर कब्जा धारण करके उसकी स्वामी हो गई थी । उनकी अमर चन्द के साथ एक ही रसोई थी । प्रतिवादी जमुना देवी का अमर चन्द से कोई संबंध नहीं था । प्रतिवादी ने अमर चन्द की बेटी होने का दावा करते हुए उनके कब्जे में दखलंदाजी करना आरम्भ कर दिया था । प्रतिवादी ग्राम जोटे में रहती है । वह श्री बिशन दास (डी. डब्ल्यू. 4) की पत्नी है । उन्होंने भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखवाई है । उसने जमाबंदी प्रदर्श पी डब्ल्यू. 1/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी की प्रति, शजरा नसब की प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी और शजरा मालिकान प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी की प्रति को साबित किया है । अपनी प्रति-परीक्षा में उसने यह स्वीकार किया है कि अमर चन्द चुनिया के रूप में भी जाना जाता था । उसने यह स्वीकार किया है कि विवादास्पद मकान दो मंजिला है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि निचली मंजिल पर बिजली का मीटर जमुना देवी ने लगवाया था । उसने यह स्वीकार किया है कि अमर चन्द शिक्षा विभाग में कार्य करता था । उसने इस बात से इनकार किया है कि अमर चन्द ने लाभों की प्राप्ति के लिए किसी का नामांकन किया है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि अमर चन्द का विवाह चन्दू से हुआ था और उनके विवाह के पश्चात् प्रतिवादी जमुना देवी का

जन्म हुआ था । उसने स्वेच्छा से यह कहा है कि जमुना देवी दौलत राम की पुत्री है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि अमर चन्द और चन्दू के बीच तलाक का विवाद राना कोटी तक पहुंचा था और वह मामला विनिश्चित किया गया था । उसे यह पता नहीं है कि गणेश दास (डी. डब्ल्यू. 5) पेशकार (रीडर) था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि अमर चन्द का अंतिम संस्कार जमुना देवी ने ही किया था । ये सब संस्कार उसके द्वारा ही किए गए थे । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि अमर चन्द भू-तल पर रहता था । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि उसके पिता और अमर चन्द के बीच कोई मुकदमेबाजी चल रही थी । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि अमर चन्द के जीवन काल के दौरान प्रतिवादी उस भूमि पर खेती करती थी । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि जमुना देवी का वाद भूमि पर कब्जा है । वादी द्वारा पेश किया गया यही साक्ष्य है ।

11. प्रतिवादी जमुना देवी डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित हुई है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पिता का नाम अमर चन्द है । वह ग्राम धार में रह रही है । उसकी माता का नाम चन्दू देवी था । उसकी मृत्यु 10-20 वर्ष पूर्व हुई थी । उसकी माता का विवाह श्री शिव दत्त नामक व्यक्ति से हुआ था । तत्पश्चात्, उसने अमर चन्द से विवाह किया था । अमर चन्द चुनिया के नाम से भी जाना जाता था । उसके जन्म के पश्चात् उसकी माता और अमर चन्द के बीच विवाद आरम्भ हो गया था । यह मामला राना कोटी के पास पहुंचा था । राना कोटी ने आदेश दिया कि वह कुछ वर्षों तक माता के साथ रहेगी । तत्पश्चात्, उसकी माता का विवाह श्री दौलत राम से हो गया था । दौलत राम रोलू के नाम से भी जाना जाता था । उसने दो बच्चों अर्थात् हरिनन्द और बट्टू को जन्म दिया । वह अपने पहले पति के साथ डेढ़ वर्ष तक रही थी । विवाह अमर चन्द द्वारा करवाया गया था । तत्पश्चात् वह अपनी ससुराल में लौट आई थी और उसका विवाह बिशन दास से हो गया था । उस समय वह 15-16 वर्ष की थी । अमर चन्द शिक्षा विभाग में कार्यरत था । चार वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हो गई थी । उसने उसे पेंशन लेने के लिए नामनिर्देशित किया था । उसके पिता और चाचा अलग-अलग रहते थे । उसके पिता 15-16 बीघा भूमि में खेती करते थे । उसके पिता के पास दो कमरे थे । वह अपने पिता की देखभाल

किया करती थी । उसने इस बात से इनकार किया कि वह रोलू की पुत्री थी । उसे यह ज्ञात नहीं है कि किस पंचायत में उसकी जन्म तिथि अभिलिखित की गई थी । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि जब रोलू की मृत्यु हुई थी तो उसकी संपत्ति दो भाइयों के साथ उसके पक्ष में नामांतरित हो गई थी । उसने प्रविष्टियों में संशोधन के लिए एक आवेदन फाइल किया था । उसे यह ज्ञान नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी ने क्या आदेश दिया था और वह उसकी प्रति प्रस्तुत नहीं कर सकती । उसने चार वर्ष पूर्व बिजली का मीटर लगवाया था । उसने स्पष्ट रूप से अपनी प्रति-परीक्षा में यह स्वीकार किया है कि त्रिलोक चन्द की मृत्यु के पश्चात् उसकी संपत्ति जीवनी, वादी और प्रोफार्मा-प्रतिवादी के नामों में अंतरित हो गई थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि वाद भूमि संयुक्त रूप से जीवनी, प्रभा, राधा और त्रिलोक चन्द के नाम में प्रविष्ट हो गई थी । उसे यह ज्ञात नहीं है कि उसका नाम कैसे जमाबंदी प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/बी में प्रविष्ट किया गया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उसका नाम दौलत राम की मृत्यु के पश्चात् दर्ज किया गया था । उसने यह बात दोहराई कि उसने जमाबंदी की प्रविष्टियों में नामांतरण और संशोधन के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था । यह आवेदन 15 वर्ष पूर्व दिया गया था । उसे यह ज्ञात नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा क्या आदेश पारित किया गया था । उसे यह भी ज्ञात नहीं है कि आवेदन किसे दिया गया था । उसके पास कोई भी दस्तावेज नहीं था, उसने यह भी कहा कि आवेदन अमर चन्द द्वारा दिया गया था न कि उसके द्वारा । आवेदन में यह कहा गया था कि वह अमर चन्द की पुत्री है । उसने यह स्वीकार किया है कि वह विवादित भूमि से संबंधित दस्तावेज पेश नहीं कर सकी जब मामला राना साहिब के समक्ष पहुंचा था । उसने यह भी कहा कि विद्यालय में उसका नाम उसके पिता ने लिखवाया था किन्तु वह उसकी कोई प्रति प्रस्तुत नहीं कर सकी ।

12. डी. डब्ल्यू.-2 श्री गौरी दत्त ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह दौलत राम को जानता था । वह रोहलू राम के नाम से भी जाना जाता है । वह उसके घर आता-जाता था । वह चन्दू को भी जानता था । दौलत राम अपनी पत्नी के रूप में चन्दू को लाया था । जब दौलत राम चन्दू को लाया था तब उसके साथ डेढ़-दो वर्ष की एक बेटी भी थी । रोहलू की संपत्ति पर

प्रतिवादी-जमुना का कोई अधिकार नहीं था । उसने प्रति-परीक्षा में यह स्वीकार किया है कि जमुना जोटे में रहती थी । धनैन और जोटे के बीच लगभग 5-6 किलोमीटर की दूरी है । उसने यह स्वीकार किया है कि वह अमर चन्द और चन्दू के विवाह अनुष्ठान के समय वहां उपस्थित नहीं था । वह इस बारे में नहीं जानता कि अमर चन्द और चन्दू का विवाह हुआ था । वह नहीं जानता कि अमर चन्द और चन्दू के बीच कोई विवाद भी था ।

13. डी. डब्ल्यू.-3 मस्त राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अमर चन्द को जानता था जो कि ग्राम धार का निवासी था । प्रारम्भ में चन्दू का विवाह श्री शिव दत्त से हुआ था और तत्पश्चात् उसका विवाह अमर चन्द से हुआ । अमर चन्द के घर में एक पुत्री का जन्म हुआ था । तत्पश्चात् अमर चन्द और चन्दू देवी के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था । चन्दू देवी लड़की को अपने साथ लेकर चली गई थी और तब मामला राजा के पास पहुंचा था । लड़की का नाम जमुना है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि जब विवाह-विच्छेद हुआ था तो लिखत तैयार की गई थी । उसे यह ज्ञात नहीं है कि जमुना देवी को दौलत राम से संपत्ति मिली थी या नहीं । उसके अनुसार चन्दू दौलत राम के साथ 8 से 10 वर्ष तक रही थी । तत्पश्चात्, उसने यह भी कहा कि अमर चन्द के साथ 8-10 वर्ष तक रही थी । उसने पुनः यह कहा कि वह दौलत राम के साथ 10-11 वर्ष तक रही थी । उसे यह ज्ञात नहीं है कि चन्दू ने कब अमर चन्द को छोड़ा था । उसने स्पष्ट रूप से यह भी स्वीकार किया है कि उसके पास ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है जिससे अमर चन्द का जमुना का पिता होना साबित हो सके ।

14. डी. डब्ल्यू. 4 बिशन दास ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अमर चन्द ग्राम धनैन का निवासी था । वह चुनिया के रूप में भी जाना जाता था । उसकी पुत्री का नाम जमुना देवी है । उसने 31-32 वर्ष पूर्व जमुना देवी के साथ विवाह किया था । विवाह गाडर पद्धति के अनुरूप अनुष्ठापित किया गया था । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए द्वारा विवाह लिखित में हुआ था । उसकी एक प्रति उसने रखी थी और एक प्रति अमर चन्द को दी गई थी । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए मेघ राम द्वारा लिखा गया था । इस पर देवी सिंह (डी. डब्ल्यू. 6) ने हस्ताक्षर किए थे । यह उसके और जमुना देवी द्वारा भी हस्ताक्षरित था । उसके अनुसार विवाह के समय जमुना देवी 52-53 वर्ष की थी । जमुना देवी को यह पता था कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए उससे

संबद्ध था । देवी सिंह जमुना देवी का पहला पति था । उसने यह भी वर्णन किया है कि देवी सिंह ने लिखित में विवाह-विच्छेद प्राप्त किया था और उसकी प्रति अमर चन्द के पास भी हो सकती है । उसे यह ज्ञात नहीं है कि क्या जमुना देवी को दौलत राम से कोई संपत्ति प्राप्त हुई थी । उसने प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए अमर चन्द के अनुरोध पर लिखा गया था और अमर चन्द ने उस पर हस्ताक्षर भी किए थे । तत्पश्चात् उसने कहा कि अमर चन्द ने प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए पर हस्ताक्षर नहीं किए थे । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए ग्राम धार में लिखा गया था ।

15. गणेश दास डी. डब्ल्यू. 5 है । उसके अनुसार शिव दत्त चन्दू देवी का प्रथम पति था । वह उसका भाई था । चन्दू देवी ने उसे छोड़ने के पश्चात् ग्राम धनैन (धार) में अमर चन्द से विवाह कर लिया था । अमर चन्द और चन्दू देवी के विवाह के पश्चात् जमुना देवी का जन्म हुआ था । वह राना कोटी में कार्य करता था । बेटी की अभिरक्षा के लिए विवाद राना कोटी में पहुंचा था । राना ने आदेश दिया था कि जमुना देवी 5-6 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक अपनी माता के ही साथ रहेगी और तत्पश्चात् उसे अमर चन्द की अभिरक्षा में सौंप देगी । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अमर चन्द ने ग्राम माथू में जमुना देवी से विवाह किया था । जमुना देवी ने देवी सिंह को छोड़ दिया था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसके पास ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है जिसमें जमुना देवी को अमर चन्द की बेटी के रूप में दिखाया गया हो ।

16. डी. डब्ल्यू. 6 देवी सिंह प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए के सीमांत साक्षियों में से है । उसके अनुसार प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए मेघ राम द्वारा लिखा गया था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसके पास ऐसा कोई दस्तावेज नहीं था जिससे यह साबित किया जा सके कि जमुना देवी अमर चन्द की बेटी थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि जब भी विवाह-विच्छेद होता है तो उसकी लिखत तैयार की जाती है । उसके अनुसार प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए अमर चन्द के घर पर लिखा गया था ।

17. डी. डब्ल्यू. 7 श्री हरि नन्द पुत्र श्री दौलत राम है । उसके अनुसार जमुना देवी अमर चन्द की बेटी है । डी. डब्ल्यू. 8 राजीव सिंह, हेड मास्टर है । उसने अभिलेख डी. डब्ल्यू. 8/ए प्रस्तुत किया है ।

18. डी. डब्ल्यू. 9 परमानन्द वर्मा है, जो कि विद्युत सब-डिवीजन,

मसोबरा के कार्यालय में लिपिक के रूप में कार्य करता था । उसके अनुसार तारीख 19 जुलाई, 1989 को जमुना देवी के घर मीटर लगाया गया था ।

19. डी. डब्ल्यू. 10 कुलदीप चन्द ने महालेखाकार के कार्यालय में अभिलेख प्रस्तुत किया है । उसके अनुसार, अमर चन्द ने जमुना देवी को नामनिर्देशिती के रूप में नामनिर्देशित किया था । यह प्रतिवादी जमुना देवी द्वारा दिया गया मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य है ।

20. विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (2), शिमला ने संपूर्ण मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् तारीख 9 सितम्बर, 1996 को वाद खारिज कर दिया था । उन्होंने यह विनिर्दिष्ट निष्कर्ष दिया है कि जमुना देवी अमर चन्द की बेटी नहीं थी । तथापि, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के युक्तियुक्त निर्णय को केवल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए और अमर चन्द द्वारा पेंशन के कागज-पत्रों में किए गए नामनिर्देशन का निर्देश करते हुए उलट दिया । जहां तक प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए का संबंध है, उस पर अमर चन्द के हस्ताक्षर नहीं हैं । आश्चर्यजनक रूप में यह दौलत राम द्वारा हस्ताक्षरित है । डी. डब्ल्यू. 4 बिशन दास ने यह कहा है कि अमर चन्द ने दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए थे । तथापि, उसने बाद में अपने कथन में यह कहा है कि इस पर अमर चन्द ने हस्ताक्षर नहीं किए थे । प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्षियों के कथनों में निष्पादन की रीति और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए को तैयार करने के स्थान के संबंध में अंतर है । साक्ष्य में यह आया है कि देवी सिंह का जमुना देवी से विवाह-विच्छेद हो गया था और विवाह-विच्छेद विलेख तैयार किया गया था । यह विलेख अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है । उपरोक्त संप्रेक्षण और चर्चा को ध्यान में रखते हुए दस्तावेज प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 4/ए स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह उपदर्शित करने के लिए कि जमुना देवी अमर चन्द की बेटी थी, मुख्यतः इसी दस्तावेज का अवलंब लिया है । अभिलेख पर यह आया है कि जमुना देवी का विद्यालय में दाखिला किया गया था तथापि, विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

21. प्रतिवादी द्वारा दिए गए अतिमहत्वपूर्ण साक्ष्य की प्रथम अपील न्यायालय ने उपेक्षा की है । यह विवादित नहीं है कि चन्दू देवी का दौलत राम से विवाह हुआ था । दौलत राम की वह संपत्ति जो दूसरे गांव में स्थित

थी, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/बी और नामांतरण प्रदर्श पी. आर. 1 के साक्ष्य के अनुसार वादी ने उत्तराधिकार में प्राप्त की थी । यह जमुना देवी द्वारा दौलत राम के अन्य बच्चों के साथ समान अंशों में उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी अर्थात् शजरा नसब में प्रतिवादी सं. 1 को दौलत राम की पुत्री के रूप में दर्शाया गया है । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/डी शजरा नसब की प्रतिलिपि के अनुसार अमर चन्द अपनी मृत्यु के समय निःसंतान था और उसके भाई त्रिलोक चन्द की दो पुत्रियां थीं । अपीलार्थियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था जिसके द्वारा राजस्व अभिलेख को अभिलेख में प्रस्तुत करने का निवेदन किया गया था । वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज अपीलार्थी-वादी के इस अभिवाक् को साबित करते हैं कि जमुना देवी अमर चन्द की पुत्री नहीं थी । ये दस्तावेज वादी द्वारा किए गए दावे को आधार प्रदत्त करते हैं । न्यायालय का यह निश्चित मत है कि ये दस्तावेज मामले का निर्णय करने के लिए आवश्यक हैं । तद्नुसार, आवेदन स्वीकार किया जाता है ।

22. माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्तियों ने **श्याम गोपाल बिंदल और अन्य** बनाम **भूमि अर्जन अधिकारी और एक अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना । ऐसा प्रतीत होता है कि वे दस्तावेज जो अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने थे, अपीलार्थियों द्वारा सिविल न्यायालय में किए गए दावे का मुख्य आधार थे । न्यायालय द्वारा मामले का विनिश्चय किए जाने के लिए उन पर विचार किया जाना आवश्यक था । सिविल वाद के लंबित रहने के दौरान मूल वादी की मृत्यु हो गई थी । इसके पश्चात् मृतक वादी के विधिक प्रतिनिधियों को उपलब्ध पूर्वतर अवसर पर दस्तावेज अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने चाहिए थे । अतः, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थियों ने ऐसा कोई कारण नहीं दिया है कि उन्होंने विचारण न्यायालय में दस्तावेज क्यों प्रस्तुत नहीं किए । ऐसा प्रतीत होता है कि वादी द्वारा विचारण न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने के कारण वाद खारिज किया जाना अपील न्यायालय द्वारा यांत्रिक रूप से पुष्ट किया गया था ।

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 316.

11. यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालयों द्वारा गुण-दोष के आधार पर कोई भी विवाद्यक विनिश्चित नहीं किया गया था । सभी विनिश्चय इस आधार पर किए गए कि वादी/अपीलार्थी अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 27 में निर्धारित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए आवेदन की परीक्षा नहीं की गई थी । चूंकि फाइल किए जाने के लिए ईप्सित दस्तावेज अपीलार्थियों के स्वामित्व अधिकारों से संबंधित न्यायिक आदेश हैं इसलिए वे अपीलार्थियों द्वारा किए गए दावे की सफलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाले हैं । अपीलार्थियों द्वारा यह अभिवाक् किया गया था कि चूंकि सिविल वाद के लंबित रहने के दौरान ही मूल वादी की मृत्यु हो गई थी इसलिए आदेशों की जानकारी के अभाव में दस्तावेजों को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया जा सका । अपील न्यायालय के समक्ष सम्यक् रूप से प्रार्थना की गई थी जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः दोहराया गया था और अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए मामले के प्रतिप्रेषण की मांग की गई थी । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हमारी यह राय है कि अपील न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन स्वीकार न करके और मामला विचारण न्यायालय को वापस न करके विधिक गलती की है ।

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए अपील स्वीकार की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा एस. बी. द्वितीय सिविल अपील सं. 305 में तारीख 3 जनवरी, 2008 का आदेश अपर जिला न्यायाधीश सं. 1, अजमेर का 1998 की सिविल अपील सं. 134 में तारीख 10 फरवरी, 2006 का आदेश और अपर सिविल न्यायाधीश (ए. बी.) और न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी सं. 2, अजमेर द्वारा 1995 का सिविल वाद सं. 34/95 (29/1995) में तारीख 26 अक्तूबर, 1998 का निर्णय अपास्त किया जाता है । अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन स्वीकार किया जाता है । मामला विचारण न्यायालय को गुणागुण के आधार पर पुनः नए सिरे से विचार करने के लिए भेजा जाता है । वादी तथा प्रतिवादियों को अभिलेख पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा ।''

23. प्रतिवादी जमुना देवी ने तारीख 12 जून, 1981 की दान विलेख सं. 144 द्वारा ग्राम देओठी में स्थित संपत्ति अपने भाई को दान में दे दी

थी ।

24. प्रतिवादी ने यह उपदर्शित करने का प्रयास किया है कि अमर चन्द और चन्दू के बीच विवाद होने के पश्चात् मामला राना कोटी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तथापि, प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर साक्षियों द्वारा दिए गए स्वयं के वर्णन के सिवाय ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह साबित हो सके कि वास्तव में मामला राना कोटी के समक्ष पेश किया गया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने अमर चन्द के पेंशन के कागजपत्रों में प्रतिवादी द्वारा किए गए नामांकन को असम्यक् महत्व दिया है । मात्र प्रतिवादी का नाम अमर चन्द के पेंशन के कागजों में दिए जाने से पैतृत्व साबित नहीं हो जाता । प्रतिवादी ने अपने कथन में भी यह कहा है कि राजस्व प्रविष्टियों में संशोधन के लिए समुचित प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, न तो कोई आवेदन और न ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित कोई आदेश अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । परिणामस्वरूप न्यायालय प्रतिवादी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए आबद्ध है । डी. डब्ल्यू. 2 गौरी दत्त के कथन में यह आया है कि प्रतिवादी ग्राम जोटे में निवास करता था तथा ग्राम धनैन और ग्राम जोटे के बीच 5-6 किलोमीटर की दूरी है । प्रथम अपील न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह मामले के संपूर्ण तथ्यों और विधि के बिन्दुओं आदि दोनों पर ही विचार करता । प्रथम अपील न्यायालय का यह भी कर्तव्य था कि वह विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए उन आधारों पर भी विचार करता जिसके विरुद्ध प्रथम अपील फाइल की गई थी ।

25. तद्नुसार, उपरोक्त संप्रेक्षण और चर्चा को ध्यान में रखते हुए विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 62-एस/13 में तारीख 5 अक्तूबर, 1998 को पारित निर्णय और डिक्री को उलटा जाता है और विद्वान् उप-न्यायाधीश, श्रेणी (2) शिमला द्वारा 1995 के सिविल वाद सं. 285/1 में तारीख 9 सितम्बर, 1996 को पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित किया जाता है । लंबित आवेदन का, यदि कोई हो, निपटान किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

भट./मह.

शिव सिंह और अन्य

बनाम

प्रेम सिंह

तारीख 11 जून, 2012

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100, आदेश 23, नियम 1 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क और हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974] – द्वितीय अपील – पक्षकारों के बीच अचल सम्पत्ति के बारे में एक वैध और विधिमान्य विक्रय करार होना – करार के अग्रसरण में अन्तरिती द्वारा भागिक पालन करते हुए अपनी प्रास्थिति में परिवर्तन कर लेना जिसकी जानकारी अन्तरणकर्ता को भी होना – करार के शेष भाग का भी पालन करने के लिए तैयार और रजामंद होना – अन्तरणकर्ता द्वारा करार का पालन करने से इनकार करना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि पक्षकारों के बीच एक वैध और विधिमान्य विक्रय करार किया गया है और उसके अनुसरण में अन्तरिती ने भागिक पालन करते हुए कुछ कार्य करके अपनी प्रास्थिति में परिवर्तन कर लिया है जिसकी जानकारी अन्तरणकर्ता को भी थी तो ऐसी परिस्थितियों में अन्तरणकर्ता ऐसे करार का पालन करने से इनकार नहीं कर सकता है ।

वर्तमान मामले में, वादियों ने यह घोषणा करने के लिए एक वाद फाइल किया था कि वे ग्राम रंगुवाल, तहसील नालागढ़ में स्थित 10 कनाल, 19 मरला भूमि के ऊपर अधिभोगी थे और अभिधृति पर अधिभोगी के रूप में प्रवेश किए थे । प्रतिवादी ने तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक विक्रय करार किया और वादियों को पूर्वोक्त भूमि का विक्रय 2,500/- रुपए के प्रतिफल में करने के लिए सहमत हुआ था । तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार के आधार पर प्रतिवादी ने अपने आधे हिस्से 5 कनाल, 9 मरला भूमि को तारीख 16 फरवरी, 1965 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा वादियों को विक्रय कर दिया था । भूमि का शेष आधा हिस्सा जो प्रतिवादी के भाई भाग सिंह के नाम में अभिलिखित था, को प्रतिवादी द्वारा अतिशेष विक्रय प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 12 मई, 1967 के करार द्वारा वादियों के पक्ष में विक्रय करने के लिए सहमत हुआ था । प्रतिवादी ने तारीख 12

मई, 1967 के करार को निष्पादित करते समय तारीख 21 अगस्त, 1964 के पूर्ववर्ती करार की भी पुष्टि कर दी थी । द्वितीय करार के निष्पादन के समय पर विक्रय-विलेख वादियों के पक्ष में निष्पादित नहीं किया गया क्योंकि प्रतिवादी के भाई भाग सिंह जिसकी मृत्यु तारीख 21 मई, 1962 को हो गई थी, का उत्तराधिकार नामांतरण प्रतिवादी के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ था । वादियों ने यह भी अभिवाक् किया कि वे तारीख 21 अगस्त, 1964 और तारीख 12 मई, 1967 के करारों के भागिक पालन में वाद भूमि के कब्जे में है । वादी संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे तथा हैं । वे वाद भूमि के कब्जे में हैं । वादियों ने यह वैकल्पिक अभिवाक् किया कि वे हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वाद भूमि के स्वामी हो गए क्योंकि वे गल्ला बटाई का संदाय करने पर वर्ष 1954 में प्रतिवादी द्वारा अधिभोगी थे और अभिधृति पर अधिभोगी के रूप में प्रवेश कराए गए थे । प्रतिवादी वाद भूमि का विभाजन कराने का हकदार नहीं है क्योंकि हक का प्रश्न, सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ द्वारा तारीख 6 मई, 1988 को अभिनिर्धारित प्रश्न में भी वैसा ही प्रश्न अन्तर्वलित था और तत्पश्चात् कलक्टर नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 को अभिनिर्धारित प्रश्न में भी वैसा ही प्रश्न अन्तर्वलित था । प्रतिवादी के पक्ष में वाद भूमि का विभाजन करने के लिए प्रभागीय आयुक्त द्वारा तारीख 13 जुलाई, 1989 और वित्तीय आयुक्त का तारीख 20 अगस्त, 1991 का पश्चात्वर्ती आदेश गलत, अवैध, अकृत और शून्य है । प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया । उसने वाद कायम रखने, परिसीमा अवधि, सुने जाने का अधिकार, वाद हेतुक का अभाव के बारे में प्रारम्भिक आक्षेप किया । गुणागुणों पर, प्रतिवादी ने इस बात से इनकार किया कि वादी, वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी है । प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया कि उसने तारीख 16 फरवरी, 1965 को वादी के पक्ष में वाद भूमि में अपने हिस्से का विक्रय कर दिया था । उसने अपने भाई के नाम में अभिलिखित हिस्से का विक्रय करने के लिए तारीख 12 मई, 1967 के करार से इनकार किया है । उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने वादियों से अपने भाई के हिस्से के संबंध में विक्रय प्रतिफल प्राप्त किया था । उसने इस बात से भी इनकार किया कि वादी वाद भूमि में अभिधारी के रूप में कभी प्रवेश किया था । प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया कि वह अपने भाई के आधे हिस्से की सीमा तक वाद भूमि में सह-स्वामी है और उसे उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकार है । वादियों ने प्रत्युत्तर फाइल किया और प्रतिवादी की प्रतिरक्षा का विरोध करते हुए अपने आधार

को पुनः दोहराया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद को भागतः डिक्री कर दिया । वादियों द्वारा अपने हक की घोषणा के लिए की गई प्रार्थना को नामंजूर कर दिया । तारीख 14 दिसम्बर, 1998 की स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री द्वारा प्रतिवादियों ने वाद भूमि के ऊपर वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप करने से और वादियों के विरुद्ध वाद भूमि में किसी अधिकार का दावा करने से अवरुद्ध कर दिया गया । निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादी ने सिविल अपील सं. 4-एन.एल./13/1999 और वादियों ने सिविल अपील सं. 5-एन.एल./13/1999 फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने तारीख 16 अगस्त, 2000 के एक ही निर्णय द्वारा दोनों अपीलों का विनिश्चय किया । प्रतिवादी की सिविल अपील सं. 4-एन.एल./13/1999 स्वीकार कर ली । विचारण न्यायालय के तारीख 14 दिसम्बर, 1988 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और वादियों का वाद खारिज कर दिया । सिविल अपील सं. 5-एन.एल./13/1999 को खारिज कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी 1/2 हिस्से तक और वादी 1/2 हिस्से तक ग्राम रंगुवाल में स्थित खसरा सं. 6, 143, किटा 2, 10 कनाल 19 मरला भूमि में समाविष्ट वाद भूमि में कब्जे सहित संयुक्त स्वामी हैं । इस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधि का सारवान् प्रश्न सं. 6 को प्रथमतः विचार के लिए लिया जाता है । विवाद्यक सं. 1 यह है कि क्या वादी सं. 1 वर्ष 1954 में वाद भूमि में अधिभोगी अभिधारी के रूप में प्रवेश किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 पर यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षकार इस बात के लिए सहमत थे कि न्यायालय के पास इस विवाद्यक को अवधारित करने और वादियों के विरुद्ध विवाद्यक सं. 1 पर विनिश्चय करने के लिए कोई अधिकारिता नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष वादी इस बात के लिए सहमत थे कि उनके द्वारा फाइल किए गए वाद में अभिधृति का प्रश्न नहीं उठाया जाएगा । इसलिए, इन परिस्थितियों में यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वाद भूमि में अभिधारी के रूप में वादियों के प्रवेश का प्रश्न और उसके बाद वे हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् स्वामी हो गए, का प्रश्न विचारित नहीं किया जा सकता है, अतएव, विधि का सारवान् प्रश्न सं. 6 का विनिश्चय वादियों के विरुद्ध किया जाता है । विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 से 5 एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए, इन सभी पर एक साथ विचार किया जाता है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए

तारीख 21 अगस्त, 1964 का करार है, प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए तारीख 16 फरवरी, 1965 का विक्रय-विलेख है और प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए तारीख 12 मई, 1967 का करार है । वादियों ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए के आधार पर वाद फाइल किया है । वादियों का पक्षकथन यह है कि भाग सिंह और प्रेम सिंह प्रतिवादी भाई हैं और सह-स्वामी हैं । प्रतिवादी ने वादी के साथ 2,500/- रुपए के प्रतिफल में 10 कनाल, 19 मरला भूमि का विक्रय करने के लिए तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए किया । विक्रय-विलेख, तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार के आधार पर निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रतिवादी प्रेम सिंह के भाई भाग सिंह की मृत्यु यद्यपि तारीख 21 मई, 1962 को हो गई थी किन्तु उसके उत्तराधिकार का नामांतरण नहीं हुआ था इसलिए, प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में अपने हिस्से का विक्रय तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए द्वारा किया । प्रतिवादी ने उस हिस्से का विक्रय करने के लिए वादियों से तारीख 12 मई, 1967 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए निष्पादित किया जो उसके भाई भाग सिंह से आना था । भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण सं. 348 प्रदर्श पी-6 (प्रदर्श डी-1) तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रतिवादियों के पक्ष में प्रमाणित हुआ । वादियों ने प्रतिवादी को सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय कर दिया था, तथा वे संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे । किन्तु, प्रतिवादी ने तारीख 12 मई, 1967 के करार के आधार पर वादियों के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया । वादी ने विभाजन वाद फाइल किया । सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ ने तारीख 6 मई, 1988 को यह अभिनिर्धारित प्रदर्श पी.-8 किया कि वाद भूमि में हक का प्रश्न और विभाजन से इनकार करने का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 6 मई, 1988 के आदेश को कलक्टर, नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के आदेश प्रदर्श पी.-9 द्वारा कायम रखा गया । तथापि, प्रभागीय आयुक्त ने तारीख 13 जुलाई, 1989 के आदेश द्वारा यह सिफारिश की कि सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को विभाजन वाद विनिश्चित करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि प्रतिवादी का हक स्पष्ट है । प्रभागीय आयुक्त द्वारा की गई तारीख 13 जुलाई, 1989 की सिफारिश को वित्तीय आयुक्त द्वारा तारीख 20 अगस्त, 1991 को प्रदर्श डी-3 आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया था । इसके पश्चात्, वादियों ने तारीख 9 अक्तूबर, 1991 को वाद फाइल किया । अभि. सा. 1 अरविन्द चन्द, कमल नयन, याचिका लेखक का पुत्र है । उसने यह कथन किया कि उसके पिता की मृत्यु वर्ष

1992 में हुई थी । उसने यह कथन किया कि तारीख 5 मई, 1967 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए उसके पिता द्वारा लिखा गया है । अभि. सा. 2 ब्रह्मा नन्द ने यह कथन किया कि उसने और दीवान चन्द ने वर्ष 1967 में नाथू राम के पक्ष में प्रेम सिंह द्वारा निष्पादित करार पर हस्ताक्षर किया था । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए को न्यायालय परिसर में लिखा गया था । अभि. सा. 3 दीवान चन्द ने यह कथन किया कि उसकी उपस्थिति में और ब्रह्मा नन्द की उपस्थिति में पक्षकारों ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए पर हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 4 जगदीश चन्द, रजिस्ट्रीकरण लिपिक ने नाथू राम के पक्ष में प्रेम सिंह द्वारा निष्पादित तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए की प्रति को साबित किया है । अभि. सा. 5 प्रताप सिंह ने यह कथन किया कि प्रेम सिंह ने नाथू राम के पक्ष में एक विक्रय-विलेख निष्पादित किया था । उसने और अन्य साक्षी बन्ता नम्बरदार ने विक्रय-विलेख पर हस्ताक्षर किए थे । विक्रय-विलेख की प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए है । अभि. सा. 1 की पुनः अभि. सा. 6 के रूप में परीक्षा हुई और उसने विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए की प्रति पर अपने पिता कमल नयन, याचिका लेखक के हस्ताक्षर की शनाख्त की । अभि. सा. 7 प्रकाश चन्द सैनी, सेवानिवृत्त सेशन जज हैं । उन्होंने यह कथन किया कि वे वर्ष 1964 में दिल्ली में उप-न्यायाधीश थे । वे नाथू राम और प्रेम सिंह को जानते हैं जो उनके समक्ष आए थे । नाथू राम ने यह बताया था कि वह प्रेम सिंह की कुछ भूमि को जोत रहा है और वह उस भूमि को क्रय करना चाहता है । उन्होंने उसे अगले दिन आने के लिए कहा । वे अगले दिन आए, याचिका लेखक ने करार लिखा जिसे करार के दोनों पक्षकारों को पढ़कर सुनाया गया और पक्षकारों ने उस पर हस्ताक्षर किए तथा अंगूठा निशान लगाया । उमराव सिंह ने उसकी उपस्थिति के साथ ही पक्षकारों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए । उन्होंने मूल करार देखा है जिस पर उनके हस्ताक्षर हैं और करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए है । प्रतिवादी साक्षी-1 ने यह कथन किया है कि विवादित भूमि 5 कनाल, 10 मरला है और वह उक्त भूमि का स्वामी है । उसने उक्त भूमि का विभाजन कराने के लिए एक आवेदन दिया था जिसे मंजूर कर लिया गया था । उक्त भूमि उसके भाई भाग सिंह से उसके पास उत्तराधिकार में आई है । उसने अपनी भूमि वादियों को विक्रय की थी । उसने वाद भूमि में अभिधारियों के रूप में वादियों को कभी भी प्रवेश नहीं कराया था । उसने वाद भूमि के वादियों के साथ कोई करार निष्पादित नहीं किया था । वादियों ने पूर्व में भी वाद फाइल किया था जिसे

उन्होंने वापस ले लिया था । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया कि दोनों भाई 10 कनाल, 19 मरला भूमि के स्वामी थे, उसके भाई की मृत्यु संतानरहित और अविवाहित हो गई थी । वह ही एकमात्र अपने भाई का उत्तराधिकारी है । उसने यह कथन किया कि उसने वादियों के पक्ष में तारीख 16 फरवरी, 1965 का विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए निष्पादित किया था । उसने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए पर अपना हस्ताक्षर होने से इनकार किया । उसने यह कथन किया कि उसकी ब्रह्मा नन्द, दीवान चन्द और कमल नयन के साथ कोई शत्रुता नहीं है । उसने इस बात से इनकार किया कि उसने तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार निष्पादित किया था । उसने इस बात से अपनी अनभिज्ञता दर्शित की कि प्रकाश चन्द सैनी दिल्ली में निष्पादित करार का एक साक्षी है । उसकी प्रकाश चन्द सैनी और उमराव सिंह के साथ कोई शत्रुता नहीं है । प्रतिवादी ने तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए के निष्पादन को स्वीकार किया है । अभि. सा.-7 प्रकाश चन्द सैनी ने तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए को साबित किया है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए का अन्य साक्षी उमराव सिंह है । प्रतिवादी ने यह कथन किया कि उसकी उमराव सिंह और प्रकाश चन्द सैनी के साथ कोई शत्रुता नहीं है । तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए में तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार का उल्लेख है । अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं है कि क्यों अभि. सा.-7 प्रकाश चन्द सैनी का तारीख 21 अगस्त, 1964 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए के बारे में अभिसाक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार, तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए का निष्पादन साबित होता है । प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया है कि वह और उसका भाई भाग सिंह 10 कनाल, 19 मरला भूमि के स्वामी थे । उसने पहले ही उस भूमि में अपने हिस्से का विक्रय कर दिया था । प्रतिवादी ने यह भी कथन किया कि उसके भाई भाग सिंह का हिस्सा अपने भाई का एकमात्र उत्तराधिकारी होने के नाते उसे उत्तराधिकार में मिला था । प्रतिवादी प्रदर्श पी-6 (प्रदर्श डी-1) के पक्ष में भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रमाणित हुआ था । विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए के समय पर भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण प्रतिवादी के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ था, इसलिए, प्रतिवादी मात्र अपना हिस्सा ही तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए द्वारा वादियों के पक्ष में विक्रय किया । प्रतिवादी द्वारा करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए के

निष्पादन से इनकार किया गया किन्तु करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए का निष्पादन अभि. सा.-2 ब्रह्मा नन्द और अभि. सा.-3 दीवान चन्द द्वारा साबित किया गया है । प्रतिवादी ने यह कथन किया है कि उसकी प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए के साक्षियों कमल नयन लेखक, ब्रह्मा नन्द और दीवान चन्द के साथ कोई शत्रुता नहीं है, इसलिए, करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए के निष्पादन के बारे में अभि. सा.-2 और अभि. सा.-3 के कथनों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । इस प्रकार, यह साबित होता है कि प्रतिवादी ने वादियों के पक्ष में तारीख 12 मई, 1967 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए निष्पादित किया था । प्रतिवादी की ओर से यह दलील दी गई कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद होने को साबित करने के बारे में बुरी तरह से असफल रहे हैं जिससे कि उन्हें अधिनियम की धारा 53क का संरक्षण मिल सके । यह निवेदन किया गया कि अधिनियम की धारा 53क प्रतिरक्षा में उपलब्ध है और वादी अधिनियम की धारा 53क का फायदा नहीं ले सकते हैं । प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि प्रतिकूल निष्कर्ष भी वादियों के विरुद्ध निकलता है क्योंकि अभि. सा.-8 सुजान सिंह विशेष मुख्तारनामे के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ था और मामले के समर्थन में कोई अन्य वादी उपस्थित नहीं हुए । प्रदर्श पी-3, वर्ष 1963-64 के लिए जमाबंदी की प्रति है जो खसरा सं. 6, 143 पर कुल 10 कनाल, 19 मरला भूमि पर भाग सिंह और प्रेम सिंह को स्वामियों के रूप में और नाथू राम को अभिधारी के रूप में कब्जा दर्शित करता है । वर्ष 1959-60 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-4 भी वही प्रास्थिति दर्शित करती है । वर्ष 1969-70 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-2 खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट 10 कनाल, 19 मरला भूमि में आधे हिस्से तक प्रेम सिंह का कब्जा दर्शित करती है । प्रेम सिंह के पक्ष में प्रदर्श पी-2 में कब्जे के कालम में परिवर्तन विधिपूर्ण तरीके के आधार पर दर्शित नहीं की गई है । इन परिस्थितियों में, वर्ष 1969-70 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-2 से संबद्ध खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट कुल 10 कनाल, 19 मरला भूमि के आधे हिस्से में प्रेम सिंह का कब्जा दर्शित करने की सत्यता की उपधारणा नहीं की जा सकती है । नाथू राम का खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट कुल 10 कनाल 19 मरला भूमि का निरन्तर कब्जा रहा है । अभिलेख पर यह आया है कि पूर्व में नाथू राम ने प्रेम सिंह के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था जिसे तारीख 17 नवम्बर, 1987 के प्रदर्श पी-7 (प्रदर्श डी-2) द्वारा प्रत्याहरण के रूप में खारिज कर दिया गया था क्योंकि वाद भूमि की

विभाजन कार्यवाहियां चल रही थीं । विभाजन वाद में, सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ ने तारीख 6 मई, 1988 को प्रदर्श पी-8 द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि इस वाद में हक का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 6 मई, 1988 के आदेश को कलक्टर, नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के प्रदर्श पी-9 आदेश द्वारा कायम रखा गया था । तथापि, प्रभागीय आयुक्त ने तारीख 13 मई, 1989 को पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार करने की सिफारिश की । वित्तीय आयुक्त ने तारीख 20 अगस्त, 1991 के प्रदर्श डी-3 आदेश द्वारा सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के तारीख 6 मई, 1988 तथा कलक्टर के तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के आदेश को अपास्त कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी का हक स्पष्ट है और सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को विभाजन की कार्यवाहियों को करने का निदेश दिया । इन परिस्थितियों में, वाद पुनः वादियों द्वारा फाइल किया गया । वादियों ने वाद पत्र में यह अभिवाक् किया कि प्रभागीय आयुक्त और वित्तीय आयुक्त के आदेश अवैध और शून्य हैं । वादियों ने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय किया था । अभि. सा. 1 सुजान सिंह द्वारा यह कथन किया गया है कि वे करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामन्द थे किन्तु प्रतिवादी ने पूर्व में विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया, इस बहाने से कि भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण प्रेम सिंह के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ है जिसे तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रमाणित किया गया किन्तु वाद में भी उसने पुनः एक या कई अन्य बहाने से करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के आधार पर विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया । वादी वाद भूमि के कब्जे में थे । उन्होंने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय किया है । यह साबित किया गया है कि प्रतिवादी ने आरम्भतः तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए निष्पादित किया उसके बाद तारीख 16 फरवरी, 1965 को विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए तथा 19 मई, 1967 को करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए निष्पादित किया । वादियों ने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल की रकम का संदाय कर दिया, प्रतिवादी द्वारा विक्रय-विलेख को निष्पादित करने के अलावा वादियों द्वारा करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के आधार पर कुछ भी नहीं किया गया । वादी पहले से ही वाद भूमि के कब्जे में थे और उन्होंने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अधीन उस पर कब्जा रखा । वाद पत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामन्द थे और हैं । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह ने साक्षी कठघरे में भी संविदा का अपने भाग का पालन करने

के लिए तैयार और रजामन्द होने की बात दोहराई । उसने यह कथन किया कि अतिशेष विक्रय प्रतिफल का भी संदाय कर दिया गया था । प्रतिवादी ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए से इनकार किया और करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए से इनकार करने का मिथ्या अभिवाक् किया जिसे वादियों द्वारा साबित किया गया है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए, सुरजन सिंह के पक्ष में निष्पादित नाथू राम का रजिस्ट्रीकृत विशेष मुख्तारनामा है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए में नाथू राम ने अपनी आयु 95 वर्ष दी है । यह कथन किया गया कि नाथू राम बूढ़ा था और न्यायालय में आने-जाने की स्थिति में नहीं था । मुख्तारनामे को शपथ पर कथन करने के लिए प्राधिकृत किया गया था । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह ने तारीख 21 फरवरी, 1997 को वादी नाथू राम के विशेष मुख्तारनामे के रूप में विचारण न्यायालय में अपना कथन किया था । अभि. सा. 8 ने यह कथन किया कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द थे किन्तु प्रतिवादी ने किसी न किसी बहाने से मामले को लटकाए रखा, उसका पिता बीमार था और वह चलने-फिरने की स्थिति में नहीं था, उसका एक फेफड़ा कार्य कर रहा था । वह देख नहीं सकता था । नाथू राम की मृत्यु तारीख 26 जुलाई, 1997 को हो गई थी । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह, वादी नाथू राम का पुत्र होने के नाते पर-व्यक्ति नहीं है । वह उस अपवाद के अधीन आता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मान कौर वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । नाथू राम की मृत्यु के पश्चात् अभि. सा. 8 की प्रास्थिति भिन्न हो गई है । इन परिस्थितियों में, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने वाद में वादियों की परीक्षा नहीं करने के प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है । तारीख 6 मई, 1988 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ तथा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 को कलक्टर नालागढ़ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी द्वारा फाइल विभाजन वाद में हक का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 13 जुलाई, 1989 को प्रभागीय आयुक्त और तारीख 20 अगस्त, 1991 को वित्तीय आयुक्त ने यह अभिनिर्धारित किया था कि इसमें हक का प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है । वाद पत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि राजस्व अधिकारियों के आदेश अवैध, अकृत और शून्य हैं तथा प्रतिवादी विभाजन का हकदार नहीं है । वादियों ने धारा 53-क के अधीन संरक्षण का दावा करते हुए यह अभिवचन किया कि प्रतिवादी को वाद भूमि का विभाजन करने के लिए दावा करने का कोई अधिकार नहीं है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए तथा अधिनियम की धारा 53-क का गलत

अर्थान्वयन, निर्वचन किया है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने किन्हीं वादियों की परीक्षा नहीं करने के लिए वादियों के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष गलत तौर पर निकाला है और उन्होंने विद्वान् विचारण न्यायालय के सकारण निर्णय को उलटने में त्रुटि की है । वादियों ने अधिनियम की धारा 53-क के अवयवों को साबित कर दिया है और इसलिए वे अधिनियम की धारा 53-क का संरक्षण पाने के हकदार हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उन वादियों को सही ही अधिनियम की धारा 53-क का संरक्षण दिया है जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा गलत तौर पर इनकार कर दिया गया था । विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 से 5 अपीलार्थियों के पक्ष में विनिश्चित किए जाते हैं । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 31, 35 और 39)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 13 एस. सी. सी. 232 : **ननजेगोदा और एक अन्य** बनाम **गंगम्मा और अन्य ;**	28
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 512 : **मान कौर (मृत)** मार्फत **उसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **हरतार सिंह संघा ;**	33
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 223 : **एफ. जी. पी. लिमिटेड** बनाम **सलेह हुसैनी डाक्टर और एक अन्य ;**	27
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 705 : **डी. एस. परवथम्मा** बनाम **ए. श्रीनिवासन ;**	26
[1996]	ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1088 : **पटेल नटवरलाल रूपजी** बनाम **श्री कंद ग्रुप खेती विशायक और एक अन्य ;**	30
[1994]	ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 254 : **ब्रह्माजी** उर्फ **बब्बन बाजीराव शिंदे** बनाम **जगन्नाथ शंकर जाधव अब मृत** मार्फत **उसके विधिक उत्तराधिकारीगण भानुदास जगन्नाथ जाधव इत्यादि ;**	37

[1988]	ए. आई. आर. 1988 बाम्बे 296 : **लक्ष्मण पांडु खाडके** बनाम **पन्धारीनाथ पुरुषोत्तम राणे ;**	38
[1982]	ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 989 : **सरदार गोविन्दराव महादिक और एक अन्य** बनाम **देवी सहाय और अन्य ;**	29
[1982]	ए. आई. आर. 1982 इलाहाबाद 304 ; **राघवेन्द्र नारायण शाह** बनाम **मोती लाल गुप्ता और अन्य ;**	36
[1981]	ए. आई. आर. 1981 (सिक्किम) 1 : **तशेरिंग ओन्दी भूटिया** बनाम **सोनम् पिन्तसो और अन्य ;**	36
[1950]	ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 1 : **माणिक लाल मनसुख भाई** बनाम **हारमुस्जी जमशेदजी गिनवाला एण्ड सन्स ।**	32

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2000 की नियमित द्वितीय अपील सं. 624.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री रमाकांत शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ बी. सी. वर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – वादियों ने यह अपील विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोलन कैम्प, नालागढ़ द्वारा सिविल अपील सं. 4-एन. एल./13/1999 में पारित तारीख 16 अगस्त, 2000 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की है जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ द्वारा 1991 की सिविल वाद सं. 284 में पारित तारीख 14 दिसम्बर, 1998 के निर्णय और डिक्री को उलट दिया था । पक्षकारों में से कुछ की मृत्यु हो गई और इसलिए अभिलेख पर उनके विधिक प्रतिनिधियों को लाया गया है । इस निर्णय में पक्षकारों को वादियों और प्रतिवादियों के रूप में निर्दिष्ट किया गया है ।

2. संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वादियों ने यह घोषणा करने के लिए एक वाद फाइल किया था कि वे ग्राम रंगुवाल, तहसील नालागढ़ में स्थित 10 कनाल, 19 मरला भूमि के ऊपर अधिभोगी थे और अभिधृति पर अधिभोगी के रूप में प्रवेश किए थे । प्रतिवादी ने तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक विक्रय करार किया और वादियों को पूर्वोक्त भूमि का विक्रय 2,500/- रुपए के प्रतिफल में करने के लिए सहमत हुआ था । तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार के आधार पर प्रतिवादी ने अपने आधे हिस्से 5 कनाल 9 मरला भूमि को तारीख 16 फरवरी, 1965 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा वादियों को विक्रय कर दिया था ।

3. भूमि का शेष आधार हिस्सा जो प्रतिवादी के भाई भाग सिंह के नाम में अभिलिखित था, को प्रतिवादी द्वारा अतिशेष विक्रय प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 12 मई, 1967 के करार द्वारा वादियों के पक्ष में विक्रय करने के लिए सहमत हुआ था । प्रतिवादी ने तारीख 12 मई, 1967 के करार को निष्पादित करते समय तारीख 21 अगस्त, 1964 के पूर्ववर्ती करार की भी पुष्टि कर दी थी । द्वितीय करार के निष्पादन के समय पर विक्रय-विलेख वादियों के पक्ष में निष्पादित नहीं किया गया क्योंकि प्रतिवादी के भाई भाग सिंह जिसकी मृत्यु तारीख 21 मई, 1962 को हो गई थी, का उत्तराधिकार नामांतरण प्रतिवादी के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ था ।

4. वादियों ने यह भी अभिवाक् किया कि वे तारीख 21 अगस्त, 1964 और तारीख 12 मई, 1967 के करारों के भागिक पालन में वाद भूमि के कब्जे में है । वादी संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे तथा हैं । वे वाद भूमि के कब्जे में हैं ।

5. वादियों ने यह वैकल्पिक अभिवाक् किया कि वे हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वाद भूमि के स्वामी हो गए क्योंकि वे गल्ला बटाई का संदाय करने पर वर्ष 1954 में प्रतिवादी द्वारा गैर-अधिभोगी अभिधृति के रूप में प्रवेश कराए गए थे । प्रतिवादी वाद भूमि का विभाजन कराने का हकदार नहीं है क्योंकि हक का प्रश्न, सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ द्वारा तारीख 6 मई, 1988 को अभिनिर्धारित प्रश्न में भी वैसा ही प्रश्न अन्तर्वलित था और तत्पश्चात् कलक्टर नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 को अभिनिर्धारित प्रश्न में भी वैसा ही प्रश्न अन्तर्वलित था । प्रतिवादी के पक्ष में वाद भूमि का विभाजन करने के लिए प्रभागीय आयुक्त द्वारा तारीख 13 जुलाई, 1989

और वित्तीय आयुक्त का तारीख 20 अगस्त, 1991 का पश्चात्वर्ती आदेश गलत, अवैध, अकृत और शून्य है ।

6. प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया । उसने वाद कायम रखने, परिसीमा अवधि, सुने जाने का अधिकार, वाद हेतुक का अभाव के बारे में प्रारम्भिक आक्षेप किया । गुणागुणों पर, प्रतिवादी ने इस बात से इनकार किया कि वादी, वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी है । प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया कि उसने तारीख 16 फरवरी, 1965 को वादी के पक्ष में वाद भूमि में अपने हिस्से का विक्रय कर दिया था । उसने अपने भाई के नाम में अभिलिखित हिस्से का विक्रय करने के लिए तारीख 12 मई, 1967 के करार से इनकार किया है । उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने वादियों से अपने भाई के हिस्से के संबंध में विक्रय प्रतिफल प्राप्त किया था । उसने इस बात से भी इनकार किया कि वादी वाद भूमि में अभिधारी के रूप में कभी प्रवेश किए थे । प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया कि वह अपने भाई के आधे हिस्से की सीमा तक वाद भूमि में सह-स्वामी है और उसे उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकार है । वादियों ने प्रत्युत्तर फाइल किया और प्रतिवादी की प्रतिरक्षा का विरोध करते हुए अपने आधार को पुनः दोहराया ।

7. प्रत्युत्तर फाइल किया गया । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

(1) क्या वादी सं. 1 वर्ष 1954 में वाद भूमि में गैर-अधिभोग अभिधारी के रूप में प्रवेश किया था, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(2) क्या प्रतिवादी, वादियों को वाद भूमि विक्रय करने के लिए सहमत हुआ था, जैसा कि अभिकथित है और विक्रय प्रतिफल प्राप्त किया था । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(3) क्या वादी संविदा के भागिक पालन के द्वारा कब्जे सहित स्वामी हो गए हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(4) यदि विवाद्यक सं. 2 को सकारात्मक साबित किया जाता है तो क्या वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे/हैं ?

(5) क्या वादी प्रतिकूल कब्जा द्वारा वाद भूमि में कब्जे सहित

स्वामी हो गए हैं ?

(6) क्या वाद भूमि का विभाजन करने के लिए सहायक आयुक्त, प्रथम श्रेणी नालागढ़ द्वारा पारित तारीख 6 मई, 1988 का आदेश और कलक्टर, नालागढ़, प्रभागीय आयुक्त और वित्तीय आयुक्त द्वारा पारित पश्चात्‌वर्ती आदेश गलत और अवैध हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(7) क्या वाद वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(8) क्या वादियों को वाद सुने जाने का अधिकार है ?

(9) क्या वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है ?

(10) क्या वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23, नियम 1 के उपबंधों के अधीन दूषित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(11) क्या वादी अपने कार्य और आचरण द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित है ?

(12) क्या वादियों के पास वाद हेतुक है ?

(13) क्या वाद, न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकित नहीं है ?

(14) अनुतोष ।

विवाद्यक सं. 1, 5, 9 से 11, 13 का उत्तर नकारात्मक दिया गया, विवाद्यक सं. 2, 3, 6, 8, 12 का उत्तर सकारात्मक दिया गया, विवाद्यक सं. 7 का उत्तर भागतः सकारात्मक दिया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद को भागतः डिक्री कर दिया । वादियों द्वारा अपने हक की घोषणा के लिए की गई प्रार्थना को नामंजूर कर दिया । तारीख 14 दिसम्बर, 1998 की स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री द्वारा प्रतिवादियों ने वाद भूमि के ऊपर वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप करने से और वादियों के विरुद्ध वाद भूमि में किसी अधिकार का दावा करने से अवरुद्ध कर दिया गया ।

8. निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादी ने सिविल अपील सं. 4-एन. एल./13/1999 और वादियों ने सिविल अपील सं. 5-एन. एल./13/1999 फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने तारीख 16 अगस्त, 2000 के एक ही निर्णय द्वारा दोनों अपीलों का विनिश्चय किया । प्रतिवादी की

सिविल अपील सं. 4-एन. एल./13/1999 स्वीकार कर ली । विचारण न्यायालय के तारीख 14 दिसम्बर, 1988 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और वादियों का वाद खारिज कर दिया । सिविल अपील सं. 5-एन. एल./13/1999 को खारिज कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी 1/2 हिस्से तक और वादी 1/2 हिस्से तक ग्राम रंगुवाल में स्थित खसरा सं. 6, 143, किटा 2, 10 कनाल 19 मरला भूमि में समाविष्ट वाद भूमि में कब्जे सहित संयुक्त स्वामी हैं ।

9. वादियों ने तारीख 16 अगस्त, 2000 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध द्वितीय अपील फाइल की जिसे निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया :–

(1) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-क के उपबंधों पर विचार नहीं करने में सही था ?

(2) क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री, तारीख 12 मई, 1967 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के साथ ही तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए के साथ ही तारीख 21 अगस्त, 1964 के विक्रय करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के पूर्णरूपेण गलत परिशीलन, गलत निर्वचन के साथ ही गलत मूल्यांकन का परिणाम है ?

(3) क्या आक्षेपित निर्णय और डिक्री, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 और 111(छ) [अब 114(छ)] के उपबंधों के पूर्णरूपेण गलत परिशीलन, गलत निर्वचन के साथ ही गलत मूल्यांकन का परिणाम है ?

(4) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही है कि प्रतिवादी वर्ष 1964 और वर्ष 1967 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के द्वारा अपने भाई भाग सिंह के हिस्से के संबंध में करार नहीं किया था, विनिर्दिष्टतः तब जब कि उक्त भाग सिंह की मृत्यु तारीख 21 मई, 1962 को हो गई थी और प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ही उसकी संपदा का एक मात्र विधिक उत्तराधिकारी था ?

(5) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय विचारण न्यायालय

द्वारा अभिलिखित सुस्पष्ट निष्कर्षों को अपास्त किए बिना साथ ही संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-क के अधीन अपीलार्थियों के कब्जे को संरक्षित किए बिना अपीलार्थियों का वाद खारिज करने में सही है ?

(6) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय, हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974 के उपबंधों के प्रवर्तन द्वारा अथवा वैकल्पिक रूप में प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद संपत्ति का स्वामी होने के नाते अपीलार्थियों के दावे से इनकार करने के लिए कोई कारण नहीं देने में सही है ?

10. मामले को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया । वादियों/ अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय के सकारण निर्णय को उलटने में गलती की है । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 53-क और करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए तथा प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए का गलत अर्थान्वयन एवं गलत निर्वचन किया गया है । साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 और धारा 114(छ) का समुचित तौर पर मूल्यांकन नहीं किया गया है । मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का गलत अर्थान्वयन एवं गलत निर्वचन किया गया है । वादियों के वाद को डिक्री करने के लिए निवेदन किया गया है ।

11. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है । यह निवेदन किया गया कि वादियों ने करार, अधिनियम की धारा 53-क, गैर-अधिभोगी अभिधृति और प्रतिकूल कब्जे का नकारात्मक अभिवाक् किया है । वादी, अधिनियम की धारा 53-क के अधीन अपने मामले को सिद्ध करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं । वादी, तैयार और रजामंद रहने के अपने पक्षकथन को सिद्ध नहीं कर पाए हैं । करार जिसके आधार पर वाद फाइल किया गया है, वह तारीख 12 मई, 1967 का है । वाद तारीख 9 अक्तूबर, 1991 को फाइल किया गया । विभाजन के आदेशों, राजस्व अधिकारियों द्वारा किए गए आदेशों को कोई विनिर्दिष्ट चुनौती नहीं दी गई है । अपील खारिज करने के लिए निवेदन किया गया है ।

12. विधि का सारवान् प्रश्न सं. 6 को प्रथमतः विचार के लिए लिया जाता है । विवाद्यक सं. 1 यह है कि क्या वादी सं. 1 वर्ष 1954 में वाद

भूमि में गैर-अधिभोगी अभिधारी के रूप में प्रवेश किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 पर यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षकार इस बात के लिए सहमत थे कि न्यायालय के पास इस विवाद्यक को अवधारित करने और वादियों के विरुद्ध विवाद्यक सं. 1 पर विनिश्चय करने के लिए कोई अधिकारिता नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष वादी इस बात के लिए सहमत थे कि उनके द्वारा फाइल किए गए वाद में अभिधृति का प्रश्न नहीं उठाया जाएगा । इसलिए, इन परिस्थितियों में यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वाद भूमि में अभिधारी के रूप में वादियों के प्रवेश का प्रश्न और उसके बाद वे हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् स्वामी हो गए, का प्रश्न विचारित नहीं किया जा सकता है, अतएव, विधि का सारवान् प्रश्न सं. 6 का विनिश्चय वादियों के विरुद्ध किया जाता है ।

13. विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 से 5 एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए, इन सभी पर एक साथ विचार किया जाता है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए तारीख 21 अगस्त, 1964 का करार है, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए तारीख 16 फरवरी, 1965 का विक्रय-विलेख है और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए तारीख 12 मई, 1967 का करार है । वादियों ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के आधार पर वाद फाइल किया है । वादियों का पक्षकथन यह है कि भाग सिंह और प्रेम सिंह प्रतिवादी भाई हैं और सह-स्वामी हैं । प्रतिवादी ने वादी के साथ 2,500/- रुपए के प्रतिफल में 10 कनाल, 19 मरला भूमि का विक्रय करने के लिए तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए किया । विक्रय-विलेख, तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार के आधार पर निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रतिवादी प्रेम सिंह के भाई भाग सिंह की मृत्यु यद्यपि तारीख 21 मई, 1962 को हो गई थी किन्तु उसके उत्तराधिकार का नामांतरण नहीं हुआ था इसलिए, प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में अपने हिस्से का विक्रय तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए द्वारा किया । प्रतिवादी ने उस हिस्से का विक्रय करने के लिए वादियों से तारीख 12 मई, 1967 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए निष्पादित किया जो उसके भाई भाग सिंह से आना था । भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण सं. 348 प्रदर्श पी-6 (प्रदर्श डी-1) तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रतिवादियों के पक्ष में प्रमाणित हुआ । वादियों ने प्रतिवादी को सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय कर दिया था तथा वे संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद

थे । किन्तु, प्रतिवादी ने तारीख 12 मई, 1967 के करार के आधार पर वादियों के पक्ष में विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया ।

14. वादी ने विभाजन वाद फाइल किया । सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ ने तारीख 6 मई, 1988 को यह अभिनिर्धारित प्रदर्श पी-8 किया कि वाद भूमि में हक का प्रश्न और विभाजन से इनकार करने का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 6 मई, 1988 के आदेश को कलक्टर, नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के आदेश प्रदर्श पी-9 द्वारा कायम रखा गया । तथापि, प्रभागीय आयुक्त ने तारीख 13 जुलाई, 1989 के आदेश द्वारा यह सिफारिश की कि सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को विभाजन वाद विनिश्चित करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि प्रतिवादी का हक स्पष्ट है । प्रभागीय आयुक्त द्वारा की गई तारीख 13 जुलाई, 1989 की सिफारिश को वित्तीय आयुक्त द्वारा तारीख 20 अगस्त, 1991 को प्रदर्श डी-3 आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया था । इसके पश्चात्, वादियों ने तारीख 9 अक्तूबर, 1991 को वाद फाइल किया ।

15. अभि. सा. 1 अरविन्द चन्द, कमल नयन, याचिका लेखक का पुत्र है । उसने यह कथन किया कि उसके पिता की मृत्यु वर्ष 1992 में हुई थी । उसने यह कथन किया कि तारीख 5 मई, 1967 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए उसके पिता द्वारा लिखा गया है । अभि. सा. 2 ब्रह्मा नन्द ने यह कथन किया कि उसने और दीवान चन्द ने वर्ष 1967 में नाथू राम के पक्ष में प्रेम सिंह द्वारा निष्पादित करार पर हस्ताक्षर किया था । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को न्यायालय परिसर में लिखा गया था । अभि. सा. 3 दीवान चन्द ने यह कथन किया कि उसकी उपस्थिति में और ब्रह्मा नन्द की उपस्थिति में पक्षकारों ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पर हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 4 जगदीश चन्द, रजिस्ट्रीकरण लिपिक ने नाथू राम के पक्ष में प्रेम सिंह द्वारा निष्पादित तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए की प्रति को साबित किया है । अभि. सा. 5 प्रताप सिंह ने यह कथन किया कि प्रेम सिंह ने नाथू राम के पक्ष में एक विक्रय-विलेख निष्पादित किया था । उसने और अन्य साक्षी बन्ता नम्बरदार ने विक्रय-विलेख पर हस्ताक्षर किए थे । विक्रय-विलेख की प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए है । अभि. सा. 1 की पुनः अभि. सा. 6 के रूप में परीक्षा हुई और उसने विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए की प्रति पर अपने पिता कमल नयन, याचिका लेखक के हस्ताक्षर की शनाख्त की ।

16. अभि. सा. 7 प्रकाश चन्द सैनी, सेवानिवृत्त सेशन जज है । उन्होंने यह कथन किया कि वे वर्ष 1964 में दिल्ली में उप-न्यायाधीश थे । वे नाथू राम और प्रेम सिंह को जानते हैं जो उनके समक्ष आए थे । नाथू राम ने यह बताया था कि वह प्रेम सिंह की कुछ भूमि को जोत रहा है और वह उस भूमि को क्रय करना चाहता है । उन्होंने उसे अगले दिन आने के लिए कहा । वे अगले दिन आए, याचिका लेखक ने करार लिखा जिसे करार के दोनों पक्षकारों को पढ़कर सुनाया गया और पक्षकारों ने उस पर हस्ताक्षर किए तथा अंगूठा निशान लगाया । उमराव सिंह ने उसकी उपस्थिति के साथ ही पक्षकारों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए । उन्होंने मूल करार देखा है जिस पर उनके हस्ताक्षर हैं और करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए है ।

17. प्रतिवादी साक्षी-1 ने यह कथन किया है कि विवादित भूमि 5 कनाल 10 मरला है और वह उक्त भूमि का स्वामी है । उसने उक्त भूमि का विभाजन कराने के लिए एक आवेदन दिया था जिसे मंजूर कर लिया गया था । उक्त भूमि उसके भाई भाग सिंह से उसके पास उत्तराधिकार में आई है । उसने अपनी भूमि वादियों को विक्रय की थी । उसने वाद भूमि में अभिधारियों के रूप में वादियों को कभी भी प्रवेश नहीं कराया था । उसने वाद भूमि के वादियों के साथ कोई करार निष्पादित नहीं किया था । वादियों ने पूर्व में भी वाद फाइल किया था जिसे उन्होंने वापस ले लिया था । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया कि दोनों भाई 10 कनाल 19 मरला भूमि के स्वामी थे, उसके भाई की मृत्यु संतानरहित और अविवाहित हो गई थी । वह ही एकमात्र अपने भाई का उत्तराधिकारी है । उसने यह कथन किया कि उसने वादियों के पक्ष में तारीख 16 फरवरी, 1965 का विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए निष्पादित किया था । उसने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पर अपना हस्ताक्षर होने से इनकार किया । उसने यह कथन किया कि उसकी ब्रह्मा नन्द, दीवान चन्द और कमल नयन के साथ कोई शत्रुता नहीं है । उसने इस बात से इनकार किया कि उसने तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार निष्पादित किया था । उसने इस बात से अपनी अनभिज्ञता दर्शित की कि प्रकाश चन्द सैनी दिल्ली में निष्पादित करार का एक साक्षी है । उसकी प्रकाश चन्द सैनी और उमराव सिंह के साथ कोई शत्रुता नहीं है ।

18. प्रतिवादी ने तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श

पी. डब्ल्यू. 4/ए के निष्पादन को स्वीकार किया है । अभि. सा. 7 प्रकाश चन्द सैनी ने तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए को साबित किया है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए का अन्य साक्षी उमराव सिंह है । प्रतिवादी ने यह कथन किया कि उसकी उमराव सिंह और प्रकाश चन्द सैनी के साथ कोई शत्रुता नहीं है । तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए में तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार का उल्लेख है । अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं है कि क्यों अभि. सा. 7 प्रकाश चन्द सैनी का तारीख 21 अगस्त, 1964 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए के बारे में अभिसाक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार, तारीख 21 अगस्त, 1964 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए का निष्पादन साबित होता है ।

19. प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया है कि वह और उसका भाई भाग सिंह 10 कनाल 19 मरला भूमि के स्वामी थे । उसने पहले ही उस भूमि में अपने हिस्से का विक्रय कर दिया था । प्रतिवादी ने यह भी कथन किया कि उसके भाई भाग सिंह का हिस्सा अपने भाई का एकमात्र उत्तराधिकारी होने के नाते उसे उत्तराधिकार में मिला था । प्रतिवादी प्रदर्श पी-6 (प्रदर्श डी-1) के पक्ष में भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रमाणित हुआ था । विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए के समय पर भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण प्रतिवादी के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ था, इसलिए, प्रतिवादी मात्र अपना हिस्सा ही तारीख 16 फरवरी, 1965 के विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए द्वारा वादियों के पक्ष में विक्रय किया ।

20. प्रतिवादी द्वारा करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के निष्पादन से इनकार किया गया किन्तु करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए का निष्पादन अभि. सा. 2 ब्रह्मा नन्द और अभि. सा. 3 दीवान चन्द द्वारा साबित किया गया है । प्रतिवादी ने यह कथन किया है कि उसकी प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के साक्षियों कमल नयन लेखक, ब्रह्मा नन्द और दीवान चन्द के साथ कोई शत्रुता नहीं है, इसलिए, करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के निष्पादन के बारे में अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथनों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है । इस प्रकार, यह साबित होता है कि प्रतिवादी ने वादियों के पक्ष में तारीख 12 मई, 1967 का करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए निष्पादित किया था ।

21. प्रतिवादी की ओर से यह दलील दी गई कि वादी संविदा के

अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद होने को साबित करने के बारे में बुरी तरह से असफल रहे हैं जिससे कि उन्हें अधिनियम की धारा 53-क का संरक्षण मिल सके । यह निवेदन किया गया कि अधिनियम की धारा 53-क प्रतिरक्षा में उपलब्ध है और वादी अधिनियम की धारा 53-क का फायदा नहीं ले सकते हैं । प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि प्रतिकूल निष्कर्ष भी वादियों के विरुद्ध निकलता है क्योंकि अभि. सा. 8 सुजान सिंह विशेष मुख्तारनामे के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ था और मामले के समर्थन में कोई अन्य वादी उपस्थित नहीं हुए ।

22. अधिनियम की धारा 53-क सुसंगत समय पर इस प्रकार थी :–

"53-क. **भागिक पालन** – जहां कि कोई व्यक्ति किसी स्थावर सम्पत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने के लिए अपने द्वारा या अपनी ओर से हस्ताक्षरित लेखबद्ध ऐसी संविदा करता है जिससे उस अन्तरण को गठित करने के लिए आवश्यक निबन्धन युक्तियुक्त निश्चय के साथ अभिनिश्चित किए जा सकते हैं,

और अन्तरिती ने संविदा के भागिक पालन में उस सम्पत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है । अन्तरिती, जिसका कब्जा पहले से ही है, संविदा के भागिक पालन में अपना कब्जा चालू रखता है और उस संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर चुका है,

और अन्तरिती संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है, या पालन करने के लिए रजामन्द है,

वहां इस बात के होते हुए भी कि जहां कि अन्तरण की कोई लिखत है, वहां अन्तरण किसी तत्समय-प्रवृत्त-विधि द्वारा उसके लिए विहित रीति से पूरा नहीं किया गया है, अन्तरक या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति अन्तरिती या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध उस सम्पत्ति के विषय में, जिस पर अन्तरिती ने कब्जा ले लिया है या चालू रखा है, कोई भी ऐसा अधिकार, जो संविदा के निबन्धनों द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित अधिकार से भिन्न है, प्रवर्तित कराने से विवर्जित होगा :

परन्तु इस धारा की कोई भी बात ऐसे संप्रतिफल अन्तरिती के

अधिकारों पर प्रभाव नहीं डालेगी जिसे उस संविदा या उसके भागिक पालन की कोई सूचना न हो ।"

23. प्रदर्श पी-3, वर्ष 1963-64 के लिए जमाबंदी की प्रति है जो खसरा सं. 6, 143 पर कुल 10 कनाल 19 मरला भूमि पर भाग सिंह और प्रेम सिंह को स्वामियों के रूप में और नाथू राम को अभिधारी के रूप में कब्जा दर्शित करता है । वर्ष 1959-60 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-4 भी वही प्रास्थिति दर्शित करती है । वर्ष 1969-70 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-2 खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट 10 कनाल 19 मरला भूमि में आधे हिस्से तक प्रेम सिंह का कब्जा दर्शित करती है । प्रेम सिंह के पक्ष में प्रदर्श पी-2 में कब्जे के कालम में परिवर्तन विधिपूर्ण तरीके के आधार पर दर्शित नहीं की गई है । इन परिस्थितियों में, वर्ष 1969-70 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-2 से संबद्ध से खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट कुल 10 कनाल 19 मरला भूमि के आधे हिस्से में प्रेम सिंह का कब्जा दर्शित करने की सत्यता की उपधारणा नहीं की जा सकती है । नाथू राम का खसरा सं. 6, 143 में समाविष्ट कुल 10 कनाल 19 मरला भूमि का निरन्तर कब्जा रहा है ।

24. अभिलेख पर यह आया है कि पूर्व में नाथू राम ने प्रेम सिंह के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था जिसे तारीख 17 नवम्बर, 1987 के प्रदर्श पी-7 (प्रदर्श डी-2) द्वारा प्रत्याहरण के रूप में खारिज कर दिया गया था क्योंकि वाद भूमि की विभाजन कार्यवाहियां चल रही थीं । विभाजन वाद में, सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ ने तारीख 6 मई, 1988 को प्रदर्श पी-8 द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि इस वाद में हक का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 6 मई, 1988 के आदेश को कलक्टर, नालागढ़ द्वारा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के प्रदर्श पी-9 आदेश द्वारा कायम रखा गया था । तथापि, प्रभागीय आयुक्त ने तारीख 13 मई, 1989 को पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार करने की सिफारिश की । वित्तीय आयुक्त ने तारीख 20 अगस्त, 1991 के प्रदर्श डी-3 आदेश द्वारा सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी के तारीख 6 मई, 1988 तथा कलक्टर के तारीख 11 अक्तूबर, 1988 के आदेश को अपास्त कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी का हक स्पष्ट है और सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी को विभाजन की कार्यवाहियों को करने का निदेश दिया । इन परिस्थितियों में, वाद पुनः वादियों द्वारा फाइल किया गया ।

25. वादियों ने वाद पत्र में यह अभिवाक् किया कि प्रभागीय आयुक्त

और वित्तीय आयुक्त के आदेश अवैध और शून्य हैं । वादियों ने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय किया था । अभि. सा. 1 सुजान सिंह द्वारा यह कथन किया गया है कि वे करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ ए के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामन्द थे किन्तु प्रतिवादी ने पूर्व में विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया, इस बहाने से कि भाग सिंह के उत्तराधिकार का नामांतरण प्रेम सिंह के पक्ष में प्रमाणित नहीं हुआ है जिसे तारीख 22 अगस्त, 1967 को प्रमाणित किया गया किन्तु वाद में भी उसने पुनः एक या कई अन्य बहाने से करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ ए के आधार पर विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया । वादी वाद भूमि के कब्जे में थे । उन्होंने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय किया है ।

26. **डी. एस. परवथम्मा** बनाम **ए. श्रीनिवासन**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "साम्यिक भागिक पालन के सिद्धांत के मुख्य लक्षण जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित धारा 53-क में कानूनी तौर पर उपांतरित और निगमित है, इस मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं – (i) कि अंतरिती ने संविदा के भागिक पालन में उस सम्पत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है या अन्तरिती जिसका कब्जा पहले से ही है, संविदा के भागिक पालन में अपना कब्जा चालू रखता है और उस संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर चुका है । (ii) कि अन्तरिती संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है या पालन करने के लिए रजामन्द है और (iii) कि भागिक पालन का कोई अभिवाक् ऐसे सप्रतिफल अन्तरिती के विरुद्ध उपलब्ध नहीं है जिसे उस संविदा या उसके भागिक पालन की कोई सूचना न हो ।"

27. **एफ. जी. पी. लिमिटेड** बनाम **सलेह हुसैनी डाक्टर और एक अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 53-क के मुख्य अवयवों को निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-क के कतिपय अवयव हैं और हमारे निर्णय में वे निम्नलिखित हैं –
>
> (1) अचल संपत्ति के अंतरण की संविदा,

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 705.
[2] (2009) 10 एस. सी. सी. 223.

(2) अंतरण प्रतिफलार्थ होना चाहिए,

(3) संविदा लिखत में होना चाहिए,

(4) यह अन्तरक या उसकी ओर से हस्ताक्षरित होना चाहिए,

(5) संविदा के निबंधन युक्तियुक्त निश्चय के साथ लिखत में अभिनिश्चित किए जाने चाहिए,

(6) अन्तरिती का सम्पूर्ण संपत्ति या उसके भाग पर कब्जा होना चाहिए या यदि पहले से ही कब्जा है तो कब्जा चालू रहना चाहिए,

(7) ऐसा कब्जा लेना या चालू रखना, संविदा के भागिक पालन में होना चाहिए,

(8) अन्तरिती द्वारा संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य करना चाहिए, और

(9) उसे संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया जाना चाहिए या पालन करने के लिए रजामन्द होना चाहिए ।"

28. **ननजेगोदा और एक अन्य** बनाम **गंगम्मा और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम की धारा 53-क को नोटिस में लिया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"पूर्वोक्त उपबंधों के साधारण परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि एक पक्षकार इस उपबंध का सहारा तभी ले सकता है जब वह निम्नलिखित शर्तों को पूरी करता है । वे यह हैं :–

(i) संविदा, अन्तरक द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित लेखबद्ध में होना चाहिए,

(ii) अन्तरक को संविदा के अधीन अचल संपत्ति का कब्जा प्राप्त करना चाहिए,

(iii) अन्तरक द्वारा संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य करना चाहिए, और

(iv) अन्तरक को संविदा के अपने भाग का या तो पालन

[1] (2011) 13 एस. सी. सी. 232.

करना चाहिए या संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए रजामन्द होना चाहिए ।

एक पक्षकार इस उपबंध का लाभ तभी ले सकता है जब वह पूर्वोक्त सभी शर्तों को पूरी करता है । सभी आधार तत्व अनिवार्य हैं और एक पक्षकार उन शर्तों में से किसी एक या अधिक को पूरी करने से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है ।"

29. **सरदार गोविन्दराव महादिक और एक अन्य** बनाम **देवी सहाय और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"धारा 53-क की अपेक्षाएं ये हैं कि भागिक पालन का फायदा लेने का दावा करने वाले व्यक्ति को संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामन्द होना दर्शित करना चाहिए और यदि यह दर्शित होता है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द नहीं है तो वह भागिक पालन के सिद्धांत का संरक्षण पाने के लिए अर्हित नहीं होगा ।"

30. **पटेल नटवरलाल रूपजी** बनाम **श्री कंद ग्रुप खेती विशायक और एक अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"अधिनियम की धारा 53-क यह उपबंधित करती है कि जहां कि कोई व्यक्ति किसी स्थावर सम्पत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने के लिए अपने द्वारा या अपनी ओर से हस्ताक्षरित लेखबद्ध ऐसी संविदा करता है जो 'अन्तरण' गठित करता है और अन्तरिती ने संविदा के भागिक पालन में उस सम्पत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है । अन्तरिती, जिसका कब्जा पहले से ही है, संविदा के भागिक पालन में अपना कब्जा चालू रखता है और उस संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर चुका है, और अन्तरिती संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है, या पालन करने के लिए रजामन्द है, वहां इस बात के होते हुए भी कि जहां कि अन्तरण की कोई लिखत है, वहां पर अन्तरण किसी तत्समय-प्रवृत्त-विधि द्वारा

[1] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 989.
[2] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1088.

उसके लिए विहित रीति से पूरा नहीं किया गया है, अन्तरक या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति अन्तरिती या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध उस सम्पत्ति के विषय में, जिस पर अन्तरिती ने कब्जा ले लिया है या चालू रखा है, कोई भी ऐसा अधिकार, जो संविदा के निबंधनों द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित अधिकार से भिन्न है, प्रवर्तित कराने से विवर्जित होगा ।"

माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि :–

"............इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि धारा 53-क अन्तरिती को कोई हक प्रदत्त नहीं करता है किन्तु अन्तरक पर यह कानूनी विवर्जन अधिरोपित करता है कि वह अन्तरिती से स्थावर संपत्ति का कब्जा लेने की ईप्सा करें । इसी प्रकार, धारा 53-क कब्जाधारी प्रतिवादी को कोई हक प्रदत्त नहीं करता है न ही वह हक पर कोई वाद कायम रख सकता है ।"

31. यह साबित किया गया है कि प्रतिवादी ने आरम्भतः तारीख 21 अगस्त, 1964 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए निष्पादित किया उसके बाद तारीख 16 फरवरी, 1965 को विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए तथा 19 मई, 1967 को करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए निष्पादित किया । वादियों ने सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल की रकम का संदाय कर दिया, प्रतिवादी द्वारा विक्रय-विलेख को निष्पादित करने के अलावा वादियों द्वारा करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के आधार पर कुछ भी नहीं किया गया । वादी पहले से ही वाद भूमि के कब्जे में थे और उन्होंने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अधीन उस पर कब्जा रखा । वाद पत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामन्द थे और हैं । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह ने साक्षी कठघरे में भी संविदा का अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द होने की बात दोहराई । उसने यह कथन किया कि अतिशेष विक्रय प्रतिफल का भी संदाय कर दिया गया था । प्रतिवादी ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए से इनकार किया और करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए से इनकार करने का मिथ्या अभिवाक् किया जिसे वादियों द्वारा साबित किया गया है ।

32. **माणिक लाल मनसुख भाई** बनाम **हारमुस्जी जमशेदजी गिनवाला**

एण्ड सन्स[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि औपचारिक पट्टा, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-क लागू होने के लिए आवश्यक नहीं है । वे सभी, जो अपेक्षित हैं, वह ये हैं कि अंतरक द्वारा हस्ताक्षरित लेखबद्ध करार को साक्ष्य से सिद्ध किया जा सकता है । इसलिए, प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कोई बल नहीं है कि भागिक पालन का अभिवाक् वादियों को उपलब्ध नहीं है क्योंकि वादियों ने यह दर्शित नहीं किया है कि उन्होंने स्टाम्प क्रय करने के पश्चात् तैयार विक्रय-विलेख को प्राप्त करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया । वादियों ने करार के अधीन सम्पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय पहले ही कर दिया था, किन्तु उनके द्वारा कुछ भी नहीं किया गया । विक्रय-विलेख प्रतिवादी के सहयोग से ही निष्पादित किया जा सकता था जिसने यह मिथ्या अभिवाक् लिया है कि उसने कभी भी करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए नहीं किया । इन परिस्थितियों में वादी अपने कब्जे को संरक्षित करने के लिए धारा 53-क का संरक्षण लेने के हकदार हैं ।

33. वादियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने किसी वादी की परीक्षा नहीं करने के लिए वादियों के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है । प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने किसी वादी की परीक्षा नहीं करने के लिए वादियों के विरुद्ध सही ही प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला है । उन्होंने **मान कौर (मृत)** मार्फत **उसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **हरतार सिंह संघा**[2] वाले मामले का अवलंब लिया । उस मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि तृतीय पक्षकार, जिसे व्यक्तिगत जानकारी नहीं है, वह ऐसे तैयार और रजामन्द होने के बारे में कोई साक्ष्य नहीं दे सकता है, यद्यपि, वह संबंधित व्यक्ति का एक मुख्तारनामाधारक है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 18 में इस प्रास्थिति को स्पष्ट किया कि वही व्यक्ति ऐसे मामलों में साक्ष्य दे सकता है जिसे इस बारे में व्यक्तिगत जानकारी होती है ।

34. **मान कौर** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 18(छ) में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां विधि यह अपेक्षा करता है या अनुध्यात करता है कि वादी या अन्य पक्षकार अपने 'मन की दशा' या 'आचरण' के

---

[1] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 1.

[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 512.

संदर्भ में कुछ सिद्ध या साबित करे तो वहां साधारणतया एकमात्र संबंधित व्यक्ति ही साक्ष्य दे सकता है न कि विनिर्दिष्ट पालन की ईप्सा करने वाले क्रेता का एक मुख्तारनामाधारक, जो इस संवर्ग के अधीन अपनी तैयारी और रजामन्द दर्शित करता है । तथापि, इस अपेक्षा का एक मान्यताप्राप्त अपवाद है । जहां एक पक्षकार के सभी मामलों का पूर्णरूपेण प्रबंध, अंतरण और देख-भाल उस मुख्तारनामा द्वारा किया जाता है जो नजदीकी कुटुम्ब सदस्य हो सकता है तो वहां ऐसे मुख्तारनामे के साक्ष्य को सद्भाविक या तैयार और रजामन्द होने के संदर्भ में स्वीकार करना संभाव्य हो सकता है । ऐसे मुख्तारनामाधारकों के उदाहरण हैं, पति/पत्नी द्वारा अपने/अपनी पत्नी के मामलों का अनन्य रूप से प्रबंध करना, पुत्र/पुत्री द्वारा अपने बूढ़े और अशक्त माता-पिता के मामलों का अनन्य रूप से प्रबंध करना, पिता/माता द्वारा अपने पुत्र/पुत्री के जीवन-स्तर के मामलों का अनन्य रूप से प्रबंध करना ।

35. प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए, सुरजन सिंह के पक्ष में निष्पादित नाथू राम का रजिस्ट्रीकृत विशेष मुख्तारनामा है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-8/ए में नाथू राम ने अपनी आयु 95 वर्ष दी है । यह कथन किया गया कि नाथू राम बूढ़ा था और न्यायालय में आने-जाने की स्थिति में नहीं था । मुख्तारनामे को शपथ पर कथन करने के लिए प्राधिकृत किया गया था । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह ने तारीख 21 फरवरी, 1997 को वादी नाथू राम के विशेष मुख्तारनामे के रूप में विचारण न्यायालय में अपना कथन किया था । अभि. सा. 8 ने यह कथन किया कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द थे किन्तु प्रतिवादी ने किसी न किसी बहाने से मामले को लटकाए रखा, उसका पिता बीमार था और वह चलने-फिरने की स्थिति में नहीं था, उसका एक फेफड़ा कार्य कर रहा था । वह देख नहीं सकता था । नाथू राम की मृत्यु तारीख 26 जुलाई, 1997 को हो गई थी । अभि. सा. 8 सुरजन सिंह, वादी नाथू राम का पुत्र होने के नाते पर-व्यक्ति नहीं है । वह उस अपवाद के अधीन आता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मान कौर** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । नाथू राम की मृत्यु के पश्चात् अभि. सा. 8 की प्रास्थिति भिन्न हो गई है । इन परिस्थितियों में, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने वाद में वादियों की परीक्षा नहीं करने के प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है ।

36. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि धारा 53-क का संरक्षण मात्र प्रतिरक्षा में ही उपलब्ध है । उन्होंने **राघवेन्द्र**

नारायण शाह बनाम **मोती लाल गुप्ता और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । **तशेरिंग ओन्दी भूटिया** बनाम **सोनम् पिन्तसो और अन्य**[2] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "अभिव्यक्ति 'तलवार' और 'ढाल' का अन्तरण करने की संविदा के भागिक पालन का दावा करने वाले प्रस्थापित अन्तरिती के अधिकारों के संबंध में ही प्रयोग किया गया है और यह भी कहा गया है कि वह अपने अधिकारों को मात्र 'ढाल' के रूप में ही प्रयोग कर सकता है न कि 'तलवार' के रूप में । और इससे यह अभिव्यक्ति उद्भूत होती है कि ऐसा व्यक्ति कार्यालय क्षेत्र में मात्र प्रतिवादी के रूप में या एक विरोधी पक्षकार के रूप में अपने अधिकारों की प्रतिरक्षा या संरक्षण कर सकता है । किन्तु, न कि अपने अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए एक वादी के रूप में या याची के रूप में प्रयोग कर सकता है । मेरे मत में, ऐसी अभिव्यक्ति त्रुटिपूर्ण है और मैं एनूगु अचय्या **बनाम** ऐर्नाकी वेंकटा सुब्बाराव (ए. आई. आर. 1957 आंध्र प्रदेश 854) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के खंड न्यायापीठ में माननीय मुख्य न्यायाधीश सुब्बाराव के मत तथा उनकी अध्यक्षता में अकरम मियां **बनाम** नगर निगम (ए. आई. आर. 1957 आंध्र प्रदेश 859) वाले मामले में दिए गए मत से पूर्णतः और सादर सहमत हूं ।"

37. **ब्रह्माजी** उर्फ **बब्बन बाजीराव शिंदे** बनाम **जगन्नाथ शंकर जाधव अब मृत** मार्फत **उसके विधिक उत्तराधिकारीगण भानुदास जगन्नाथ जाधव इत्यादि**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वादी अधिनियम की धारा 53-क के अधीन अपने कब्जे को संरक्षित और अपने विधिपूर्ण कब्जे में विघ्न डालने से प्रतिवादियों, जो पर-व्यक्ति है, को अवरुद्ध करने के लिए वाद फाइल कर सकता है ।

38. **लक्ष्मण पांडु खाडके** बनाम **पन्धारीनाथ पुरुषोत्तम राणे**[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक व्यक्ति जो विक्रय करार के आधार पर विधिपूर्ण तरीके से वाद संपत्ति पर कब्जा करता है तो वह करार

---

[1] ए. आई. आर. 1982 इलाहाबाद 304.
[2] ए. आई. आर. 1981 (सिक्किम) 1.
[3] ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 254.
[4] ए. आई. आर. 1988 बाम्बे 296.

के विनिर्दिष्ट पालन की प्रार्थना किए बिना ही व्यादेश के लिए वाद कायम रख सकता है ।

39. तारीख 6 मई, 1988 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, नालागढ़ तथा तारीख 11 अक्तूबर, 1988 को कलक्टर नालागढ़ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी द्वारा फाइल विभाजन वाद में हक का प्रश्न अन्तर्वलित है । तारीख 13 जुलाई, 1989 को प्रभागीय आयुक्त और तारीख 20 अगस्त, 1991 को वित्तीय आयुक्त ने यह अभिनिर्धारित किया था कि इसमें हक का प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है । वाद पत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि राजस्व अधिकारियों के आदेश अवैध, अकृत और शून्य हैं तथा प्रतिवादी विभाजन का हकदार नहीं है । वादियों ने धारा 53-क के अधीन संरक्षण का दावा करते हुए यह अभिवचन किया कि प्रतिवादी को वाद भूमि का विभाजन करने के लिए दावा करने का कोई अधिकार नहीं है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-4/ए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-7/ए तथा अधिनियम की धारा 53-क का गलत अर्थान्वयन, निर्वचन किया है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने किन्हीं वादियों की परीक्षा नहीं करने के लिए वादियों के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष गलत तौर पर निकाला है और उन्होंने विद्वान् विचारण न्यायालय के सकारण निर्णय को उलटने में त्रुटि की है । वादियों ने अधिनियम की धारा 53-क के अवयवों को साबित कर दिया है और इसलिए वे अधिनियम की धारा 53-क का संरक्षण पाने के हकदार हैं । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उन वादियों को सही ही अधिनियम की धारा 53-क का संरक्षण दिया है जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा गलत तौर पर इनकार कर दिया गया था । विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 से 5 अपीलार्थियों के पक्ष में विनिश्चित किए जाते हैं ।

40. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपील मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं । विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री प्रत्यावर्तित किए जाते हैं, खर्चे का कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

धनवन्ती

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 16 जून, 2012

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश भूमि अभिलेख मैन्युअल, 1992] – रिट – विवादित नियुक्ति के लिए अर्हता मापदण्ड आय प्रमाणपत्र होना – आय प्रमाणपत्र को सक्षम प्राधिकारी द्वारा बिना समुचित जांच आदि के आधार पर जारी करना – आय प्रमाणपत्र की वैधता को चुनौती देते हुए नियुक्ति रद्द करने की मांग करना – यदि विवादित नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हता मापदण्ड वैध और विधिमान्य आय प्रमाणपत्र है तो ऐसी नियुक्ति तब तक वैध और विधिमान्य नहीं हो सकती है जब तक कि ऐसे आय प्रमाणपत्र को वैध और विधिमान्य सिद्ध नहीं कर दिया जाता है ।

वर्तमान मामले में, एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता की आंगनबाड़ी केन्द्र, गुरहन में नियुक्त होनी थी । इस एवज में प्रक्रिया तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा जुलाई, 2007 के माह में आरम्भ की गई थी । अन्यों के साथ याची, चतुर्थ और पंचम् प्रत्यर्थी का तारीख 27 जुलाई, 2007 को सम्यक् रूप से गठित चयन समिति द्वारा साक्षात्कार लिया गया था । चतुर्थ प्रत्यर्थी चयनित हुई थी और उक्त केन्द्र आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त हुई थी । चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति को पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा प्रथम अपील प्राधिकारी अर्थात् उप-आयुक्त, मंडी के समक्ष इस अभिकथित आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसकी आय विहित सीमा अर्थात् 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक है, वह आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त होने हेतु विचार किए जाने के लिए अर्ह नहीं थी । यह भी अभिकथन किया गया कि चतुर्थ प्रत्यर्थी बहुत ही धनी कुटुम्ब से थी क्योंकि उसके ससुर एक सरकारी ठेकेदार और बड़े जमींदार थे । यह भी अभिकथित किया गया कि चतुर्थ प्रत्यर्थी के ससुर के पास एक कार, एक स्कूटर और एक औद्योगिक इकाई में फ्लोर मिल (आटा चक्की) भी थी । पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील को उप-आयुक्त, मंडी द्वारा यह निष्कर्ष निकालते हुए कि चतुर्थ प्रत्यर्थी की

आय विहित सीमा अर्थात् 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक है, तारीख 25 फरवरी, 2008 के आदेश उपाबंध पी-1 द्वारा स्वीकार कर लिया गया । न केवल यह अपितु पंचम् प्रत्यर्थी (इस अपील में अपीलार्थी) की आय भी विहित सीमा से अधिक पाई गई थी । जिसके परिणामस्वरूप, तृतीय प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिया गया कि प्रश्नगत केन्द्र में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में मेरिट सूची में अगले अभ्यर्थी को नियुक्त करे । इसमें की याची जो चतुर्थ और पंचम् प्रत्यर्थी से अगले मेरिट सूची में थी, को तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा जारी आदेश उपाबंध पी-2 द्वारा आंगनबाड़ी केन्द्र, गुरहन में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने प्रथम अपील प्राधिकारी अर्थात् उप-आयुक्त, मंडी द्वारा इसमें उपर्युक्त रूप से पारित आदेश उपाबंध पी-1 के अनुसरण में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में याची के चयन और नियुक्ति से व्यथित होकर प्रभागीय आयुक्त, मंडी के समक्ष प्रकीर्ण अपील सं. 323/2008 प्रस्तुत की जिसने उपर्युक्त आदेश उपाबंध पी-1 के प्रवर्तन पर तारीख 11 जून, 2008 के अन्तरिम आदेश द्वारा रोक लगा दी । जिसके परिणामस्वरूप, तृतीय प्रत्यर्थी ने आदेश उपाबंध पी-3 द्वारा तत्काल प्रभाव से आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में याची की सेवाओं को समाप्त कर दिया । अन्ततोगत्वा, अपील प्राधिकारी अर्थात् प्रभागीय आयुक्त, मंडी ने तारीख 23 सितम्बर, 2008 के आदेश उपाबंध पी-5 द्वारा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील को स्वीकार कर लिया और आक्षेपित आदेश उपाबंध पी-1 को अभिखंडित कर दिया । तद्द्वारा, व्यथित होकर याची ने आदेश उपाबंध पी-5 की वैधता और विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए इस न्यायालय के समक्ष 2008 की सिविल रिट याचिका सं. 2506 फाइल की । इस न्यायालय ने पूर्वोक्त रिट याचिका का निपटारा करते हुए अपील प्राधिकारी, उप-आयुक्त को यह निर्देश दिया कि वह कार्यवाहियों में भाग लेने वाले प्रभावित पक्षकार को अवसर प्रदान करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से दिए गए विवादित आय-प्रमाणपत्र की जांच करे और इसके पश्चात् यदि वह आय प्रमाण-पत्र को सही नहीं पाता है तो उसे रद्द कर दे । इस प्रकार, इस न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में मामला प्रथम अपील न्यायालय अर्थात् उप-आयुक्त द्वारा नए सिरे से विचार किया गया । मांग पर, अपील प्राधिकारी ने चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में अपने चयन के समय पर प्रस्तुत आय-प्रमाणपत्र की अधिप्रमाणिकता की जांच करने के लिए मामले को तहसीलदार, सुन्दर नगर, जिला मंडी के पास अग्रेषित कर दिया । तहसीलदार ने मामले की जांच-पड़ताल की और तारीख 30 नवम्बर, 2010 की रिपोर्ट द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि

5,800/- रुपए के रूप में उसकी आय दर्शित करने वाला तारीख 15 मई, 2007 की आय-प्रमाणपत्र सं. 3484/2007 को चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा सही जारी किया गया है । इसी प्रकार, 6,200/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में याची की आय दर्शित करने वाले तारीख 14 मई, 2007 के प्रमाणपत्र सं. 3445/2007 को भी सही अभिनिर्धारित किया । तथापि, याची ने तहसीलदार, सुन्दर नगर द्वारा पारित आदेश उपाबंध पी-7 से व्यथित और असंतुष्ट होकर एस. डी. ओ. (सिविल), सुन्दर नगर, इसमें के द्वितीय प्रत्यर्थी, के समक्ष वाद सं. 1/2011 के रूप में एक रजिस्ट्रीकृत अपील फाइल की, जिन्होंने याची और चतुर्थ प्रत्यर्थी की सुनवाई करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चतुर्थ प्रत्यर्थी का कुटुम्ब तारीख 15 मई, 2007 को विभाजित नहीं था जबकि 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में उसकी आय दर्शित करते हुए आय-प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उपाबंध पी-7 को अपास्त करते हुए, तहसीलदार को यह निर्देश जारी किया गया कि वह तारीख 15 मई, 2007 को उसके कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य की आय के स्रोत की नए सिरे से जांच करे । इस प्रकार, तहसीलदार सुन्दर नगर ने सम्पूर्ण मुद्दे पर पुनर्विचार किया और अंततोगत्वा उन्होंने तारीख 15 मई, 2007 को 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में चतुर्थ प्रत्यर्थी और उसके कुटुम्ब की आय निर्धारित की और जिसके परिणामस्वरूप, 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष उसकी आय दर्शित करने वाले पूर्ववर्ती आय-प्रमाणपत्र को तारीख 12 फरवरी, 2011 के आदेश उपाबंध पी-9 द्वारा रद्द करने का आदेश दिया गया । इस न्यायालय के निर्णय उपर्युक्त उपाबंध पी-6 के परिणामस्वरूप याची द्वारा प्रस्तुत अपील सं. 18/2010 का निपटारा करते हुए, अपर जिला मजिस्ट्रेट, मंडी ने आदेश उपाबंध पी-9 के आधार पर अपील स्वीकार करते हुए आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति अभिखंडित कर दी, और तृतीय प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिया कि प्रश्नगत केन्द्र में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में मेरिट में अगले अभ्यर्थी की नियुक्ति करें । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने आदेश पी-10 को प्रभागीय आयुक्त, मंडी, षष्ठम् प्रत्यर्थी के समक्ष आक्षेपित किया, जिन्होंने अपील स्वीकार कर ली । चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील में षष्ठम् प्रत्यर्थी द्वारा पारित तारीख 27 दिसम्बर, 2011 के उपर्युक्त आदेश उपाबंध पी-11 को ही इस द्वितीय चक्र के मुकदमेबाजी में याची द्वारा आक्षेपित किया गया है । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – षष्ठम् प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त निर्देशों की पूर्ण अवहेलना करते

हुए यह निष्कर्ष निकाला कि तारीख 15 मई, 2007 के प्रमाणपत्र सं. 3484 की वैधता की अवधि मात्र एक वर्ष थी और इस प्रकार, उसकी वैधता, हिमाचल प्रदेश भूमि अभिलेख मैन्युअल, 1992 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार तारीख 14 मई, 2008 को समाप्त हो गई थी इसलिए उसे रद्द नहीं किया जा सकता था । न्यायालय का विचार है कि मामले में इस प्रकार का मत नहीं अपनाया जा सकता इस कारण से कि मार्गदर्शनों के अनुसार, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियोजन के लिए प्रत्यर्थी की आय उसके चयन के एक वर्ष के पूर्व अवधि के लिए देखा जाना चाहिए था । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सभी स्रोतों से अपनी आय 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष दर्शित करते हुए तारीख 15 मई, 2007 की आय-प्रमाणपत्र सं. 3484 प्रस्तुत किया है । यही इस प्रमाणपत्र की प्रमाणिकता और सत्यता है जिसे प्रथम बार मार्गदर्शनों के खंड 12 के अन्तर्गत प्रस्तुत अपील में उप-आयुक्त, मंडी के समक्ष पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेपित किया गया था जिसे वाद सं. 248/2007 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था जैसा कि आदेश उपाबंध पी-1 के परिशीलन से प्रकट होता है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रमाणपत्र की वैधता का प्रश्न इसे जारी करने से एक वर्ष की अवधि के भीतर उद्भूत किया गया था । तथापि, चूंकि मामले का प्रथम चक्र उप-आयुक्त से इस न्यायालय तक चला था और इसके पश्चात् तहसीलदार स्तर से प्रभागीय आयुक्त तक चला था, इसलिए, षष्ठम् प्रत्यर्थी को यह निष्कर्ष निकालने के लिए कोई अवसर नहीं मिला कि चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत आय-प्रमाणपत्र रद्द नहीं किया जा सकता था इस कारण से कि चतुर्थ प्रत्यर्थी के आय के बारे में संविवाद अंतिमता प्राप्त नहीं किया था क्योंकि आदेश उपाबंध पी-11 विवाद की विषय-वस्तु थी जो इस रिट याचिका की भी विषय-वस्तु है । उपर्युक्त निष्कर्ष कि षष्ठम् प्रत्यर्थी यह अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं था कि चतुर्थ प्रत्यर्थी को जारी आय-प्रमाणपत्र रद्द नहीं किया जा सकता था, उपर्युक्त उद्धृत याची द्वारा फाइल पूर्ववर्ती रिट याचिका में इस न्यायालय के निर्णय उपाबंध पी-6 के निर्णयासार द्वारा समर्थित है । उक्त निर्णय से इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से कम आय रखने वाला अभ्यर्थी ही आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त होने के लिए अर्ह है । आय की संगणना अभ्यर्थी के चयन की तारीख से एक वर्ष पूर्व अवधि के लिए की जानी चाहिए । आय की संगणना विनिश्चित करने के लिए विधि के अधीन विहित सक्षम प्राधिकारी संबंधित तहसीलदार है, जो जांच करने के पश्चात् और प्रभावित पक्षकार की

सुनवाई करने के पश्चात् यह विनिश्चित कर सकता है कि किसी व्यक्ति को जारी आय-प्रमाणपत्र सही है या नहीं । न केवल यह अपितु प्रभावित पक्षकार को भी संबंधित एस. डी. ओ. (सिविल) के समक्ष अपील प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार है । वर्तमान मामले में, याची द्वारा प्रस्तुत प्रमाणपत्र की प्रमाणिकता और सत्यता को पंचम प्रत्यर्थी ने प्रथम उपलब्ध अवसर पर ही चुनौती दी थी । जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है कि तहसीलदार, सुन्दर नगर ने एक जांच कराई थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि तारीख 25 मई, 2007 को चतुर्थ प्रत्यर्थी संयुक्त कुटुम्ब की एक सदस्य थी और उसकी आय के साथ ही उसके कुटुम्ब की आय उस दिन 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष थी । ऐसा ही आदेश उपाबंध पी-9 में अभिनिर्धारित किया गया है । चतुर्थ प्रत्यर्थी को जांच के दौरान तहसीलदार द्वारा सम्यक् रूप से शामिल किया गया था और उसके द्वारा दिए गए साक्ष्य पर भी विचार किया गया था । आदेश उपाबंध पी-9 स्वतः स्पष्टकारी और सकारण है । इस प्रकार, इसकी अवहेलना करने का कोई कारण नहीं है और उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि तारीख 15 मई, 2007 को चतुर्थ प्रत्यर्थी की आय 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष थी । यदि ऐसा है तो अपर जिला मजिस्ट्रेट ने याची द्वारा प्रस्तुत अपील का विनिश्चय करते हुए आदेश उपाबंध पी-10 द्वारा उसे स्वीकार करने और चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति अभिखंडित करने में कोई अवैधता या अनियमितता कारित नहीं की है । आदेश उपाबंध पी-9 वैध होने के नाते और तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य होने के नाते इसे कायम रखे जाने योग्य अभिनिर्धारित किया जाता है । दूसरी ओर, जैसा कि इसमें उपर्युक्त चर्चा की गई है, षष्ठम् प्रत्यर्थी अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का विवेचन करने में बुरी तरह से असफल रहा है और इसके प्रतिकूल त्रुटिपूर्वक यह निष्कर्ष निकाला है कि तारीख 15 मई, 2007 को याची के पक्ष में जारी प्रमाणपत्र तारीख 15 मई, 2008 तक अभिकथित रूप से वैध होने के नाते तहसीलदार द्वारा वर्ष 2011 में आदेश उपाबंध पी-3 के द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता था । इस प्रकार, आक्षेपित आदेश न्यायिक संविक्षा की परीक्षा में कहीं नहीं ठहरता है और इस प्रकार, यह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । यह अभिवाक् कि याची का पति अन्य तीन कर्मकारों के साथ टेलर मास्टर के रूप में कार्य कर रहा है और उसका देवर न केवल एक मिस्त्री है अपितु, एक सरकारी ठेकेदार भी है और 5 श्रमिकों से अधिक श्रमिक भी उसके साथ कार्य कर रहे थे, जिसे चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा रिट याचिका के उत्तर में प्रथम बार उठाया गया था, को

इस कारण से विचार में नहीं लिया जा सकता था कि यदि ऐसा था तो उसे इन तथ्यों को जांच के दौरान तहसीलदार, सुन्दरनगर के समक्ष लाए जाने की स्वतंत्रता थी, वह इस मामले में या अपील के आधारों में विचार करता, उसने इसे षष्ठम् प्रत्यर्थी के समक्ष प्रस्तुत किया । अन्यथा भी, याची हुकम चन्द का ससुर 14-17-18 बीघा भूमि का स्वामी है जो उसके संयुक्त कब्जे में होना प्रतीत होता है किन्तु मात्र लगभग 8 बीघा भूमि ही कृषि योग्य है जबकि लगभग 6 बीघा भूमि खादर अर्थात् अकृषि योग्य भूमि है, जैसा कि उपाबंध आर-4/4 (कोली) में दिए गए वर्णन से प्रकट होता है । याची ने अपने ससुर के नाम की ऐसी पैतृक भूमि के बारे में तहसीलदार से मूल्यांकन कराया था । न केवल यह प्रत्युत्तर के उपाबंध पी आर-2 से भी यह प्रकट होता है कि याची का कुटुम्ब एक ऐसा कुटुम्ब है जो गरीबी रेखा से नीचे रह रहा था । यह सत्य है कि प्रत्युत्तर के उपाबंध पी आर/1 परिवार रजिस्टर की प्रति के अनुसार याची के ससुर बहादुर सिंह का कुटुम्ब तारीख 19 मार्च, 2004 अर्थात् अंतिम तारीख 1 जनवरी, 2004 से लगभग दो माह के पश्चात् संयुक्त कुटुम्ब से पृथक् हो गया था किन्तु उक्त बहादुर सिंह उस अवधि के दौरान संयुक्त कुटुम्ब का सदस्य नहीं था जिसके दौरान संबंधित आय-प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उपर्युक्त सभी से यह विश्वास किया जा सकता है कि कुटुम्ब संयुक्त था तो भी उस दशा में इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि सभी स्रोतों से याची की आय 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक थी । उपर्युक्त सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह याचिका सफल होती है और तद्नुसार, इसे मंजूर किया जाता है । आक्षेपित आदेश उपाबंध पी-11 को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । (पैरा 23, 24, 25, 26, 27, 28 और 29)

आरम्भिक सिविल (रिट) अधिकारिता : 2012 की सिविल रिट याचिका सं. 550.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री योगेश कुमार चन्देल, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 से 3, 6 और 7 की ओर से	श्री जे. के. वर्मा, उप- महाधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से	सर्वश्री दिलीप शर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ उमेश कनवर, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – याची ने चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील सं. 65/2011 में षष्ठम् प्रत्यर्थी, प्रभागीय आयुक्त, मंडी खण्ड, मंडी द्वारा पारित तारीख 27 दिसम्बर, 2011 के आक्षेपित आदेश उपाबंध पी-11, जिसके द्वारा अपील सं. 18/2010 में अपर जिला मजिस्ट्रेट, मंडी द्वारा पारित तारीख 24 नवम्बर, 2011 के आदेश उपाबंध पी-10 को अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया था, से व्यथित होकर उसे अभिखंडित और अपास्त करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका फाइल की है ।

2. इस मामले का उतार-चढ़ाव वाला इतिहास रहा है । एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता की आंगनबाड़ी केन्द्र, गुरहन में नियुक्त होनी थी । इस एवज में प्रक्रिया तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा जुलाई, 2007 के माह में आरम्भ की गई थी । अन्यों के साथ याची, चतुर्थ और पंचम् प्रत्यर्थी का तारीख 27 जुलाई, 2007 को सम्यक् रूप से गठित चयन समिति द्वारा साक्षात्कार लिया गया था । चतुर्थ प्रत्यर्थी चयनित हुई थी और उक्त केन्द्र आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त हुई थी ।

3. चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति को पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा प्रथम अपील प्राधिकारी अर्थात् उप-आयुक्त, मंडी के समक्ष इस अभिकथित आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसकी आय विहित सीमा अर्थात् 12,000/- रुपए प्रति वर्ष से अधिक है, वह आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त होने हेतु विचार किए जाने के लिए अर्ह नहीं थी । यह भी अभिकथन किया गया कि चतुर्थ प्रत्यर्थी बहुत ही धनी कुटुम्ब से थी क्योंकि उसके ससुर एक सरकारी ठेकेदार और बड़े जमींदार थे । यह भी अभिकथित किया गया कि चतुर्थ प्रत्यर्थी के ससुर के पास एक कार, एक स्कूटर और एक औद्योगिक इकाई में फ्लोर मिल (आटा चक्की) भी थी ।

4. पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील को उप-आयुक्त, मंडी द्वारा यह निष्कर्ष निकालते हुए कि चतुर्थ प्रत्यर्थी की आय विहित सीमा अर्थात् 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक है, तारीख 25 फरवरी, 2008 के आदेश उपाबंध पी-1 द्वारा स्वीकार कर लिया गया । न केवल यह अपितु पंचम् प्रत्यर्थी (इस अपील में अपीलार्थी) की आय भी विहित सीमा से अधिक पाई गई थी । जिसके परिणामस्वरूप, तृतीय प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिया गया कि प्रश्नगत केन्द्र में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में मेरिट सूची में अगले अभ्यर्थी को नियुक्त करे ।

5. इसमें की याची जो चतुर्थ और पंचम् प्रत्यर्थी से अगले मेरिट सूची में थी, को तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा जारी आदेश उपाबंध पी-2 द्वारा आंगनबाड़ी केन्द्र, गुरहन में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया ।

6. चतुर्थ प्रत्यर्थी ने प्रथम अपील प्राधिकारी अर्थात् उप-आयुक्त, मंडी द्वारा इसमें उपर्युक्त रूप से पारित आदेश उपाबंध पी-1 के अनुसरण में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में याची के चयन और नियुक्ति से व्यथित होकर प्रभागीय आयुक्त, मंडी के समक्ष प्रकीर्ण अपील सं. 323/2008 प्रस्तुत की जिसने उपर्युक्त आदेश उपाबंध पी-1 के प्रवर्तन पर तारीख 11 जून, 2008 के अन्तरिम आदेश द्वारा रोक लगा दी । जिसके परिणामस्वरूप, तृतीय प्रत्यर्थी ने आदेश उपाबंध पी-3 द्वारा तत्काल प्रभाव से आगंनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में याची की सेवाओं को समाप्त कर दिया । अन्ततोगत्वा, अपील प्राधिकारी अर्थात् प्रभागीय आयुक्त, मंडी ने तारीख 23 सितम्बर, 2008 के आदेश उपाबंध पी-5 द्वारा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील को स्वीकार कर लिया और आक्षेपित आदेश उपाबंध पी-1 को अभिखंडित कर दिया ।

7. तद्द्वारा, व्यथित होकर याची ने आदेश उपाबंध पी-5 की वैधता और विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए इस न्यायालय के समक्ष 2008 की सिविल रिट याचिका सं. 2506 फाइल की । इस न्यायालय ने पूर्वोक्त रिट याचिका का निपटारा करते हुए अपील प्राधिकारी, उप-आयुक्त को यह निर्देश दिया कि वह कार्यवाहियों में भाग लेने वाले प्रभावित पक्षकार को अवसर प्रदान करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से दिए गए विवादित आय-प्रमाणपत्र की जांच करे और इसके पश्चात् यदि वह आय-प्रमाणपत्र को सही नहीं पाता है तो उसे रद्द कर दे ।

8. इस प्रकार, इस न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में मामला प्रथम अपील न्यायालय अर्थात् उप-आयुक्त द्वारा नए सिरे से विचार किया गया । मांग पर, अपील प्राधिकारी ने चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में अपने चयन के समय पर प्रस्तुत आय-प्रमाणपत्र की अधिप्रमाणिकता की जांच करने के लिए मामले को तहसीलदार, सुन्दर नगर, जिला मंडी के पास अग्रेषित कर दिया । तहसीलदार ने मामले की जांच-पड़ताल की और तारीख 30 नवम्बर, 2010 की रिपोर्ट द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि 5,800/- रुपए के रूप में उसकी आय दर्शित करने वाला तारीख 15 मई, 2007 की आय-प्रमाणपत्र सं. 3484/2007 को चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा सही जारी किया गया है । इसी प्रकार, 6,200/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में याची की आय दर्शित करने वाले तारीख 14 मई, 2007 के प्रमाणपत्र

सं. 3445/2007 को भी सही अभिनिर्धारित किया ।

9. तथापि, याची ने तहसीलदार, सुन्दर नगर द्वारा पारित आदेश उपाबंध पी-7 से व्यथित और असंतुष्ट होकर एस. डी. ओ. (सिविल), सुन्दर नगर, इसमें के द्वितीय प्रत्यर्थी, के समक्ष वाद सं. 1/2011 के रूप में एक रजिस्ट्रीकृत अपील फाइल की, जिन्होंने याची और चतुर्थ प्रत्यर्थी की सुनवाई करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि चतुर्थ प्रत्यर्थी का कुटुम्ब तारीख 15 मई, 2007 को विभाजित नहीं था जबकि 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में उसकी आय दर्शित करते हुए आय-प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उपाबंध पी-7 को अपास्त करते हुए, तहसीलदार को यह निर्देश जारी किया गया कि वह तारीख 15 मई, 2007 को उसके कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य की आय के स्रोत की नए सिरे से जांच करे । इस प्रकार, तहसीलदार सुन्दर नगर ने सम्पूर्ण मुद्दे पर पुनर्विचार किया और अंततोगत्वा उन्होंने तारीख 15 मई, 2007 को 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष के रूप में चतुर्थ प्रत्यर्थी और उसके कुटुम्ब की आय निर्धारित की और जिसके परिणामस्वरूप, 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष उसकी आय दर्शित करने वाले पूर्ववर्ती आय-प्रमाणपत्र को तारीख 12 फरवरी, 2011 के आदेश उपाबंध पी-9 द्वारा रद्द करने का आदेश दिया गया ।

10. इस न्यायालय के निर्णय उपर्युक्त उपाबंध पी-6 के परिणामस्वरूप याची द्वारा प्रस्तुत अपील सं. 18/2010 का निपटारा करते हुए, अपर जिला मजिस्ट्रेट, मंडी ने आदेश उपाबंध पी-9 के आधार पर अपील स्वीकार करते हुए आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति अभिखंडित कर दी और तृतीय प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिया कि प्रश्नगत केन्द्र में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में मेरिट में अगले अभ्यर्थी की नियुक्ति करें ।

11. चतुर्थ प्रत्यर्थी ने आदेश पी-10 को प्रभागीय आयुक्त, मंडी, षष्ठम् प्रत्यर्थी के समक्ष आक्षेपित किया, जिन्होंने अपील स्वीकार कर ली और आदेश उपाबंध पी-1 को अपास्त करते हुए, निम्नलिखित आदेश उपाबंध पी-11 जारी किया :–

> "मैंने, पक्षकारों द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया और मुद्दे पर अभिलेखों तथा विधि का परिशीलन किया । पक्षकारों के अभिवचनों से यह प्रकट होता है कि वर्तमान अपीलार्थी की वार्षिक आय ही पक्षकारों के बीच मुख्य मुद्दा है । अभिलेखों से यह प्रकट

होता है कि वर्तमान अपीलार्थी का चयन वर्ष 2007 में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में आंगनबाड़ी केन्द्र गुरहन में चयन समिति द्वारा किया गया था और तब से वह कार्य कर रही है । चयन समिति द्वारा अपीलार्थी का चयन तारीख 15 मई, 2007 को तहसीलदार सुन्दर नगर द्वारा अपने कार्यालय द्वारा जारी उसके आय-प्रमाणपत्र सं. 3484 के आधार पर किया गया था, जिसमें वर्तमान अपीलार्थी के कुटुम्ब की वार्षिक आय 3,000/- रुपए प्रतिवर्ष निर्धारित की गई थी । नियमों के अनुसार, आय-प्रमाणपत्र मात्र एक वर्ष की अवधि के लिए ही किसी व्यक्ति को जारी की जा सकती है । वर्तमान मामले में, तहसीलदार, सुन्दर नगर ने तारीख 30 नवम्बर, 2010 को उप-आयुक्त, मंडी (हिमाचल प्रदेश) को एक सत्यापन रिपोर्ट भेजी है जिसमें उन्होंने यह उल्लेख किया है कि वर्ष 2007 में वर्तमान अपीलार्थी और श्रीमती धनवन्ती देवी को जारी आय-प्रमाणपत्र सही है । वर्तमान अपीलार्थी के आय-प्रमाणपत्र के विरुद्ध अपील तारीख 11 नवम्बर, 2000 के तहसीलदार के सत्यापन रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् ही कलक्टर, उप-खंड, सदर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश के समक्ष फाइल की गई थी जबकि वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1 के पास वर्तमान मामले में तारीख 17 मई, 2010 को माननीय उच्च न्यायालय, हिमाचल प्रदेश, शिमला द्वारा निर्णय की उद्घोषणा के पश्चात् पर्याप्त समय था । इसके अतिरिक्त, वर्तमान अपीलार्थी को जारी आय-प्रमाणपत्र की विधिमान्यता हिमाचल प्रदेश भूमि अभिलेख मैन्यूअल, 1992 में अधिकथित उपबंधों के अनुसार तारीख 14 मई, 2008 को समाप्त हो गई थी । वैधता अवधि के पश्चात् प्रमाणपत्र का रद्दीकरण न्याय के हित में ऋजु प्रतीत नहीं होता है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अपीलार्थी अपनी नियुक्ति से वंचित हो गई जिसे वह वर्ष 2007 से धारित किए हुए थी । अतएव, वर्तमान अपील में बल है ।"

12. चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील में षष्ठम् प्रत्यर्थी द्वारा पारित तारीख 27 दिसम्बर, 2011 के उपर्युक्त आदेश उपाबंध पी-11 को ही इस द्वितीय चक्र के मुकदमेबाजी में याची द्वारा आक्षेपित किया गया है ।

13. पंचम प्रत्यर्थी द्वारा रिट याचिका का विरोध नहीं किया गया क्योंकि वह इस मुकदमेबाजी में अपना हित नहीं देख रही थी जैसा कि याची द्वारा भी प्रकट किया गया है ।

14. रिट याचिका के उत्तर में चतुर्थ प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि

याची का पति एक दर्जी की दुकान चलाता था जिसे उसने खुब राम से 700/- रुपए प्रतिमाह किराए पर लिया था और उक्त दुकान में उसके साथ तीन और कर्मचारी कार्य कर रहे थे । उसका देवर श्री बहादुर सिंह एक राज मिस्त्री के साथ ही प्राइवेट ठेकेदार था । वह वर्ष 2000 से इस प्रकार काम कर रहा था और अपने साथ पांच और श्रमिकों को नियुक्त कर रखा था । याची का ससुर मोहल्ला खागराव, जन्दोहल, कोटला और भलूनी में स्थित 14-17-18 बीघा भूमि का कब्जे सहित स्वामी था और भलूनी सुन्दर नगर-करसाग राजमार्ग से सटे हुए था । अपनी इस दलील के समर्थन में उसने अभिलेख पर दस्तावेज उपाबंध आर-4/1 से आर-4/4 प्रस्तुत किया । उसका यह भी पक्षकथन है कि याची के पास संयुक्त कुटुम्ब का सदस्य होने के नाते पर्याप्त भूमि थी और उसका पति और देवर काफी अच्छी रकम अर्जित करते थे और उसकी आय किसी भी तरह से 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से कम नहीं हो सकती थी । आगे, चतुर्थ प्रत्यर्थी के अनुसार वर्ष 2006 में याची के प्रेम विवाह के पश्चात् उसके ससुर ने उसके पति को अलग कर दिया था और इस प्रकार, संयुक्त कुटुम्ब की आय को याची के कुटुम्ब की आय की संगणना के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता था ।

15. प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 और 7 ने रिट याचिका में उल्लिखित इन विचाराधीन विभिन्न प्रक्रमों को स्वीकार करते समय यह तर्क दिया कि षष्ठम् प्रत्यर्थी ने दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् और सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का विवेचन करने के पश्चात् आक्षेपित आदेश पारित किया है और ऐसे आदेश में न तो कोई अवैधता है और न ही कोई अविधिमान्यता है, इसलिए, इसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

16. याची ने चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा फाइल उत्तर के प्रत्युत्तर में गलत होने के नाते उत्तर की दलीलों से इनकार किया और रिट याचिका में किए गए अपने पक्षकथन को दोहराया । उसने परिवार रजिस्टर उपाबंध पी-आर/1, बी. पी. एल. प्रमाणपत्र उपाबंध पी-आर/2 का भी अवलंब लिया । यह स्वीकार करते हुए कि 14-17-18 बीघा भूमि उसके पति के साथ उसके कुटुम्ब द्वारा धारित है, उसने यह अभिकथित किया कि संपूर्ण भूमि कृषि भूमि नहीं है । उसके अनुसार, आदेश जिसके द्वारा तहसीलदार ने चतुर्थ प्रत्यर्थी को जारी प्रमाणपत्र को रद्द कर दिया था, पूर्णता प्राप्त हो गया था और क्योंकि उक्त प्रत्यर्थी ने सुसंगत समय पर याची के कुटुम्ब की आय को विवादित नहीं किया था, इसलिए, इस प्रक्रम पर उसे याची

को जारी आय-प्रमाणपत्र की सत्यता के बारे में विवाद्यक उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

17. इसी पृष्ठभूमि में इस न्यायालय ने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का भी परिशीलन किया ।

18. याची की ओर से यह जोरदार दलील दी गई कि तहसील, सुन्दर नगर द्वारा की गई जांच के दौरान चतुर्थ प्रत्यर्थी की आय के मुद्दे पर उसे 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष अर्थात् मार्गदर्शन के अधीन विहित सीमा 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक पाया गया था । इस प्रकार, चतुर्थ प्रत्यर्थी को जारी आय-प्रमाणपत्र को सही ही रद्द किया गया है । इसके अतिरिक्त, उसने अपील प्राधिकारी के समक्ष तहसीलदार द्वारा पारित आदेश को आक्षेपित नहीं किया है और इस प्रकार, वह आदेश अंतिमता प्राप्त कर लिया था । जहां तक चतुर्थ प्रत्यर्थी के इस अभिवाक् का संबंध है कि याची का पति दर्जी का कार्य कर रहा है और उसका देवर राज मिस्त्री है, इसे रिट याचिका के उत्तर में प्रथम बार सम्मिलित किया गया था जिसे उसे उपलब्ध नहीं कराया गया था और इस प्रकार यह उसके पक्षकथन की कोई सहायता नहीं करता है ।

19. दूसरी ओर, ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री दिलीप शर्मा ने याची की ओर से किए गए निवेदनों का खंडन करते हुए, बलपूर्वक यह दलील दी है कि याची को प्रश्नगत पद के लिए अपनी अर्हता सिद्ध करनी है और मात्र चतुर्थ तथा पंचम् प्रत्यर्थियों द्वारा दिए गए आय-प्रमाणपत्र, जो अभिकथित तौर पर विहित सीमा से अधिक है, के कारण वह नियुक्त होने का दावा नहीं कर सकती है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि याची और उसके कुटुम्ब सदस्यों की आय के स्रोत के बारे में, जिसे रिट याचिका के उत्तर में उद्भूत किया गया है, दिया गया अभिवाक् चतुर्थ प्रत्यर्थी के समक्ष भी उपलब्ध था और उसे भी इस रिट याचिका को विनिश्चित करते समय विचार में लिया जाएगा ।

20. इस रिट याचिका में अन्तर्वलित संविवाद विवाद्यक मुद्दा होने के कारण उसका संक्षिप्त वर्णन किया गया है, जिसका अधिनिर्णय किया जाना आवश्यक है कि क्या षष्ठम् प्रत्यर्थी ने अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश उपाबंध पी-10 को उलटते समय, जो आंगनबाड़ी के कार्यकर्ता के रूप में उसके चयन के समय पर चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए आय-प्रमाणपत्र की सत्यता के बारे में तहसीलदार, सुन्दर नगर द्वारा अभिलिखित

आदेश उपाबंध पी-9 के निष्कर्षों के आधार पर था, न्यायोचित था या नहीं ।

21. उपर्युक्त समस्या का उत्तर ऋजुता के साथ ही न्याय के उद्देश्य में भी नकारात्मक होगा क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त निर्णय उपाबंध पी-6 के निर्देशों के प्रकाश में आय का मुद्दा सक्षम प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किया जाना अपेक्षित था । स्वीकृततः, संबंधित तहसीलदार द्वारा प्रभावित पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् उस प्रमाणपत्र को रद्द कर दिया जाना अपेक्षित था यदि उसने उसे सही नहीं पाया था । निर्णय उपाबंध पी-6 का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

> "5. यदि प्राधिकारी का यह मत है कि इन मामलों में किसी आंगनबाड़ी कार्यकर्ता/सहायकों को जारी आय-प्रमाणपत्र आय के समुचित संगणना पर आधारित नहीं है तो सक्षम प्राधिकारी के लिए यह खुला होगा कि वह उसे रद्द करने के लिए कदम उठा सकता है । किन्तु यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसा रद्दकरण मात्र संबंधित पदधारी को सुनवाई के लिए पर्याप्त अवसर देने के पश्चात् ही किया जाएगा । जहां तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधि के अनुसरण में रद्दकरण नहीं किया जाता है और रद्दकरण की प्रक्रिया तथा यदि जांच में प्रभावित पक्षकार को नोटिस नहीं दिया जाता है तो संबंधित पदधारी को उस आय-प्रमाणपत्र के आधार पर अपने पद से वंचित नहीं किया जाएगा जिसे उसने सुसंगत समय पर प्रस्तुत किया था ।
>
> 6. उन मामलों में अपील प्राधिकारी को समुचित कदम उठाने का निर्देश दिया जाएगा जहां आय पर विवाद्यक अन्तर्वलित है वहां रद्दकरण के मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा सम्यक् प्रक्रिया का अनुपालन किया जाएगा । इस बारे में आवश्यक कदम उठाना होगा और सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस निर्णय की प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 4 माह की अवधि के भीतर अंतिम कार्रवाई की जाएगी । सक्षम प्राधिकारी उन कार्यवाहियों में भाग लेने वाले प्रभावित पक्षकार को अवसर भी प्रदान करेगा । इस प्रकार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा की कार्रवाई के अध्यधीन, जो पदधारी को पहले ही आय-प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया था, अपील प्राधिकारी दो माह के भीतर समुचित कार्यवाही करेगा । हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि किसी नियुक्ति को रद्द करने की दशा में, अपील प्राधिकारी, सूची में अगले व्यक्ति जो सूची में उपलब्ध है, को नियुक्त करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी करेगा । यह कहना आवश्यक नहीं है कि जब तक उपर्युक्त कथित

प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती है तब तक कार्यरत पदधारी कार्य करते रहेंगे । हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि जांच, नियुक्ति के समय पर मौजूद नीति/मार्गदर्शनों के आधार पर की जाएगी ।"

22. उपर्युक्त निर्दिष्ट निर्णय में विनिश्चित एक अन्य महत्वपूर्ण विवाद्यक कुटुम्ब प्रास्थिति पर आधारित आय की संगणना है । इस एवज में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"7. अन्य मामलों में, आय के अलावा अर्ह शर्तों से संबंधित विवाद्यक अन्तर्वलित है । कुछ मामलों में, कुटुम्ब प्रास्थिति पर आधारित आय की संगणना से संबंधित विवाद्यक उद्भूत हुए हैं । कुटुम्ब प्रास्थिति, अंतिम तारीख अर्थात् तारीख 1 जनवरी, 2004 को विनिश्चित की जानी है । परिवार रजिस्टर, कुटुम्ब प्रास्थिति के बारे में आधारभूत और अनन्य साक्ष्य होता है । इसलिए, आय की संगणना तारीख 1 जनवरी, 2004 को परिवार रजिस्टर में प्रविष्ट कुटुम्ब के सदस्यों के आधार पर की जानी चाहिए न कि किसी अन्य प्रमाणपत्र के आधार पर । हमारा यह निष्कर्ष है कि कुछ मामलों में मात्र इस कारण से कि तारीख 1 जनवरी, 2004 को कुटुम्ब का विभाजन नहीं हुआ था, अभ्यर्थी अनर्ह कर दिए गए थे । तारीख 1 जनवरी, 2004 को कुटुम्ब का बंटवारा, नियुक्ति के लिए एक व्यक्ति को अर्ह बनाने के लिए पूर्व-अपेक्षित शर्त नहीं है । अर्हता मापदंड जो मार्गदर्शनों के खंड 4(ङ) में प्रतीत होती है, इस प्रकार है –

'जो उस कुटुम्ब से संबंधित हैं, जिसका 1 जनवरी, 2004 के पूर्व पंचायती राज अधिनियम और नियमों में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार पृथक् कुटुम्ब के रूप में विधिक तौर पर पृथक्करण हो गया है'

खंड 4(ङ) के साथ खंड 4(च) का भी परिशीलन किया जा सकता है जो इस प्रकार है –

'जिनकी वार्षिक आय 8,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक नहीं है जो तहसीलदार से अनिम्न श्रेणी के अधिकारी द्वारा प्रमाणित/ प्रतिहस्ताक्षरित है ।'

8. खंड 4(ङ) में उल्लिखित कुटुम्ब का पृथक्करण विनिर्दिष्टतः मात्र आय की संगणना के प्रयोजन के लिए है और यदि ऐसा नहीं है

तो यह निश्चित तौर पर आंगनबाड़ी कार्यकर्ता/सहायकों के पदों पर आवेदन करने के लिए एक व्यक्ति को अर्ह बनाने के लिए मूलतः अयुक्तियुक्त उपबंध होगा । आय एक मापदंड है और उसे खंड 4(ङ) के अनुसार होना अपेक्षित है । अन्यथा मात्र इस कारण से कि कुटुम्ब पृथक् नहीं है, यद्यपि आय 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से कम है तो भी एक आवेदक आवेदन करने के लिए हकदार नहीं होगा । यह निश्चित तौर पर उपर्युक्त उद्धृत मापदंड के वर्णन के अध्यधीन नहीं होगा ।

9. एक अन्य दलील आय की संगणना के बारे में उद्भूत की गई आय की संगणना और कुटुम्ब की प्रास्थिति का अवधारण नियुक्ति के लिए आवेदन की तारीख पर अवधारित की जानी है । यद्यपि एक दलील यह उद्भूत की गई कि नियुक्ति की तारीख सुसंगत तारीख होनी चाहिए, अब यह सुस्थिर विधि की प्रतिपादना है कि नियुक्ति के मामले में योग्यता/अर्हता का अवधारण, उन नियमों, स्कीम या मार्गदर्शनों में, जो भर्ती के मामले में लागू होते हैं, विज्ञापन में उपदर्शित आवेदन की अंतिम तारीख किया जाना चाहिए न कि नियुक्ति की तारीख पर ।"

23. षष्ठम् प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त निर्देशों की पूर्ण अवहेलना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि तारीख 15 मई, 2007 के प्रमाणपत्र सं. 3484 की वैधता की अवधि मात्र एक वर्ष थी और इस प्रकार, उसकी वैधता, हिमाचल प्रदेश भूमि अभिलेख मैन्युअल, 1992 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार तारीख 14 मई, 2008 को समाप्त हो गई थी इसलिए उसे रद्द नहीं किया जा सकता था । मेरा विचार है कि मामले में इस प्रकार का मत नहीं अपनाया जा सकता इस कारण से कि मार्गदर्शनों के अनुसार, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियोजन के लिए प्रत्यर्थी की आय उसके चयन के एक वर्ष के पूर्व अवधि के लिए देखा जाना चाहिए था । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सभी स्रोतों से अपनी आय 5,800/- रुपए प्रतिवर्ष दर्शित करते हुए तारीख 15 मई, 2007 की आय-प्रमाणपत्र सं. 3484 प्रस्तुत किया है । यही इस प्रमाणपत्र की प्रमाणिकता और सत्यता है जिसे प्रथम मार्गदर्शनों के खंड 12 के अन्तर्गत प्रस्तुत अपील में उप-आयुक्त, मंडी के समक्ष पंचम् प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेपित किया गया था जिसे वाद सं. 248/2007 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था जैसा कि आदेश उपाबंध पी-1 के परिशीलन से प्रकट होता है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रमाणपत्र की वैधता का प्रश्न इसे जारी करने से एक वर्ष की अवधि के भीतर उद्भूत किया गया था ।

तथापि, चूंकि मामले का प्रथम चक्र उप-आयुक्त से इस न्यायालय तक चला था और इसके पश्चात् तहसीलदार स्तर से प्रभागीय आयुक्त तक चला था, इसलिए, षष्ठम् प्रत्यर्थी को यह निष्कर्ष निकालने के लिए कोई अवसर नहीं मिला कि चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत आय-प्रमाणपत्र रद्द नहीं किया जा सकता था इस कारण से कि चतुर्थ प्रत्यर्थी के आय के बारे में संविवाद अंतिमता प्राप्त नहीं किया था क्योंकि आदेश उपाबंध पी-11 विवाद की विषय-वस्तु थी जो इस रिट याचिका की भी विषय-वस्तु है ।

24. उपर्युक्त निष्कर्ष कि षष्ठम् प्रत्यर्थी यह अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं था कि चतुर्थ प्रत्यर्थी को जारी आय-प्रमाणपत्र रद्द नहीं किया जा सकता था, उपर्युक्त उद्धृत याची द्वारा फाइल पूर्ववर्ती रिट याचिका में इस न्यायालय के निर्णय उपाबंध पी-6 के निर्णयासार द्वारा समर्थित है । उक्त निर्णय से इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से कम आय रखने वाला अभ्यर्थी ही आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त होने के लिए अर्ह है । आय की संगणना अभ्यर्थी के चयन की तारीख से एक वर्ष पूर्व अवधि के लिए की जानी चाहिए । आय की संगणना विनिश्चित करने के लिए विधि के अधीन विहित सक्षम प्राधिकारी संबंधित तहसीलदार है, जो जांच करने के पश्चात् और प्रभावित पक्षकार की सुनवाई करने के पश्चात् यह विनिश्चित कर सकता है कि किसी व्यक्ति को जारी आय-प्रमाणपत्र सही है या नहीं । न केवल यह अपितु प्रभावित पक्षकार को भी संबंधित एस. डी. ओ. (सिविल) के समक्ष अपील प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार है ।

25. वर्तमान मामले में, याची द्वारा प्रस्तुत प्रमाणपत्र की प्रमाणिकता और सत्यता को पंचम् प्रत्यर्थी ने प्रथम उपलब्ध अवसर पर ही चुनौती दी थी । जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है कि तहसीलदार, सुन्दर नगर ने एक जांच कराई थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि तारीख 25 मई, 2007 को चतुर्थ प्रत्यर्थी संयुक्त कुटुम्ब की एक सदस्य थी और उसकी आय के साथ ही उसके कुटुम्ब की आय उस दिन 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष थी । ऐसा ही आदेश उपाबंध पी-9 में अभिनिर्धारित किया गया है । चतुर्थ प्रत्यर्थी को जांच के दौरान तहसीलदार द्वारा सम्यक् रूप से शामिल किया गया था और उसके द्वारा दिए गए साक्ष्य पर भी विचार किया गया था । आदेश उपाबंध पी-9 स्वतः स्पष्टकारी और सकारण है । इस प्रकार, इसकी अवहेलना करने का कोई कारण नहीं है और उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि तारीख 15 मई, 2007 को चतुर्थ

प्रत्यर्थी की आय 19,800/- रुपए प्रतिवर्ष थी । यदि ऐसा है तो अपर जिला मजिस्ट्रेट ने याची द्वारा प्रस्तुत अपील का विनिश्चय करते हुए आदेश उपाबंध पी-10 द्वारा उसे स्वीकार करने और चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति अभिखंडित करने में कोई अवैधता या अनियमितता कारित नहीं की है । आदेश उपाबंध पी-9 वैध होने के नाते और तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य होने के नाते इसे कायम रखे जाने योग्य अभिनिर्धारित किया जाता है ।

26. दूसरी ओर, जैसा कि इसमें उपर्युक्त चर्चा की गई है, षष्ठम् प्रत्यर्थी अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का विवेचन करने में बुरी तरह से असफल रहा है और इसके प्रतिकूल त्रुटिपूर्वक यह निष्कर्ष निकाला है कि तारीख 15 मई, 2007 को याची के पक्ष में जारी प्रमाणपत्र तारीख 15 मई, 2008 तक अभिकथित रूप से वैध होने के नाते तहसीलदार द्वारा वर्ष 2011 में आदेश उपाबंध पी-3 के द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता था । इस प्रकार, आक्षेपित आदेश न्यायिक संवीक्षा की परीक्षा में कहीं नहीं ठहरता है और इस प्रकार, यह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

27. यह अभिवाक् कि याची का पति अन्य तीन कर्मकारों के साथ टेलर मास्टर के रूप में कार्य कर रहा है और उसका देवर न केवल एक मिस्त्री है अपितु, एक सरकारी ठेकेदार भी है और 5 श्रमिकों से अधिक श्रमिक भी उसके साथ कार्य कर रहे थे, जिसे चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा रिट याचिका के उत्तर में प्रथम बार उठाया गया था, को इस कारण से विचार में नहीं लिया जा सकता था कि यदि ऐसा था तो उसे इन तथ्यों को जांच के दौरान तहसीलदार, सुन्दरनगर के समक्ष लाए जाने की स्वतंत्रता थी, वह इस मामले में या अपील के आधारों में विचार करता, उसने इसे षष्ठम् प्रत्यर्थी के समक्ष प्रस्तुत किया ।

28. अन्यथा भी, याची हुकम चन्द का ससुर 14-17-18 बीघा भूमि का स्वामी है जो उसके संयुक्त कब्जे में होना प्रतीत होता है किन्तु मात्र लगभग 8 बीघा भूमि ही कृषि योग्य है जबकि लगभग 6 बीघा भूमि खादर अर्थात् अकृषि योग्य भूमि है, जैसा कि उपाबंध आर-4/4 (कोली) में दिए गए वर्णन से प्रकट होता है । याची ने अपने ससुर के नाम की ऐसी पैतृक भूमि के बारे में तहसीलदार से मूल्यांकन कराया था । न केवल यह प्रत्युत्तर के उपाबंध पी-आर/2 से भी यह प्रकट होता है कि याची का कुटुम्ब एक ऐसा कुटुम्ब है जो गरीबी रेखा से नीचे रह रहा था । यह सत्य है कि प्रत्युत्तर के उपाबंध पी-आर/1 परिवार रजिस्टर की प्रति के अनुसार याची

के ससुर बहादुर सिंह का कुटुम्ब तारीख 19 मार्च, 2004 अर्थात् अंतिम तारीख 1 जनवरी, 2004 से लगभग दो माह के पश्चात् संयुक्त कुटुम्ब से पृथक् हो गया था किन्तु उक्त बहादुर सिंह उस अवधि के दौरान संयुक्त कुटुम्ब का सदस्य नहीं था जिसके दौरान संबंधित आय-प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उपर्युक्त सभी से यह विश्वास किया जा सकता है कि कुटुम्ब संयुक्त था तो भी उस दशा में इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि सभी स्रोतों से याची की आय 12,000/- रुपए प्रतिवर्ष से अधिक थी ।

29. उपर्युक्त सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए, यह याचिका सफल होती है और तद्नुसार, इसे मंजूर किया जाता है । आक्षेपित आदेश उपाबंध पी-11 को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामतः आंगनबाड़ी केन्द्र, गुरहन में आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में चतुर्थ प्रत्यर्थी की नियुक्ति भी अभिखंडित और अपास्त की जाती है । तृतीय प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिया जाता है कि वह याची द्वारा उसके समक्ष इस निर्णय की प्रति प्रस्तुत किए जाने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर याची को आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त करे । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

क.